WHITE BOOK

COACH UP IAS

YOUR SELECTION Is OUR BUSINESS

LET US DEMYSTIFY राजनीति और संविधान

FOR CIVIL SERVICES EXAMINATION

IAS COACH ASHUTOSH SRIVASTAVA

IAS COACH MANISH SHUKLA

8009803231 | 9236569979

Saarthi
THE COACH

1 : 1 MENTORSHIP BEYOND THE CLASSES

- **Diagnosis** of candidates based on background, level of preparation and task completed.
- **Customized solution** based on Diagnosis.
- One to One **Mentorship.**
- Personalized schedule **planning.**
- Regular **Progress tracking.**
- **One to One classes** for Needed subjects along with online access of all the subjects.
- Topic wise **Notes Making sessions**.
- One Pager **(1 Topic 1 page)** Notes session.
- **PYQ** (Previous year questions) Drafting session.
- **Thematic charts** Making session.
- **Answer-writing** Guidance Program.
- **MOCK Test** with comprehensive & swift assessment & feedback.

Ashutosh Srivastava
(B.E., MBA, Gold Medalist)
Mentored 250+ Successful Aspirants over a period of 12+ years for Civil Services & Judicial Services Exams at both the Centre and state levels.

Manish Shukla
Mentored 100+ Successful Aspirants over a period of 9+ years for Civil Services Exams at both the Centre and state levels.

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत का संविधान औपनिवेशिक शासन से संप्रभु गणराज्य बनने की राष्ट्र की उल्लेखनीय यात्रा का एक शक्तिशाली प्रतीक है। एक जीवंत दस्तावेज के रूप में, यह दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के लोकतांत्रिक कामकाज को रेखांकित करता है। समावेशिता में निहित, इसने भारत की विशाल और विविध आबादी को एक साझा राष्ट्रीय ढांचे के तहत एकजुट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारतीय संविधान का विकास: प्रमुख अधिनियमों और सुधारों के माध्यम से एक यात्रा

<u>भारत सरकार अधिनियम, 1919/मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार</u>

- **कार्यकारी परिषद में भारतीयों को शामिल करना:** अधिनियम ने वायसराय की कार्यकारी परिषद में तीन भारतीय सदस्यों की नियुक्ति को अनिवार्य बना दिया, जो उच्चतम प्रशासनिक स्तर पर भारतीयों के प्रतिनिधित्व की दिशा में एक कदम आगे था।
- **द्विसदनीय केन्द्रीय विधानमंडल:** केन्द्र में द्विसदनीय विधायी प्रणाली शुरू की गई, जिसमें **विधान सभा** (निचला सदन) और **राज्य परिषद** (उच्च सदन) शामिल थे, जिसने भावी संसदीय ढांचे की नींव रखी।
- **प्रांतीय विकेंद्रीकरण:** इस अधिनियम ने **केंद्रीय** और **प्रांतीय विषयों के बीच अंतर किया** , इस प्रकार प्रांतीय मामलों पर केंद्र के नियंत्रण को कम किया और प्रशासनिक स्वायत्तता को बढ़ावा दिया।
- **प्रांतों में द्वैध शासन की शुरूआत:** प्रांतीय विषयों को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया:
    - **हस्तांतरित विषय** : विधानमंडलों के प्रति उत्तरदायी भारतीय मंत्रियों द्वारा प्रशासित।
    - **आरक्षित विषय** : ब्रिटिश अधिकारियों के नियंत्रण में रखे गए।

- **लोक सेवा आयोग का गठन: इसमें एक लोक सेवा आयोग** के गठन का प्रस्ताव रखा गया , जिसके परिणामस्वरूप 1926 में **केंद्रीय लोक सेवा आयोग** की स्थापना हुई - जो आज के यूपीएससी का अग्रदूत है।
- **अधिनियम का महत्व**
    - **भारतीयों की बढ़ी हुई भागीदारी:** शासन और प्रशासन में भारतीयों को शामिल करके, अधिनियम ने सीमित स्वशासन की दिशा में एक कदम उठाया।
    - **विधायी विकास:** द्विसदनीय विधायिका और व्यापक मताधिकार की शुरूआत ने भारतीयों के बीच राजनीतिक भागीदारी और जागरूकता बढ़ाने में मदद की।
    - **प्रांतीय स्वशासन की नींव:** यद्यपि सीमित, **द्वैध शासन प्रणाली** ने भारतीय नेताओं को प्रांतीय मामलों पर कुछ नियंत्रण की अनुमति दी, जिससे प्रशासनिक अनुभव का सृजन हुआ और भविष्य के सुधारों के लिए आधार तैयार हुआ।

<u>भारत सरकार अधिनियम 1935</u>

- **भारत सरकार अधिनियम, 1935 – एक प्रमुख संवैधानिक मील का पत्थर**

- **भारत सरकार** अधिनियम , 1935 भारत के संवैधानिक विकास में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ । यह उस समय की महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं, जैसे **साइमन कमीशन** , **नेहरू रिपोर्ट** और **गोलमेज सम्मेलनों के परिणामों से काफी हद तक प्रभावित हुआ** । हालाँकि इसे अपने इच्छित संघीय स्वरूप में कभी पूरी तरह लागू नहीं किया गया, लेकिन इसने भारत के भविष्य के शासन ढांचे के लिए आधार तैयार किया।

<u>अधिनियम के प्रमुख प्रावधान</u>

- **प्रस्तावित अखिल भारतीय संघ:** अधिनियम में एक संघीय ढांचे का प्रस्ताव था, जिसमें ब्रिटिश भारतीय प्रांतों और रियासतों को एक संघ के अंतर्गत लाया गया। हालाँकि, चूँकि अधिकांश रियासतों ने इसमें शामिल होने से इनकार कर दिया, इसलिए संघ कभी अस्तित्व में नहीं आया।
- **प्रांतीय स्वायत्तता (1937-1939):** पहली बार, प्रांतों को आंशिक स्वायत्तता दी गई, जिसमें निर्वाचित भारतीय मंत्रियों को प्रांतीय विषयों पर अधिकार दिया गया। राज्यपालों के पास अभी भी विवेकाधीन शक्तियाँ बनी रहीं।
- **केंद्र में द्वैध शासन (क्रियान्वित नहीं):** केंद्रीय स्तर पर शासन की दोहरी योजना का सुझाव दिया गया था, जिसके तहत विषयों को **आरक्षित** (ब्रिटिश नियंत्रण के अधीन) और **हस्तांतरित** (भारतीय मंत्रियों के अधीन) में विभाजित किया गया था, लेकिन इसे कभी लागू नहीं किया गया।
- **सीमित द्विसदनीयता:** चुनिंदा प्रांतों में दो सदनों वाली विधायी प्रणाली शुरू की गई। हालाँकि, यह व्यवस्था सार्वभौमिक नहीं थी और इसमें कार्यात्मक सीमाएँ थीं।
- **चुनावी आधार में विस्तार:** मताधिकार का विस्तार किया गया, जिससे लगभग **10% भारतीय आबादी को** वोट देने का अधिकार मिला। धार्मिक और अल्पसंख्यक समुदायों के लिए अलग-अलग निर्वाचक मंडल जारी रखे गए।
- **प्रशासनिक पुनर्गठन:**
  - **भारतीय परिषद** (लंदन स्थित) को समाप्त कर दिया गया।
  - **भारत सचिव की** सहायता के लिए सलाहकार नियुक्त किये गये ।
  - भर्ती और प्रशासनिक सेवाओं के लिए **संघीय, प्रांतीय और संयुक्त स्तर पर लोक सेवा आयोग** स्थापित किए गए ।
- **संघीय न्यायालय की स्थापना (1937): संवैधानिक विवादों और अपीलों को निपटाने के लिए** एक **संघीय न्यायालय** की स्थापना की गई, जो केंद्रीय शासन के लिए न्यायिक रीढ़ की हड्डी थी।
- **<u>ऐतिहासिक महत्व</u>**
  - **स्वतंत्रता-पूर्व सबसे व्यापक कानून:** यह भारत के संबंध में ब्रिटिश संसद द्वारा पारित **सबसे बड़ा और सबसे विस्तृत कानून था।**
  - **भारतीय नेतृत्व के लिए प्रशिक्षण का आधार:** इस अधिनियम ने भारतीय नेताओं को विधायी और कार्यकारी कार्यों का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने का अवसर दिया, जिससे उन्हें भविष्य में स्वशासन के लिए तैयार होने में मदद मिली।
  - **उत्तरदायी सरकार की ओर एक कदम:** यद्यपि इस अधिनियम ने कई साम्राज्यवादी नियंत्रणों को बरकरार रखा, फिर भी यह भारत में पूर्णतः उत्तरदायी और लोकतांत्रिक प्रणाली के विकास की दिशा में एक कदम था।

<u>भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947</u>

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के प्रमुख प्रावधान

- **ब्रिटिश संप्रभुता की** समाप्ति : इस अधिनियम ने **भारत और पाकिस्तान को दो अलग-अलग प्रभुत्वों के रूप में** मान्यता देकर भारत में ब्रिटिश शासन के औपचारिक अंत को चिह्नित किया , जो **15 अगस्त 1947** से प्रभावी हुआ ।
- **सशक्तिकरण :** **भारत और पाकिस्तान की संविधान सभाओं को** अपने **-अपने संविधानों का मसौदा तैयार करने और उन्हें अपनाने का** पूर्ण अधिकार दिया गया , जो संप्रभु कानून-निर्माण निकायों के रूप में कार्य करेंगे।
- **विभाजन का** वैधानिकीकरण : इस कानून ने **ब्रिटिश भारत को दो स्वतंत्र राष्ट्रों - भारत और पाकिस्तान** - में विभाजित करने तथा तत्पश्चात क्षेत्रों, परिसंपत्तियों और प्रशासनिक तंत्र के विभाजन के लिए कानूनी ढांचा प्रदान किया ।
- **भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 का ऐतिहासिक महत्व**

1947 के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम ने औपचारिक रूप से भारतीय उपमहाद्वीप में **ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को समाप्त कर दिया । इसके परिणामस्वरूप दो संप्रभु राज्यों - भारत और पाकिस्तान का जन्म हुआ** , जिनमें से प्रत्येक को खुद पर शासन करने और अपना संविधान बनाने का अधिकार दिया गया।

- **संकल्पनात्मक मुख्य बिंदु (<u>नोट:-</u> अंतर्दृष्टि)**
    - **दोहरा शासन:** पहले के अधिनियमों में बार-बार दोहराए जाने वाले विषय के रूप में, औपनिवेशिक व्यवस्था में अक्सर ब्रिटिश अधिकारियों और भारतीय प्रतिनिधियों के बीच शक्तियों को विभाजित किया जाता था, जबकि वास्तविक स्वायत्तता नहीं थी।
    - **केंद्रीकृत प्राधिकार:** 1947 में सत्ता हस्तांतरण तक अधिकांश विधायी और प्रशासनिक नियंत्रण ब्रिटिश हाथों में केंद्रित रहा।
    - **प्रतिबंधित स्वशासन:** पिछले सुधारों ने ब्रिटिश निगरानी के तहत भारतीयों को केवल **सीमित प्रशासनिक नियंत्रण प्रदान किया था।**
    - **अप्रत्यक्ष राजनीतिक भागीदारी:** प्रतिनिधित्व अक्सर **मनोनीत या सीमित निर्वाचक मंडलों के माध्यम से होता था** , जिससे वास्तविक लोकतांत्रिक भागीदारी सीमित हो जाती थी।
    - **सांप्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र:** पहले के अधिनियमों ने धार्मिक और अल्पसंख्यक समुदायों के लिए **पृथक निर्वाचन क्षेत्रों को संस्थागत बना दिया, जिससे सामाजिक विभाजन और गहरा हो गया।**
    - **अखिल भारतीय संघ का प्रस्ताव:** 1935 के अधिनियम में प्रांतों और रियासतों के संघीय संघ का प्रस्ताव रखा गया, हालांकि इसे कभी साकार नहीं किया गया।
    - **द्वैध शासन प्रणाली:** प्रांतीय स्तर पर (1919) शुरू की गई और केंद्रीय स्तर पर (1935) प्रस्तावित इस द्वैध शासन प्रणाली ने विषयों को "आरक्षित" और "हस्तांतरित" श्रेणियों में विभाजित किया।
    - **प्रांतीय स्वायत्तता:** 1935 के अधिनियम ने **प्रांतों को अधिक विधायी शक्तियां प्रदान कीं** , जो विकेंद्रीकरण की दिशा में एक कदम था, जिससे 1947 के बाद पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त हुई।

भारत की संविधान सभा

- संविधान सभा का गठन और भूमिका

  - संविधान **सभा** के गठन के विचार को औपचारिक रूप से **1946 की कैबिनेट मिशन योजना** द्वारा समर्थन दिया गया था , जिसमें स्वतंत्र भारत के संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए एक निकाय की स्थापना की सिफारिश की गई थी।
  - ब्रिटिश भारतीय प्रांतों से **अप्रत्यक्ष रूप से चुने गए सदस्य और** रियासतों से **मनोनीत प्रतिनिधि** शामिल थे । हालांकि यह सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार पर आधारित नहीं था, लेकिन इसमें व्यापक क्षेत्रीय और सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व परिलक्षित होता था।
  - **लगभग तीन वर्षों** के दौरान , विधानसभा ने संप्रभु भारत के संवैधानिक ढांचे को तैयार करने के लिए विस्तृत चर्चा और बहस की। **डॉ. बीआर अंबेडकर जैसे प्रख्यात नेताओं ने** विभिन्न प्रावधानों का मसौदा तैयार करने और दस्तावेज़ के लोकतांत्रिक चरित्र को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
  - संविधान **26 नवम्बर 1949 को अपनाया गया** तथा **26 जनवरी 1950 को लागू हुआ, जिससे भारत एक सम्प्रभु, लोकतांत्रिक गणराज्य** के रूप में औपचारिक रूप से परिवर्तित हो गया ।

<u>संविधान सभा की आलोचना</u>

- अपने ऐतिहासिक महत्व के बावजूद, **भारत की संविधान सभा** कई आलोचनाओं का विषय रही है:
- **सीमित प्रतिनिधित्व:** कुछ आलोचकों का तर्क है कि विधानसभा सामान्य आबादी की इच्छा को प्रतिबिंबित नहीं करती है, क्योंकि इसके सदस्य **सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के माध्यम से नहीं चुने गए थे** ।
- **पूर्ण संप्रभुता का अभाव: चूंकि विधानसभा की स्थापना** **ब्रिटिश कैबिनेट मिशन** द्वारा प्रस्तावित ढांचे के तहत की गई थी , इसलिए कुछ लोगों का मानना था कि इसके कामकाज और उत्पत्ति में पूर्ण स्वायत्तता का अभाव था।
- **कानूनी पेशेवरों का प्रभुत्व:** सदस्यों का एक बड़ा हिस्सा **कानूनी पृष्ठभूमि से था** , जिसने, कुछ लोगों के अनुसार, संविधान की **जटिल और तकनीकी भाषा में योगदान दिया** ।
- **बहुसंख्यकवादी चिंताएं:** **विंस्टन चर्चिल** जैसी हस्तियों ने इस सभा की आलोचना करते हुए कहा कि इसमें **हिंदू बहुसंख्यकों का वर्चस्व है** तथा उन्होंने दावा किया कि यह अल्पसंख्यक समुदायों के हितों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं करती है।
- **लंबी प्रारूपण अवधि:** संविधान को **अंतिम रूप देने में लगभग तीन वर्ष लग गए, जिससे** प्रक्रिया की **दक्षता और गति** को लेकर चिंताएं उत्पन्न हुईं ।
- **<u>संतुलित दृष्टिकोण:</u>** जबकि ये आलोचनाएँ मौजूद हैं, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि विधानसभा की **विविधतापूर्ण संरचना - जिसमें विभिन्न क्षेत्रों, विचारधाराओं, जातियों और समुदायों के प्रतिनिधि शामिल हैं** - ने दृष्टिकोणों की एक विस्तृत श्रृंखला सुनिश्चित की। **अलग-अलग दृष्टिकोणों को समेटने और** भारतीय गणराज्य के लिए एक **मजबूत, समावेशी नींव रखने के लिए विस्तृत विचार-विमर्श** आवश्यक था ।

भारतीय संविधान की आलोचना

<u>1935 अधिनियम की कार्बन कॉपी:</u>

- **आलोचना - 1935 अधिनियम पर अत्यधिक निर्भरता:** प्रसिद्ध ब्रिटिश संवैधानिक विद्वान **सर आइवर जेनिंग्स ने** भारतीय संविधान की **भारत सरकार अधिनियम, 1935 पर अत्यधिक निर्भरता के लिए आलोचना की** , तथा दावा किया कि इसकी सामग्री

का एक बड़ा हिस्सा बिना किसी महत्वपूर्ण नवाचार के सीधे अपनाया गया था।

- खंडन - **औपनिवेशिक ढांचे से परे दृष्टि: डॉ. बीआर अंबेडकर ने** इस दृष्टिकोण का दृढ़ता से खंडन किया, इस बात पर जोर देते हुए कि कुछ **प्रशासनिक और संरचनात्मक प्रावधानों को** निरंतरता के लिए बनाए रखा गया था, भारतीय संविधान **एक स्वतंत्र राष्ट्र की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करता है** । इसने **मौलिक अधिकार** , **राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत** , **सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार** और एक **धर्मनिरपेक्ष, संप्रभु लोकतांत्रिक ढांचे जैसे परिवर्तनकारी तत्वों को पेश किया** - औपनिवेशिक कानून में पूरी तरह से अनुपस्थित विशेषताएं।

<u>उधार का थैला:</u>

- कुछ आलोचक भारतीय संविधान को विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संविधानों से " उधार लिए गए **तत्वों का संग्रह" बताते हैं, जो यह सुझाव देते हैं कि इसमें विशिष्ट या मौलिक विशेषताओं का अभाव है** । यह दृष्टिकोण दस्तावेज़ को **नवीनता से अधिक व्युत्पन्न के रूप में चित्रित करता है, जो इसके स्वदेशी चरित्र और रचनात्मक स्वतंत्रता** पर चिंताएँ पैदा करता है ।
- प्रतिवाद: जबकि यह सच है कि भारतीय संविधान ने कई वैश्विक स्रोतों से प्रेरणा ली, लेकिन इसके निर्माताओं ने **प्रत्येक उधार विचार को भारत की विशिष्ट ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक वास्तविकताओं** के साथ संरेखित करने के लिए सावधानीपूर्वक तैयार किया । अंधाधुंध नकल के बजाय, इसमें **जानबूझकर और प्रासंगिक नवाचार को दर्शाया गया** ।
- जैसा कि **डॉ. बी.आर.** अंबेडकर ने स्पष्ट किया, यह आलोचना अक्सर **एक नकारात्मक सोच से उत्पन्न होती है।** संविधान की **मूल बातें सतही रूप से पढ़ना है । संविधान नकल से कहीं आगे जाता है - यह भावना में एक अत्यंत मौलिक दस्तावेज है** , जो वैश्विक सर्वोत्तम प्रथाओं को **भारत की अपनी लोकतांत्रिक आकांक्षाओं और विविधता से प्रेरित चुनौतियों के साथ मिश्रित करता है** ।

<u>वकीलों का स्वर्ग:</u>

- **आलोचना** – **"एक** वकील का **स्वर्ग"**
  - ब्रिटिश संवैधानिक विशेषज्ञ **सर आइवर जेनिंग्स ने** भारतीय संविधान की **भाषा और संरचना की** आलोचना करते हुए इसे अत्यधिक **तकनीकी और कानूनी बताया। उन्होंने इसे "वकीलों का स्वर्ग"** बताया और कहा कि इसकी जटिलता इसे आम जनता के लिए दुर्गम बनाती है और कानूनी व्याख्या पर अत्यधिक निर्भर बनाती है।
- **काउंटरपॉइंट - कानूनी सटीकता स्पष्टता और सुरक्षा सुनिश्चित करती है**
  - संविधान भले ही जटिल प्रतीत हो, लेकिन इसकी **सटीक कानूनी शब्दावली स्पष्टता, स्थिरता और व्याख्या में अस्पष्टता से सुरक्षा** सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है । भारत जैसे **विविधतापूर्ण और कानूनी रूप से जटिल** देश में , ऐसी सटीकता खामियों और दुरुपयोग को रोकने में मदद करती है। हालाँकि संविधान का उद्देश्य लोगों को सशक्त बनाना है, लेकिन इसे शासन और न्याय के लिए एक **मजबूत कानूनी आधार** के रूप में भी काम करना चाहिए ।

<u>अत्यधिक लंबाई और विस्तार:</u>

- **<u>आलोचना – अत्यधिक लंबाई और जटिलता-</u>** कुछ आलोचकों का मानना है कि **भारतीय संविधान असामान्य रूप से लंबा और अत्यधिक विस्तृत है** , जिससे इसे **समझना जटिल और कठिन हो जाता है** । उनका तर्क है कि इतनी बड़ी मात्रा त्वरित संदर्भ और व्याख्या में लचीलेपन में बाधा उत्पन्न कर सकती है।

- **<u>प्रतिवाद - डिजाइन द्वारा व्यापक-</u>** संविधान की विस्तृत प्रकृति इसके निर्माताओं द्वारा सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से विविध राष्ट्र में स्पष्टता, समावेशिता और प्रभावी शासन सुनिश्चित करने के लिए एक जानबूझकर किया गया विकल्प है । **इसका** व्यापक दायरा **मौलिक अधिकारों से लेकर प्रशासनिक प्रक्रियाओं** तक कई तरह के मुद्दों को कवर करने में मदद करता है - जिससे **अस्पष्टता** और **कानूनी खामियों को कम किया जा सकता है** । दोष होने के बजाय, इसकी लंबाई उस **सावधानीपूर्वक विचार और समावेशिता को दर्शाती है** जो इसके निर्माण में गई थी।

<u>एकात्मक पूर्वाग्रह वाला संघवाद:</u>

- **आलोचना - केंद्रीकरण की ओर झुकाव** - कई विद्वानों ने **भारतीय संघीय ढांचे की आलोचना की है** कि यह **संघीय प्रकृति से ज़्यादा एकात्मक है** । उनका तर्क है कि संविधान **केंद्र को ज़्यादा अधिकार देता है** , ख़ास तौर पर आपातकाल के दौरान, जो राज्यों की **स्वायत्तता को कमज़ोर कर सकता है** और **संघवाद की सच्ची भावना को कमज़ोर कर सकता है** ।
- **प्रतिवाद - राष्ट्रीय सामंजस्य के लिए संघीय लचीलापन**- वर्तमान मॉडल के समर्थक इस बात पर जोर देते हैं कि भारत जैसे **विविधतापूर्ण और अधिक जनसंख्या वाले देश में राजनीतिक स्थिरता, आर्थिक समन्वय** और **राष्ट्रीय सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए एक मजबूत केंद्रीय प्राधिकरण** महत्वपूर्ण है । संविधान में **सहकारी संघवाद की विशेषताएं भी शामिल हैं** , जैसे कि **अंतर- सरकारी परिषदें** , **वित्तीय हस्तांतरण** और राज्य शक्तियों के लिए **संवैधानिक सुरक्षा उपाय ,** कठोर अलगाव के बजाय **सहयोगी शासन को** बढ़ावा देना ।

<u>बहुत कठोर या बहुत लचीला:</u>

- **आलोचना** – संवैधानिक संशोधन में कथित कठोरता
- कुछ आलोचकों का तर्क है कि **भारतीय संविधान अपेक्षाकृत कठोर है** , खासकर जब इसे आसानी से संशोधित किए जा सकने वाले संविधानों से तुलना की जाती है। उनका तर्क है कि **जटिल और बहु-स्तरीय संशोधन प्रक्रिया** सुधारों को धीमा कर सकती है और संविधान की **उभरती सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों का तेज़ी से जवाब देने की क्षमता को सीमित कर सकती है** ।

काउंटरपॉइंट - स्थिरता और परिवर्तन के लिए संतुलित लचीलापन

- समर्थक इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि **संविधान में अंतर्निहित लचीलापन है , जो अनुच्छेद 368** के तहत संशोधन की अनुमति देता है , जो **विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों के लिए अलग-अलग प्रक्रियाएँ प्रदान करता है** । यह सुनिश्चित करता है कि **मूल मूल्यों को संरक्षित किया जाए** , जबकि **आवश्यक सुधार पेश किए जा सकें** । संशोधन तंत्र संवैधानिक स्थिरता और बदलते लोकतंत्र में **अनुकूलन की आवश्यकता के बीच संतुलन बनाए रखता है।**

<u>मुख्य शब्द:</u> कार्बन कॉपी, वकील का स्वर्ग, उधार का थैला, अत्यधिक लंबाई

<u>नव गतिविधि</u>

- 106वां **संविधान** संशोधन अधिनियम, 2023 – महिला आरक्षण
    - **उद्देश्य:**
      लोकसभा , **राज्य विधानसभाओं** और **दिल्ली विधानसभा** में **महिलाओं के लिए 33% आरक्षण** लागू किया गया ।
    - **कवरेज:**
      यह आरक्षण **कुल सीटों के एक तिहाई पर**

लागू होता है, जिसमें अनुसूचित जाति (एससी) और **अनुसूचित जनजाति (एसटी)** के लिए आरक्षित सीटें भी शामिल हैं ।

- **कार्यान्वयन:**
  अगले परिसीमन के बाद लागू किया जाएगा , **2026 की जनगणना के बाद अपेक्षित है** ।

- **105वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2021 – एसईबीसी पर राज्य का अधिकार**

  - **उद्देश्य:**
    सकारात्मक कार्रवाई के उद्देश्य से **सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों (एसईबीसी) की अपनी सूची को मान्यता देने और बनाए रखने के** लिए **राज्य सरकारों के अधिकार को** बहाल किया गया ।
  - **संदर्भ:**
    मराठा आरक्षण मामले (2021) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद इसे अधिनियमित किया गया, जिसने एसईबीसी पहचान पर राज्य की शक्तियों को सीमित कर दिया।
  - **प्रभाव:**
    पिछड़े वर्गों की पहचान करने में राज्यों की भूमिका की पुष्टि की गई , यह सुनिश्चित किया गया कि **केंद्रीय और राज्य सूचियाँ** आरक्षण और कल्याणकारी नीतियों के लिए अलग और वैध रहें।

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

भारत में संवैधानिक संशोधन

- भारतीय **संविधान औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्र गणराज्य में** देश के परिवर्तन का एक शक्तिशाली प्रतीक है । यह लोकतांत्रिक शासन के लिए प्रतिबद्ध विविध आबादी की सामूहिक इच्छा और आकांक्षाओं को दर्शाता है।
- **पंडित जवाहरलाल नेहरू ने** एक बार इस बात पर जोर दिया था कि संविधान को मजबूत और स्थायी होना चाहिए, साथ ही उसमें राष्ट्र की **प्रगति और बदलती वास्तविकताओं के साथ बदलाव की लचीलापन भी होना चाहिए** ।
- इस दृष्टिकोण के अनुरूप, भारतीय संविधान में **संशोधन के प्रावधान शामिल हैं** , जिससे यह गतिशील सामाजिक-राजनीतिक परिवेश में प्रासंगिक बना रहता है। यह अनुकूलनशीलता सुनिश्चित करती है कि संविधान अपने आधारभूत मूल्यों को खोए बिना नई चुनौतियों और अवसरों के प्रति उत्तरदायी बना रहे।
- अब तक संविधान में **106 बार संशोधन हो चुका है** , **संशोधन की प्रक्रिया अनुच्छेद 368 में बताई गई है । यह अनुच्छेद आवश्यक विकास के साथ संवैधानिक स्थिरता को** संतुलित करते हुए परिवर्तन करने के लिए एक संरचित तंत्र प्रदान करता है ।

संशोधन के प्रकार

भारतीय संविधान में तीन तरीकों से संशोधन किया जा सकता है।

1. संसद के साधारण बहुमत द्वारा संशोधन

(अनुच्छेद 368 के दायरे से बाहर)

ये ऐसे संशोधन हैं जिनके **लिए विशेष बहुमत या राज्य अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होती है** तथा इन्हें सामान्य कानूनों की तरह पारित किया जाता है।

उदाहरणों में शामिल हैं:

- नये राज्यों का गठन या प्रवेश
- मौजूदा राज्यों की **सीमाओं** , **नामों** या **क्षेत्रों** में परिवर्तन
- **राज्य विधान परिषदों** का सृजन या उन्मूलन (अनुच्छेद 169)
- निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन
- सार्वजनिक अधिकारियों के वेतन और विशेषाधिकार

2. संसद के विशेष बहुमत द्वारा संशोधन

(अनुच्छेद 368 के अंतर्गत – खंड 2)

विशेष बहुमत की आवश्यकता :

- प्रत्येक सदन की कुल सदस्यता का बहुमत
- साथ ही उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत

इसमें निम्नलिखित परिवर्तन शामिल हैं:

- **मौलिक अधिकार (भाग III)**
- **राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत (भाग IV)**
- कोई अन्य प्रावधान **जिसके लिए राज्य अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है**

3. विशेष बहुमत द्वारा संशोधन + आधे राज्यों द्वारा अनुसमर्थन

(अनुच्छेद 368 के अंतर्गत – खंड 2, परंतुक)

संसद में विशेष बहुमत के अतिरिक्त, **कम से कम आधे राज्य विधानमंडलों द्वारा अनुसमर्थन** आवश्यक है।

निम्नलिखित संशोधनों पर लागू:

- **राष्ट्रपति की चुनाव प्रक्रिया**

- **संघ और राज्य कार्यकारिणी की शक्तियां और भूमिकाएं**
- **न्यायपालिका (सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय)**
- **विधायी शक्तियों का वितरण** (संघ, राज्य, समवर्ती सूचियाँ)
- **संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व**
- **संविधान में संशोधन की प्रक्रिया**

अनौपचारिक संशोधन

न्यायिक व्याख्या

- **भारत का सर्वोच्च न्यायालय** संवैधानिक प्रावधानों को अर्थ प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऐतिहासिक निर्णयों के माध्यम से, यह **संविधान को समझने और लागू करने के तरीके को पुनः परिभाषित कर सकता है** , भले ही वास्तविक पाठ में कोई बदलाव न किया गया हो।
- इसका एक प्रमुख उदाहरण **केशवानंद भारती मामले (1973)** में निर्धारित **मूल संरचना सिद्धांत है** । इसने स्थापित किया कि **संविधान की कुछ मौलिक विशेषताओं में संशोधन नहीं किया जा सकता है** , जिससे संसद की संशोधन शक्ति पर सीमाएं लग जाती हैं - एक सिद्धांत जिसका संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है, लेकिन व्याख्या के माध्यम से बनाया गया है।

संवैधानिक परंपराएँ

- ये **गैर-वैधानिक प्रथाएं हैं जो समय के साथ विकसित हुई हैं और राजनीतिक परंपरा या ऐतिहासिक मिसाल** के कारण इनका पालन किया जाता है । हालांकि ये कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं हैं, लेकिन ये लोकतांत्रिक प्रक्रिया के सुचारू संचालन को सुनिश्चित करते हैं।
- इसका एक प्रमुख उदाहरण **लोकसभा में बहुमत वाली** पार्टी या गठबंधन से **प्रधानमंत्री की नियुक्ति की प्रथा है** , हालांकि संविधान में इसका **स्पष्ट उल्लेख नहीं है।**
- इस तरह के सम्मेलन **लचीले और अनुकूलनीय होते हैं** , राजनीतिक वास्तविकताओं के साथ विकसित होते हैं, और **संवैधानिक शासन के अलिखित पहलुओं में योगदान देते हैं** ।

नोट:- : न्यायिक व्याख्या, परंपराएं, मूल संरचना

संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता

- भारतीय **संविधान को** एक जीवंत दस्तावेज के रूप में तैयार किया गया है, जो **समाज, शासन और प्रौद्योगिकी की बदलती जरूरतों के साथ विकसित होने में सक्षम है । संवैधानिक संशोधन** देश के कानूनी और संस्थागत ढांचे को **अद्यतन, परिष्कृत और सुदृढ़ करने** के साधन के रूप में कार्य करते हैं ।

सामाजिक न्याय और समानता को बढ़ावा देना

कमजोर समुदायों की सुरक्षा और समावेशन को बढ़ावा देने की निरंतर आवश्यकता है ।

- **उदाहरण: 106**
  वें **संविधान संशोधन (2023) ने लोकसभा** , **राज्य विधानसभाओं** और **दिल्ली विधानसभा** में **महिलाओं के लिए 33% आरक्षण** की शुरुआत की , जो लैंगिक न्याय की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम है।

लोकतांत्रिक संस्थाओं को बढ़ावा देना

राजनीतिक प्रक्रिया में **खामियों को दूर करने और लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली को स्थिर करने** के लिए अक्सर संशोधनों की आवश्यकता होती है ।

- **उदाहरण: 52**
  वें **संशोधन (1985) के तहत दलबदल विरोधी कानून** लाया गया , जिसका उद्देश्य **राजनीतिक अवसरवाद पर अंकुश लगाना** और दलबदल करने वाले विधायकों को अयोग्य ठहराकर पार्टी अनुशासन को मजबूत करना था।

3. तकनीकी परिवर्तन पर प्रतिक्रिया

नई और उभरती प्रौद्योगिकियां **जटिल कानूनी और नैतिक प्रश्न उठाती हैं** , जिनके लिए संवैधानिक या विधायी प्रतिक्रिया की आवश्यकता होती है।

- **उदाहरण:**
  डिजिटल गोपनीयता और निगरानी के बारे में बढ़ती चिंताओं के साथ , डिजिटल युग में **गोपनीयता के अधिकार को स्पष्ट रूप से मान्यता देने** के लिए चर्चा चल रही है , खासकर **पुट्टस्वामी निर्णय (2017) के बाद** ।

जमीनी स्तर पर शासन को साकार करना

संशोधनों से **विकेंद्रीकरण और भागीदारीपूर्ण लोकतंत्र** जैसे **दीर्घकालिक सामाजिक और संवैधानिक लक्ष्यों को पूरा करने में मदद मिल सकती है** ।

- **उदाहरण:** **73**
  वें **और 74वें संशोधन (1992) ने पंचायती राज** और **शहरी स्थानीय निकायों** को संस्थागत रूप दिया , जिससे महात्मा गांधी के **'ग्राम स्वराज' के सपने को** संवैधानिक वास्तविकता में तब्दील किया गया।

आर्थिक और संरचनात्मक सुधारों को सुविधाजनक बनाना

आर्थिक नियोजन और राष्ट्रीय एकीकरण को सक्षम बनाने के लिए कभी-कभी संरचनात्मक संशोधनों की आवश्यकता होती है।

- **उदाहरण** **1:** **44**
  वें **संशोधन (1978) ने संपत्ति के अधिकार को** मौलिक अधिकार से कानूनी अधिकार में बदल दिया , जिससे **भूमि सुधार और सामाजिक-आर्थिक समानता का मार्ग प्रशस्त हुआ** ।
- उदाहरण **2:**
  101वें संशोधन (2016) ने जीएसटी (वस्तु एवं सेवा कर) को लागू किया , जिससे **एकल राष्ट्रीय बाजार का निर्माण हुआ** और भारत की अप्रत्यक्ष कराधान प्रणाली सुव्यवस्थित हुई।

संवैधानिक संशोधनों से संबंधित मुद्दे

- भारत के संविधान में अन्य लोकतंत्रों की तुलना में अक्सर संशोधन किए गए हैं, जिससे मूल दस्तावेज़ की स्थिरता और सम्मान पर सवाल उठते हैं। कुछ लोगों का तर्क है कि लगातार संशोधन प्रारंभिक प्रारूपण में दूरदर्शिता की कमी या दीर्घकालिक दृष्टि की तुलना में राजनीतिक सुविधा की प्रवृत्ति को दर्शाते हैं।
- अत्यधिक संशोधनों से संसद और न्यायपालिका, केंद्र और राज्यों जैसी विभिन्न संस्थाओं के बीच शक्ति संतुलन में परिवर्तन आ सकता है, जिससे अस्थिरता पैदा हो सकती है।
- मौजूदा प्रक्रिया संसद और राज्य विधानसभाओं पर निर्भर है, जिसमें जनता की भागीदारी सीमित है। हाल के संशोधनों पर हितधारकों के साथ व्यापक सार्वजनिक चर्चा या परामर्श नहीं हुआ है, जिससे लोकतांत्रिक वैधता को लेकर चिंताएँ बढ़ रही हैं।
- एक मजबूत केंद्रीय सरकार जिसके पास बहुत अधिक बहुमत है, वह अल्पसंख्यकों के विचारों पर विचार किए बिना संशोधनों को पारित कर सकती है। इस बात की चिंता है कि संघीय संतुलन या मौलिक अधिकारों को प्रभावित करने वाले संशोधन केवल सत्तारूढ़ पार्टी के बहुमत के आधार पर पारित हो सकते हैं।
- इस बात पर बहस जारी है कि संसद किस हद तक संविधान के "मूल ढांचे" (अपरिवर्तनीय सिद्धांतों) में संशोधन कर सकती है। सुप्रीम कोर्ट के ऐतिहासिक फैसलों ने "मूल ढांचे" के सिद्धांत को स्थापित किया, लेकिन इसके सटीक दायरे पर बहस जारी है, जिससे संशोधन प्रक्रिया के बारे में अनिश्चितता बनी हुई है।

संशोधन प्रक्रिया की आलोचना

- आलोचकों का तर्क है कि संविधान में संशोधन करने की शक्ति मुख्य रूप से संसद के पास है, जो व्यक्तिगत राज्यों की आवाज को कम महत्व देकर संघीय संतुलन की उपेक्षा कर रही है।
- मौजूदा संशोधन प्रक्रिया में जनमत संग्रह जैसे प्रत्यक्ष सार्वजनिक भागीदारी के प्रावधान नहीं हैं। इससे जनमत

को शामिल करके संशोधनों की लोकतांत्रिक वैधता को बढ़ाया जा सकता है।

- कुछ देशों के विपरीत, भारत में संवैधानिक सम्मेलन जैसी कोई नामित संस्था नहीं है जिसे विशेष रूप से संशोधन प्रस्तावित करने का काम सौंपा गया हो। इससे संभावित रूप से प्रक्रिया को सुव्यवस्थित किया जा सकता है और अधिक व्यापक समीक्षा सुनिश्चित की जा सकती है।
- विशेष बहुमत की आवश्यकता को छोड़कर, संशोधन प्रक्रिया सामान्य विधेयकों को पारित करने के समान ही है। आलोचक मौलिक परिवर्तनों के लिए अधिक कठोर प्रक्रिया की वकालत करते हैं।
- संविधान में राज्य विधानसभाओं द्वारा संशोधनों को अनुमोदित करने के लिए कोई समय-सीमा निर्दिष्ट नहीं की गई है, जिसके कारण संभावित विलंब और अनिश्चितताएं उत्पन्न हो सकती हैं।
- इस बात पर कोई स्पष्टता नहीं है कि राज्य किसी संशोधन को प्रारम्भिक रूप से अनुमोदित करने के बाद अपना अनुमोदन वापस ले सकते हैं या नहीं।
- यदि संसद के दोनों सदन किसी संशोधन पर असहमत हों तो इस प्रक्रिया में गतिरोध को हल करने के लिए कोई तंत्र नहीं है।

आगे बढ़ने का रास्ता

एक समर्पित समीक्षा निकाय का निर्माण

- **प्रस्तावित संशोधनों का** विस्तार से मूल्यांकन करने के लिए एक **स्थायी संवैधानिक समीक्षा समिति** या सलाहकार परिषद की स्थापना की जा सकती है । यह निकाय उनकी **आवश्यकता, निहितार्थ और संविधान के मूल मूल्यों के साथ संरेखण का आकलन करेगा** , इस प्रकार आवेगपूर्ण या राजनीतिक रूप से प्रेरित परिवर्तनों से बचा जा सकेगा।

संयुक्त संसदीय समिति (जेपीसी) का गठन

- सभी प्रमुख राजनीतिक दलों सहित **लोकसभा और राज्यसभा** दोनों के प्रतिनिधित्व वाली एक **संयुक्त संसदीय समिति की शुरुआत करने से** संवैधानिक प्रस्तावों पर **गहन जांच और द्विदलीय संवाद संभव होगा। इससे व्यापक राजनीतिक सहमति को बढ़ावा मिलेगा** और एकतरफावाद को हतोत्साहित किया जाएगा।

संसदीय गतिरोधों को हल करने के लिए तंत्र

- दोनों सदनों के बीच संभावित असहमति को दूर करने के लिए एक **संरचित गतिरोध समाधान प्रक्रिया** शुरू की जा सकती है। इसमें निम्न शामिल हो सकते हैं:
  - **संयुक्त बैठक मॉडल**
  - **मध्यस्थता पैनल**
  - विवादास्पद संशोधनों के लिए **अस्थायी बहुमत सीमा**

इस तरह की व्यवस्था से **संस्थागत संतुलन और** संशोधन प्रक्रिया का सुचारू संचालन सुनिश्चित होगा।

विधानमंडलों **की भूमिका को मजबूत करना**

- अधिक **परामर्श और भागीदारी** भारत के **संघीय चरित्र को मजबूत कर सकती है** । उनकी **सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करना - केवल अनुसमर्थन से परे** - केंद्र-राज्य संबंधों को प्रभावित करने वाले संशोधनों की **प्रतिनिधित्व क्षमता और वैधता को** बढ़ाएगा ।

प्रक्रियात्मक दिशा-निर्देशों को स्पष्ट करना

- संवैधानिक संशोधनों के प्रस्ताव, बहस और पारित करने के लिए **विस्तृत और पारदर्शी प्रक्रियाओं** को संहिताबद्ध करने से **अस्पष्टताएं और प्रक्रियागत दुरुपयोग कम हो जाएगा, जिससे जवाबदेही** बढ़ेगी ।

राज्य अनुसमर्थन पर समय सीमा लागू करना

- अनिश्चितकालीन देरी से बचने के लिए, **राज्य विधानसभाओं के लिए प्रस्तावित संशोधनों पर प्रतिक्रिया देने के लिए एक निश्चित समय सीमा** (जैसे, 6 महीने या 1 वर्ष) पेश की जा सकती है, जिसके लिए उनके अनुसमर्थन की आवश्यकता होती है। इससे प्रक्रिया में **निश्चितता और अनुशासन** आएगा ।

106 वां संविधान संशोधन, 2023

प्रमुख प्रावधान:

- इस अधिनियम में **लोकसभा , राज्य विधानसभाओं** और **दिल्ली विधानसभा** में **महिलाओं के लिए 33% आरक्षण का प्रावधान है** ।
- यह **एक-तिहाई आरक्षण सामान्य और आरक्षित** दोनों श्रेणियों पर लागू होता है , अर्थात इसमें **अनुसूचित जाति (एससी)** और **अनुसूचित जनजाति (एसटी) के लिए आरक्षित सीटें शामिल हैं** ।
- आरक्षण **परिसीमन के बाद लागू किया जाएगा** , जो **2026 की जनगणना के बाद होने की उम्मीद है** ।

महत्व:

- इसका उद्देश्य औपचारिक राजनीतिक स्थानों में **महिलाओं की भागीदारी बढ़ाना तथा** शासन में **लैंगिक समानता को आगे बढ़ाना है ।**
- विधायी चर्चाओं और नीति निर्माण में **महिलाओं की चिंताओं के प्रतिनिधित्व में** सुधार की उम्मीद है ।
- **प्रेरक शक्ति** के रूप में काम कर सकता है , तथा अधिक महिलाओं को सार्वजनिक सेवा और राजनीति में करियर बनाने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है।

प्रमुख आलोचनाएँ एवं चिंताएँ:

- **चक्रीय आरक्षण मुद्दा: प्रत्येक चुनाव में आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों का चक्रीयकरण** निरंतरता को बाधित कर सकता है और महिला नेताओं के लिए **दीर्घकालिक राजनीतिक करियर बनाना मुश्किल बना सकता है** ।
- **मौजूदा एससी/एसटी आरक्षण के साथ ओवरलैप:** कुछ आलोचकों का तर्क है कि **महिलाओं के लिए पहले से आरक्षित एससी/एसटी सीटों का एक हिस्सा आरक्षित करने से इन समुदायों के पुरुष उम्मीदवारों के लिए उपलब्ध सीटों की संख्या कम हो सकती है, जिससे आंतरिक प्रतिनिधित्व गतिशीलता में** संभावित रूप से बदलाव आ सकता है ।
- **कोटा के भीतर कोटा पर बहस: अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए उप-आरक्षण** का कार्यान्वयन **परिचालन संबंधी जटिलता** और अन्य पिछड़े समूहों के लिए **समावेशिता** के प्रश्न उठाता है ।
- **संख्या बनाम योग्यता पर बहस:** आलोचकों का तर्क है कि **मात्र आरक्षण से गुणवत्तापूर्ण नेतृत्व सुनिश्चित नहीं हो सकता है** , तथा क्षमता, प्रशिक्षण और संस्थागत समर्थन भी समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।
- 106वां संशोधन भारत की राजनीतिक व्यवस्था में **महिलाओं को सशक्त बनाने की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम है** । हालांकि यह समानता के मार्ग पर प्रगति को दर्शाता है, लेकिन विशेषज्ञ इस बात पर जोर देते हैं कि **सच्चे लैंगिक न्याय के लिए व्यापक संरचनात्मक सुधारों की** आवश्यकता होगी , जिसमें **क्षमता निर्माण, राजनीतिक समर्थन और** समाज में दृष्टिकोण में बदलाव शामिल है।

संविधान की मूल संरचना

मूल **संरचना सिद्धांत भारत के सर्वोच्च न्यायालय** द्वारा विकसित एक न्यायिक नवाचार है , जिसमें कहा गया है कि **संविधान के** कुछ मूल तत्व इतने मौलिक हैं कि उन्हें **अनुच्छेद 368** के तहत संविधान संशोधन द्वारा भी **बदला या नष्ट नहीं किया जा सकता है** ।

उत्पत्ति और विकास:

- इस अवधारणा को संविधान में **स्पष्ट रूप से नहीं बताया गया है । इसके बजाय, यह समय के साथ न्यायिक व्याख्या के माध्यम से विकसित हुई है** ।
- **केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)** के **ऐतिहासिक फैसले** में व्यक्त किया गया था , जहां सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला दिया था कि संसद के पास संविधान में संशोधन करने की व्यापक शक्तियां

हैं, लेकिन वह **इसके "मूल ढांचे" में बदलाव नहीं कर सकती है।**

- **गोलकनाथ (1967)** जैसे पूर्ववर्ती मामलों ने संसद की संशोधन शक्तियों को सीमित करके इस विकास की नींव रखी।

केशवानंद भारती निर्णय

ऐतिहासिक **केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)** मामले में, **भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने** फैसला दिया कि संसद संविधान के **"मूल ढांचे" में बदलाव नहीं कर सकती , यहां तक कि अनुच्छेद 368 के तहत अपनी संशोधन शक्तियों का प्रयोग करते हुए भी** ।

- इस मामले की सुनवाई **13 न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ द्वारा की गई** , जो सर्वोच्च न्यायालय के इतिहास में **अब तक गठित सबसे बड़ी पीठ थी ।**
- इस निर्णय ने संसद के संविधान में संशोधन करने के अधिकार को बरकरार रखते हुए एक महत्वपूर्ण संतुलन कायम किया, साथ ही इस बात पर जोर दिया कि **लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, संघवाद** और **न्यायिक समीक्षा** जैसे **मूल संवैधानिक सिद्धांत** बरकरार रहने चाहिए।

केरल में एडनीर मठ के महंत और मामले में याचिकाकर्ता **केशवानंद भारती भारतीय संवैधानिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति बन गए। 2020 में उनका निधन हो गया , और वे अपने पीछे संविधान के मूलभूत सिद्धांतों की रक्षा करने वाले सिद्धांत** से जुड़ी विरासत छोड़ गए ।

मूल संरचना के तत्व

पिछले कुछ वर्षों में सर्वोच्च न्यायालय ने **विभिन्न** निर्णयों के माध्यम से अनेक विशेषताओं को संविधान के मूल ढांचे के भाग के रूप में मान्यता दी है।

इनमें से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

- संविधान की सर्वोच्चता;
- संविधान का धर्मनिरपेक्ष और संघीय चरित्र;
- भारत की संप्रभुता;
- राष्ट्र की एकता और अखंडता
- न्यायिक समीक्षा;
- मौलिक अधिकारों और **नीति** निर्देशक सिद्धांतों आदि के बीच संतुलन

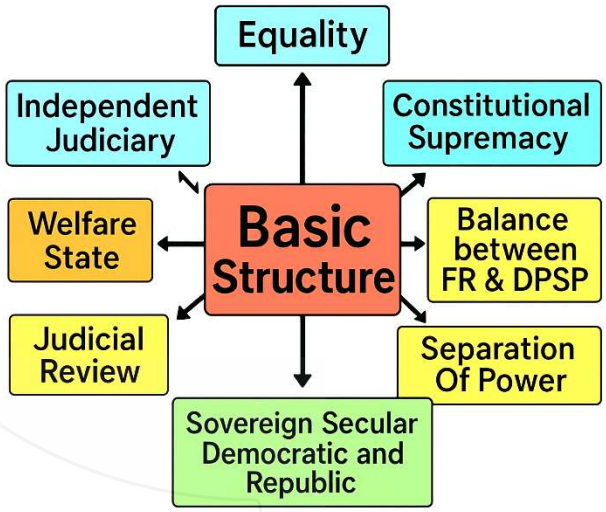

Fig: Basic Structure of the Constitution of India

मूल संरचना का महत्व

- मूल संरचना सिद्धांत संविधान निर्माताओं द्वारा परिकल्पित मौलिक **सिद्धांतों** की रक्षा करता है तथा यह सुनिश्चित करता है कि भारत एक लोकतांत्रिक, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और गणतांत्रिक राष्ट्र बना रहे।
- यह संसद को ऐसे आमूलचूल परिवर्तन करने से रोकता है जो संविधान के सार को **नष्ट** कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, संसद न्यायिक **समीक्षा** शक्ति को समाप्त नहीं कर सकती या एक **धर्मशासित** राज्य की शुरुआत नहीं कर सकती।
- संशोधनों पर सीमाएं लगाकर, मूल संरचना सिद्धांत संविधान को सर्वोच्च कानून के रूप में कायम रखता है, तथा संसद में अस्थायी बहुमत द्वारा इसके क्षरण को रोकता है।
- यह न्यायपालिका को **संशोधनों** की समीक्षा करने और बुनियादी ढांचे का **उल्लंघन** करने वालों को खारिज करने का अधिकार देता है। केशवानंद भारती मामले (1973) में यह महत्वपूर्ण था, जहां **सर्वोच्च** न्यायालय ने पूर्ण संसदीय नियंत्रण से मौलिक **अधिकारों** की रक्षा की थी।

- मूल संरचना सिद्धांत न्यायिक क्षेत्र में संसद के अतिक्रमण को रोककर न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित करता है।
- उदाहरण के लिए, 99वें संविधान संशोधन अधिनियम 2014, जिसमें राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (एनजेएसी) का प्रस्ताव था, को संविधान के मूल ढांचे का उल्लंघन करने के कारण रद्द कर दिया गया था।

मूल संरचना की आलोचना

- आलोचकों का तर्क है कि यह न्यायपालिका को अत्यधिक शक्ति प्रदान करता है, जिससे उन्हें "मूल संरचना" को व्यक्तिपरक रूप से परिभाषित करने और संभवतः अपनी भूमिका का अतिक्रमण करने की अनुमति मिल जाती है।
- "मूल संरचना" की अवधारणा स्वयं अस्पष्ट है, इसमें स्पष्ट परिभाषा का अभाव है तथा सम्भवतः इसका अनुप्रयोग असंगत हो सकता है।
- यह सिद्धांत कानून निर्माण में संसद की सर्वोच्चता के सिद्धांत को कमजोर करता है।
- आलोचकों का तर्क है कि यह संसद की संविधान में संशोधन करने की शक्ति को प्रतिबंधित करता है, यहां तक कि संभावित रूप से लाभकारी परिवर्तनों के लिए भी।
- संविधान में इस सिद्धांत का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है, जिससे इसकी कानूनी वैधता पर सवाल उठते हैं।

सिद्धांत की व्यक्तिपरकता से जुड़े इन मुद्दों को संबोधित किया जाना चाहिए, संभवतः न्यायिक और संसदीय सहयोग द्वारा बुनियादी विशेषताओं के संहिताकरण के माध्यम से, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सिद्धांत वास्तव में बहुसंख्यकवाद और अधिनायकवाद के खिलाफ सुरक्षा के रूप में कार्य करता है, और इस प्रकार भारत में संविधान और लोकतंत्र की रक्षा करता है।

आईआर कोएलो मामला: बुनियादी संरचना सिद्धांत को मजबूत करना

आईआर कोएलो मामला एक ऐतिहासिक निर्णय है जिसने भारतीय संवैधानिक कानून में मूल संरचना सिद्धांत की अवधारणा को और मजबूत किया। मामले के मुख्य पहलू इस प्रकार हैं:

नौवीं अनुसूची सीमित: न्यायालय ने निर्णय दिया कि 1973 के बाद नौवीं अनुसूची में जोड़े गए कानून (चुनौती से अतिरिक्त संरक्षण प्रदान करते हुए) को रद्द किया जा सकता है, यदि वे संविधान के मूल ढांचे का उल्लंघन करते हैं।

न्यायिक समीक्षा को बरकरार रखा गया: इस मामले ने न्यायिक समीक्षा को मूल ढांचे के एक मौलिक पहलू के रूप में पुष्ट किया, तथा यह सुनिश्चित किया कि सभी कानूनों, यहां तक कि नौवीं अनुसूची में शामिल कानूनों की भी संवैधानिकता के लिए समीक्षा की जा सकती है।

अतिक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा: इस निर्णय ने इस सिद्धांत को पुख्ता किया कि संशोधन शक्ति सहित कोई भी शक्ति न्यायिक समीक्षा से परे नहीं है। यह विधायिका या कार्यपालिका द्वारा मनमानी कार्रवाइयों से सुरक्षा प्रदान करता है।

मूल मूल्यों का संरक्षण: न्यायालय ने दोहराया कि संविधान के मूल सिद्धांतों का उल्लंघन करने वाले संशोधन अमान्य होंगे तथा इससे इसके आवश्यक मूल्यों की रक्षा होगी।

मुख्य शब्द: संवैधानिक मशीनरी; संवैधानिकता; बहुसंख्यकवाद; अधिनायकवाद; तीसरा सदन; न्यायिक अतिक्रमण; बहुसंख्यकवाद; अधिनायकवाद।

पिछले वर्ष के प्रश्न

प्रश्न: "संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्ति एक सीमित शक्ति है और इसे पूर्ण शक्ति में विस्तारित नहीं किया जा सकता है।" इस कथन के आलोक में स्पष्ट करें कि क्या संविधान के अनुच्छेद 368 के तहत संसद अपनी संशोधन शक्ति का विस्तार करके संविधान के मूल ढांचे को नष्ट कर सकती है? - 2019

प्रश्न: कोएलो मामले में क्या निर्णय दिया गया था? इस संदर्भ में, क्या आप कह सकते हैं कि न्यायिक समीक्षा संविधान की बुनियादी विशेषताओं में सबसे महत्वपूर्ण है? - 2016

भारतीय संविधान में महत्वपूर्ण प्रावधान

इंडिया या भारत एक संप्रभु, समाजवादी, **धर्मनिरपेक्ष** और लोकतांत्रिक गणराज्य है जो संसदीय शासन **प्रणाली** का पालन करता है। इसमें भारतीय संविधान के ढांचे के तहत काम करने वाले राज्यों का एक संघ शामिल है।

भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं: **इनमें** संविधान के आवश्यक स्तंभ जैसे प्रस्तावना, मौलिक **अधिकार**, मौलिक कर्तव्य, राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत, **सार्वभौमिक** वयस्क मताधिकार, एकल नागरिकता और शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत शामिल हैं।

<u>महत्वपूर्ण प्रावधान: एक गहन विश्लेषण</u>

- **<u>प्रस्तावना</u>**
  - यह शब्द किसी दस्तावेज़ के **परिचयात्मक** भाग को संदर्भित करता है। भारत के **संविधान** की प्रस्तावना इसके मूल सिद्धांतों का सारांश **प्रस्तुत** करती है।
  - पंडित नेहरू के "उद्देश्य प्रस्ताव" के आधार पर, प्रस्तावना संविधान के राजनीतिक, नैतिक और धार्मिक मूल मूल्यों को रेखांकित करती है। यह संविधान सभा के **दृष्टिकोण** और भारत के संस्थापकों की आकांक्षाओं को **दर्शाता** है।
  - यह विभिन्न पक्षों की ओर से जांच के दायरे में आ गया है, तथा इस बात पर बहस चल रही है कि क्या 'समाजवादी' और '**धर्मनिरपेक्ष**' शब्दों को हटा दिया जाना चाहिए या बरकरार रखा जाना चाहिए।
- **<u>सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार:</u>**
  - यह "एक व्यक्ति, एक वोट" के लोकतांत्रिक सिद्धांत को मूर्त रूप देता है, तथा राजनीतिक समानता सुनिश्चित करता है।
- **<u>एकल नागरिकता:</u>**
  - यह अनूठी विशेषता सभी नागरिकों को उनके निवास स्थान की परवाह **किए** बिना समान अधिकार और विशेषाधिकार प्रदान करती है।
  - बढ़ते अंतर्राज्यीय **प्रवासन** और राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (एनआरसी) से संबंधित चर्चाओं के संदर्भ में, यह प्रावधान महत्वपूर्ण प्रासंगिकता रखता है।
- **<u>मौलिक अधिकार:</u>**
  - भारतीय संविधान में **मौलिक** अधिकारों का एक समूह निहित है, जिसे **न्यायालयों** द्वारा कानूनी रूप से लागू किया जा सकता है, जिसमें नागरिक स्वतंत्रता, राजनीतिक अधिकार और निष्पक्ष सुनवाई प्रक्रियाएं शामिल हैं।
  - ये अधिकार राज्य की मनमानी शक्ति के विरुद्ध एक ढाल के रूप में कार्य करते हैं तथा नागरिकों को सरकारी अतिक्रमण से बचाते हैं।
  - हाल ही में नागरिकता संशोधन अधिनियम (सीएए) ने इस बात पर बहस छेड़ दी है कि यह समानता के अधिकार और **धर्मनिरपेक्षता** के सिद्धांत को किस प्रकार प्रभावित करेगा।
- **<u>राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत:</u>**
  - ये सरकार के लिए गैर-न्यायसंगत दिशानिर्देश हैं, जिनका उद्देश्य एक न्यायसंगत और समतापूर्ण समाज की स्थापना करना है।

- यद्यपि ये न्यायालय द्वारा प्रत्यक्ष रूप से लागू नहीं किये जा सकते, फिर भी ये सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देने वाले कानून बनाने में राज्य का मार्गदर्शन करते हैं।
- अनुच्छेद 44 में परिकल्पित समान नागरिक संहिता के क्रियान्वयन के बारे में चल रहा विमर्श, नीति निर्देशक सिद्धांतों की गतिशील व्याख्या का उदाहरण है।

<u>मौलिक कर्तव्य:</u>

- मौलिक कर्तव्य, सोवियत संघ से प्रेरित एक अवधारणा, भारतीय नागरिकता का एक अनिवार्य पहलू है।
- वे अधिकारों के साथ-साथ जिम्मेदारियों पर भी जोर देते हैं, नागरिक नैतिकता और सामाजिक सामंजस्य को बढ़ावा देते हैं। हालांकि, उनकी गैर-न्यायसंगत प्रकृति का मतलब है कि प्रवर्तन व्यक्तिगत विवेक पर निर्भर करता है।
- अनिवार्य मतदान के बारे में चर्चाओं में अक्सर नागरिकों द्वारा अपने मौलिक कर्तव्यों को पूरा करने के महत्व पर प्रकाश डाला जाता है।

<u>शक्तियों का पृथक्करण</u>

- शक्तियों का पृथक्करण एक मौलिक सिद्धांत है जो सरकारी प्राधिकार को विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच विभाजित करता है।
- शक्ति का यह वितरण सुनिश्चित करता है कि कोई भी शाखा अत्यधिक शक्तिशाली न बन जाए तथा प्राधिकार का दुरुपयोग रोका जा सके।
- संविधान के संरक्षक के रूप में न्यायपालिका की भूमिका, विशेषकर न्यायिक सक्रियता पर बहस के दौरान, इस सिद्धांत के महत्व को दर्शाती है।

प्रस्तावना

संविधान की प्रस्तावना इसके मूल सिद्धांतों और उद्देश्यों को रेखांकित करती है। वेंगलिल कृष्णन कृष्ण मेनन द्वारा तैयार की गई यह प्रस्तावना "हम भारत के लोग" को सत्ता का स्रोत स्थापित करती है और संविधान के उद्देश्यों के साथ-साथ भारत के चरित्र को भी परिभाषित करती है।

प्रस्तावना से समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष शब्दों को हटाया जाना

- संदर्भ: सर्वोच्च न्यायालय दो याचिकाओं पर सुनवाई कर रहा था, जिनमें संविधान की प्रस्तावना से "धर्मनिरपेक्ष" और "समाजवादी" शब्दों को हटाने की मांग की गई थी।
- हाल ही में, सर्वोच्च न्यायालय (एससी) इस बात की जांच करने के लिए सहमत हो गया कि क्या "समाजवादी" और "धर्मनिरपेक्ष" शब्दों को 1976 में भारतीय संविधान की प्रस्तावना में शामिल किया जा सकता था, भले ही संविधान को अपनाने की तिथि अपरिवर्तित रही, अर्थात 26 नवंबर, 1949।

<u>प्रस्तावना में "समाजवादी" और "धर्मनिरपेक्ष" शब्दों को बरकरार रखने के पक्ष में तर्क:</u>

- मूल मूल्यों को सुदृढ़ करना: ये शब्द स्पष्ट रूप से सामाजिक और आर्थिक न्याय, असमानता को कम करने और सभी नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के प्रति प्रतिबद्धता पर जोर देते हैं।
- निरंतरता और स्थिरता: इन्हें हटाना संविधान के मूल उद्देश्य के साथ छेड़छाड़ माना जा सकता है और इससे अनिश्चितता पैदा हो सकती है।
- ऐतिहासिक संदर्भ को संबोधित करते हुए: ये शब्द स्वतंत्रता के बाद अल्पसंख्यकों और आर्थिक असमानता से संबंधित चिंताओं को संबोधित करने के लिए जोड़े गए थे, जो भारत की विशिष्ट स्थिति को दर्शाते हैं।
- व्याख्या में लचीलापन: "समाजवादी" और "धर्मनिरपेक्ष" शब्द किसी कठोर आर्थिक मॉडल या धार्मिक नीति की व्याख्या नहीं करते हैं। वे बदलती जरूरतों के आधार पर अनुकूलन और व्याख्या की अनुमति देते हैं।
- धर्मनिरपेक्ष पहचान: "धर्मनिरपेक्ष" शब्द को हटाने से भारत की धार्मिक सहिष्णुता और सभी धर्मों के लिए समान व्यवहार की प्रतिबद्धता के बारे में चिंताएँ पैदा हो सकती हैं। इससे धार्मिक राष्ट्रवाद को बढ़ावा मिल सकता है और अल्पसंख्यक समुदायों में चिंताएँ पैदा हो सकती हैं।

<u>प्रस्तावना में "समाजवादी" और "धर्मनिरपेक्ष" शब्दों को बरकरार रखने के विरुद्ध तर्क:</u>

- ऐतिहासिक अधिरोपण: आलोचकों का तर्क है कि ये शब्द आपातकाल (1975) के दौरान डाले गए थे, जो सत्तावादी शासन का दौर था, और ये मूल लोकतांत्रिक भावना को प्रतिबिंबित नहीं करते हैं।

- अनावश्यकता: न्याय, समानता और स्वतंत्रता के मूल सिद्धांत पहले से ही प्रस्तावना में निहित हैं। इन शब्दों को अनावश्यक दोहराव के रूप में देखा जा सकता है।
- आर्थिक मॉडल पर बहस: "समाजवादी" शब्द को वैश्वीकृत दुनिया में पुराना या आर्थिक विकास में बाधा डालने वाला माना जा सकता है।
- धर्मनिरपेक्षता की गलत व्याख्या: कुछ लोग तर्क देते हैं कि इससे धर्मनिरपेक्षता की गलत भावना पैदा होती है, जबकि भारत स्वाभाविक रूप से एक बहु-धार्मिक समाज है।
- राजनीतिक एजेंडा: हटाने का प्रयास भारतीय राज्य के चरित्र को बदलने के राजनीतिक एजेंडे से प्रेरित हो सकता है।

संविधान की धर्मनिरपेक्ष प्रकृति और कानून के शासन के माध्यम से समतावादी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, भारतीय संविधान के मूल ढांचे का हिस्सा हैं। इसलिए, जैसा कि केशवानंद भारती मामले में कहा गया है, संसद संविधान के मूल ढांचे और संवैधानिक मूल्यों से समझौता किए बिना प्रस्तावना सहित संविधान के किसी भी हिस्से में संशोधन कर सकती है।

प्रस्तावना का महत्व

- प्राधिकार का स्रोत: यह संविधान के प्राधिकार का स्रोत "हम, भारत के लोग" घोषित करता है, तथा एक लोकतांत्रिक आधार स्थापित करता है।
- राष्ट्र को परिभाषित करता है: यह भारत को एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में परिभाषित करता है, तथा इसके मूल सिद्धांतों को रेखांकित करता है।
- राष्ट्र के सिद्धांतों.
- लक्ष्य निर्धारित करता है: यह सभी नागरिकों के लिए न्याय (सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक), स्वतंत्रता और समानता सुनिश्चित करने के मूलभूत लक्ष्य निर्धारित करता है।
- व्याख्या के लिए मार्गदर्शक: न्यायालय कानूनी विवादों के दौरान संविधान के प्रावधानों की व्याख्या करने के लिए प्रस्तावना का उपयोग करते हैं।
- आदर्शों का प्रतिबिंब: यह एक न्यायपूर्ण और समतापूर्ण समाज के लिए संविधान निर्माताओं के आदर्शवादी दृष्टिकोण को दर्शाता है।

प्रस्तावना में संशोधनीयता

- यह प्रश्न कि क्या प्रस्तावना में संशोधन किया जा सकता है, कई महत्वपूर्ण मामलों में चर्चा में आया है।
- सीमित संशोधन दृष्टिकोण (बेरुबारी केस, 1960): प्रारंभ में, सुप्रीम कोर्ट ने बेरुबारी केस (1960) में माना था कि प्रस्तावना संविधान का हिस्सा नहीं है और इसलिए इसमें संशोधन नहीं किया जा सकता।
- प्रस्तावना में संशोधन योग्य (केशवानंद भारती केस, 1973): हालाँकि, प्रस्तावना में एक ऐतिहासिक बदलाव हुआ।
- केशवानंद भारती केस (1973)। न्यायालय ने अपनी स्थिति को पलटते हुए प्रस्तावना को संविधान का हिस्सा घोषित किया और कहा कि इसमें संशोधन किया जा सकता है, बशर्ते कि संशोधन संविधान के "मूल ढांचे" का उल्लंघन न करे।
- हालिया प्रस्ताव: इसके मद्देनजर, हालिया प्रस्तावों में प्रस्तावना में "समाजवादी" शब्द के स्थान पर "समतावादी" शब्द रखने का प्रस्ताव शामिल है, जिससे इस संशोधन के संभावित प्रयोग के बारे में बहस छिड़ गई है।
- प्रस्तावना में वे मूल्य समाहित हैं, जिन्होंने भारत के स्वतंत्रता संग्राम को दिशा दी और देश के लोकतांत्रिक ढांचे की नींव रखी। ये मूल्य राष्ट्र की प्रगति और न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की खोज के लिए महत्वपूर्ण हैं।
- **नोट:-** : अधिकार का स्रोत, पहचान पत्र, मार्गदर्शक प्रकाश, आदर्शों का प्रतिबिंब।

समाचार में मुद्दे

लाइसाइट: धर्मनिरपेक्षता का फ्रांसीसी सिद्धांत

- **पृष्ठभूमि :**
  - सार्वजनिक स्कूलों में अबाया (बुर्के जैसा लंबा वस्त्र) **के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया है , तथा इस कदम को लैसिटे (Laïcité)** नामक अपने मूल धर्मनिरपेक्ष सिद्धांत के तहत उचित ठहराया है ।
  - फ्रांसीसी संदर्भ में , धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या **शिक्षा के माध्यम से स्वतंत्र रूप से विकसित होने की स्वतंत्रता के रूप में की जाती है** , जहां धार्मिक पहचान को सार्वजनिक शैक्षिक स्थानों में स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं किया जाना चाहिए।
- **लैसिटे को समझना :**

- **19वीं शताब्दी** में शुरू हुआ **लैसिटे** फ्रांस में **धर्म और राज्य के बीच सख्त विभाजन** का मॉडल प्रस्तुत करता है ।
- यह **फ्रांसीसी संविधान** में अंतर्निहित है और **धर्म-तटस्थ सार्वजनिक क्षेत्र का समर्थन करता है , जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व** के रिपब्लिकन मूल्यों पर आधारित है ।

<u>भारतीय और फ्रांसीसी धर्मनिरपेक्षता के बीच अंतर</u>

- **धार्मिक स्वतंत्रता:-** व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के अपने धर्म को **मानने, आचरण करने और प्रचार करने के लिए स्वतंत्र हैं।**
- **कानूनी समानता:-** कानून धर्म के आधार पर नागरिकों के बीच **भेदभाव नहीं करता है ।**
- **सरकारी निष्पक्षता:-** राज्य **तटस्थता बनाए रखता है** और किसी विशेष धर्म को बढ़ावा या समर्थन नहीं देता है।
- **अल्पसंख्यकों की सुरक्षा:- दोनों देश** धार्मिक अल्पसंख्यकों के **अधिकारों और पहचान की सुरक्षा** के लिए प्रतिबद्ध हैं ।
- **विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता:- लोगों को धार्मिक सिद्धांतों पर चर्चा करने, आलोचना करने या सवाल उठाने** की अनुमति है , जो खुले संवाद के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

<u>भारतीय और फ्रांसीसी धर्मनिरपेक्षता के बीच अंतर</u>

आधार	भारत	फ्रांस
मुख्य सिद्धांत	"सर्व धर्म समभाव" – सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान; यह सार्वजनिक जीवन में धर्म के प्रति अधिक समावेशी दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है।	"लाइसिटे" – धर्म को राज्य और सार्वजनिक क्षेत्र से कड़ाई से पृथक करने पर जोर।
धार्मिक अभिव्यक्ति	सामान्यतः, सार्वजनिक स्थानों में धार्मिक प्रतीकों की अनुमति है। उदाहरण के लिए, सिखों को पगड़ी के कारण दोपहिया वाहन चलाते समय हेलमेट पहनने से छूट मिलती है।	धार्मिक प्रतीकों के संबंध में कड़े नियम हैं; जैसे सार्वजनिक स्कूलों में स्पष्ट धार्मिक प्रतीकों पर प्रतिबंध, जिससे विवाद उठता है।
राज्य वित्तपोषण	धार्मिक संस्थानों को राज्य निधि प्रदान करने की अनुमति।	लाइसिटे के तहत धार्मिक संस्थानों के लिए राज्य निधि निषिद्ध।
व्यक्तिगत कानून	विभिन्न धार्मिक समुदायों के लिए अलग व्यक्तिगत कानून मान्यता प्राप्त (विवाह, तलाक, वसीयत जैसे—हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम)।	सभी नागरिकों पर धर्म की परवाह किए बिना लागू एक एकीकृत सिविल संहिता लागू।
राज्य की भागीदारी	राज्य विभिन्न धार्मिक समुदायों और उनकी संस्थाओं के साथ अक्सर संपर्क करता है और उन्हें समर्थन देता है।	सार्वजनिक संस्थाओं को पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष रहना अनिवार्य; किसी भी धार्मिक समर्थन या भागीदारी से बचना।

हर देश में धर्मनिरपेक्षता उसकी विशिष्ट ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि से आकार लेती है, जिससे यह एक सार्वभौमिक मॉडल के बजाय संदर्भ-निर्भर अवधारणा बन जाती है। फ्रांस, अपनी कानूनी और ऐतिहासिक परंपराओं का पालन करते हुए, भारतीय धर्मनिरपेक्षता के उन पहलुओं को चुन सकता है जो उसके राष्ट्रीय लोकाचार और नीतिगत लक्ष्यों के साथ संरेखित हों।

<u>पिछले वर्ष के प्रश्न</u>

प्रश्न: प्रासंगिक संवैधानिक प्रावधानों और केस कानूनों की मदद से लैंगिक न्याय के संवैधानिक दृष्टिकोण की व्याख्या करें।-2023

प्रश्न: धर्मनिरपेक्षता के प्रति भारतीय संविधान के दृष्टिकोण से फ्रांस क्या सीख सकता है? - 2019

प्रश्न: 'प्रस्तावना' में 'गणतंत्र' शब्द से जुड़े प्रत्येक विशेषण पर चर्चा करें। क्या वर्तमान परिस्थितियों में उनका बचाव किया जा सकता है? - 2016

मौलिक अधिकार (भाग III, अनुच्छेद 12-35)

भारतीय संविधान के भाग III (अनुच्छेद 12 से 35) में वर्णित **मौलिक अधिकार , प्रत्येक भारतीय नागरिक को उपलब्ध आवश्यक स्वतंत्रता और सुरक्षा का** प्रतिनिधित्व करते हैं । ये अधिकार **गरिमा, स्वतंत्रता और समानता** से युक्त जीवन सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं ।

वे **मनमाने राज्य सत्ता पर अंकुश लगाने का काम करते हैं** , सरकार को व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उल्लंघन करने से रोकते हैं। किसी की **जाति, धर्म, लिंग या सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि चाहे जो भी हो** , ये अधिकार **सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू होते हैं** , जो न्याय और गैर-भेदभाव के सिद्धांतों को मजबूत करते हैं।

मौलिक अधिकारों की विशिष्ट विशेषताएं

- **कानून द्वारा प्रवर्तनीय** : मौलिक अधिकार (भाग III) कानूनी रूप से बाध्यकारी हैं और इन्हें सीधे अदालतों के माध्यम से लागू किया जा सकता है। यदि इन अधिकारों का उल्लंघन होता है तो नागरिकों को रिट याचिकाओं का उपयोग करके सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय में जाने का अधिकार है।
- **उचित प्रतिबंधों के अधीन** : ये अधिकार असीमित नहीं हैं। राज्य राष्ट्रीय सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता या नैतिकता जैसे क्षेत्रों में उचित प्रतिबंध लगा सकता है। न्यायालय न्यायिक समीक्षा की प्रक्रिया के माध्यम से सुनिश्चित करते हैं कि ऐसे प्रतिबंध उचित हैं।
- **विकास की क्षमता** : न्यायपालिका गतिशील व्याख्या के माध्यम से मौलिक अधिकारों के दायरे को व्यापक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह संविधान को बदलती सामाजिक आवश्यकताओं और मूल्यों के प्रति उत्तरदायी रहने में सक्षम बनाता है।
- **सकारात्मक दायित्वों को शामिल करें** : राज्य की मनमानी कार्रवाई (नकारात्मक अधिकार) से व्यक्तियों की रक्षा करने के साथ-साथ, संविधान अनुच्छेद 21ए के तहत शिक्षा के अधिकार जैसे सक्रिय प्रावधानों को भी अनिवार्य बनाता है, जो राज्य की सकारात्मक जिम्मेदारियों को दर्शाता है।
- **आपातकाल के दौरान अस्थायी रूप से सीमित किया जा सकता है** : राष्ट्रीय आपातकाल के समय, राष्ट्रपति द्वारा कुछ अधिकारों को निलंबित किया जा सकता है। हालाँकि, अनुच्छेद 20 और 21 के तहत अधिकार सुरक्षित रहते हैं,

और ऐसा कोई भी निलंबन न्यायपालिका की निगरानी के अधीन होता है।

अनुच्छेद 12

- **अनुच्छेद 12 के तहत "राज्य" का दायरा :-** भारतीय संविधान के अनुच्छेद 12 के अनुसार *"राज्य"* शब्द में न केवल संघ और राज्य सरकारें शामिल हैं, बल्कि:
  - केंद्रीय सरकार (संसद और कार्यपालिका)
  - राज्य सरकारें (विधानमंडल और कार्यपालिका)
  - सभी स्थानीय प्राधिकरण (जैसे, नगर पालिकाएं)
  - अन्य सभी प्राधिकरण (कानून द्वारा स्थापित तथा वे जिनके लिए औपचारिक क़ानून की आवश्यकता नहीं है)
- **अनुच्छेद 12 के तहत न्यायपालिका की स्थिति** :- मुख्य न्यायिक कार्यों (जैसे निर्णय देना या कानूनों की व्याख्या करना) का निर्वहन करते समय, न्यायपालिका को अनुच्छेद 12 के तहत **"राज्य" के रूप में नहीं माना जाता है। हालांकि, गैर-न्यायिक या प्रशासनिक भूमिकाएं** (जैसे भर्ती, स्थानांतरण, आदि) निभाते समय, इसके कार्यों की **जांच की जा सकती है** और रिट के माध्यम से चुनौती दी जा सकती है, विशेष रूप से अनुच्छेद 226 के तहत।
- **अंतर्राष्ट्रीय निकायों का बहिष्कार :- संयुक्त राष्ट्र या उसकी एजेंसियों** जैसी वैश्विक संस्थाओं को अनुच्छेद 12 के तहत "राज्य" के दायरे में **शामिल नहीं किया गया है** । इसलिए, मौलिक अधिकार प्रावधानों के तहत भारतीय अदालतों में उनकी गतिविधियों **पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है** ।

अनुच्छेद 13

- **अनुच्छेद 13 - मौलिक अधिकारों की सुरक्षा** :- यह अनुच्छेद सुनिश्चित करता है कि **मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने वाला** कोई **भी मौजूदा या भविष्य का कानून** ऐसे उल्लंघन की सीमा तक **शून्य और अमान्य** माना जाएगा । यह विधायी और कार्यकारी कार्यों की **न्यायिक जांच के लिए संवैधानिक आधार बनाता है।**
- **न्यायिक समीक्षा के लिए न्यायालयों का अधिकार** :- **सर्वोच्च न्यायालय (अनुच्छेद 32 के तहत)** और **उच्च न्यायालय (अनुच्छेद 226 के तहत) को** कानूनों की **वैधता की जांच करने** का अधिकार है । यदि कोई कानून **मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है** , तो न्यायपालिका उसे **असंवैधानिक करार देकर रद्द कर सकती है** ।
- क्या चुनौती दी जा सकती है? "कानून" शब्द की व्यापक व्याख्या है। यहाँ बताया गया है कि मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए अदालत में क्या चुनौती दी जा सकती है और संभावित रूप से शून्य और अमान्य घोषित किया जा सकता है:
  - संसद या राज्य विधानमंडलों द्वारा पारित स्थायी कानून।
  - राष्ट्रपति या राज्य के राज्यपालों द्वारा जारी अध्यादेश जैसे अस्थायी कानून।
  - कार्यपालिका द्वारा द्वितीयक विधान (प्रत्यायोजित विधान), जिसमें आदेश, उपनियम, नियम, विनियम या अधिसूचनाएं शामिल हैं।
  - कानून के गैर-विधायी स्रोत जैसे कानूनी बल वाले स्थापित रीति-रिवाज या प्रथाएँ।
- **न्यायिक समीक्षा और संवैधानिक संशोधन** :-संवैधानिक संशोधनों को आमतौर पर अनुच्छेद 13 के तहत **"कानून" की परिभाषा से बाहर रखा गया है और** इसलिए उन्हें केवल मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने के लिए **अमान्य नहीं किया जा सकता है ।**
- **मूल संरचना सिद्धांत - केशवानंद भारती केस (1973)** :- एक ऐतिहासिक फैसले में, सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया कि **संवैधानिक संशोधन** "सामान्य कानून" नहीं हैं, लेकिन अगर वे संविधान के **मूल ढांचे को बदलते हैं या नुकसान पहुंचाते हैं, तो उनकी समीक्षा की जा सकती है और उन्हें रद्द किया जा सकता है - जिसमें प्रमुख मौलिक अधिकार शामिल हैं। यह फैसला संवैधानिक परिवर्तनों पर भी न्यायिक निगरानी** सुनिश्चित करता है ।

अनुच्छेद 13 के अंतर्गत पर्सनल लॉ को शामिल करना

यह सवाल कि क्या व्यक्तिगत कानून अनुच्छेद 13 के दायरे में आते हैं, जो मौलिक अधिकारों से असंगत कानूनों को प्रतिबंधित करता है, भारत में एक जटिल और बहस का मुद्दा है। यहाँ तर्कों को रेखांकित करने वाले कुछ मुख्य बिंदु दिए गए हैं:

समावेशन के विरुद्ध तर्क:

"प्रचलित कानून" नहीं: बॉम्बे राज्य बनाम नरसु अप्पा माली (1952) में एक ऐतिहासिक फैसले में कहा गया कि धार्मिक ग्रंथों और रीति-रिवाजों से प्राप्त व्यक्तिगत

कानून, अनुच्छेद 13 के अनुसार "प्रचलित कानून" नहीं हैं। उन्होंने तर्क दिया कि इन्हें विधायिका द्वारा अधिनियमित नहीं किया गया था।

- धार्मिक पहचान का संरक्षण: इस दृष्टिकोण के समर्थकों का तर्क है कि अनुच्छेद 13 के अंतर्गत व्यक्तिगत कानूनों को शामिल करने से अनुच्छेद 25 और 26 में निहित धार्मिक स्वतंत्रता और सांस्कृतिक प्रथाओं का उल्लंघन होगा।

<u>शामिल करने के पक्ष में तर्क:</u>

- भेदभाव और असमानता: आलोचकों का तर्क है कि व्यक्तिगत कानून, विशेष रूप से विरासत, विवाह और गोद लेने से संबंधित कानून, महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ धार्मिक व्यक्तिगत कानून केवल पुरुषों के लिए बहुविवाह की अनुमति देते हैं और कुछ केवल महिलाओं के लिए अनुमति देते हैं। यह कथित तौर पर समानता के अधिकार (अनुच्छेद 14) का उल्लंघन करता है।
- मौलिक अधिकारों की सर्वोच्चता: समर्थकों का मानना है कि मौलिक अधिकार सर्वोच्च होने चाहिए, तथा उनका उल्लंघन करने वाले व्यक्तिगत कानूनों, जैसे भेदभावपूर्ण उत्तराधिकार अधिकारों को अमान्य कर दिया जाना चाहिए।

<u>न्यायालय के निर्णय:</u>

- सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया है कि व्यक्तिगत कानून अनुच्छेद 13 के दायरे से बाहर हैं। इसने समाधान के रूप में विधायी सुधार (समान नागरिक संहिता) पर जोर दिया।
- कुछ उच्च न्यायालयों ने अपने निर्णयों में व्यक्तिगत कानूनों को अनुच्छेद 13 के अंतर्गत लाने का प्रयास किया, लेकिन इन्हें सर्वोच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया।
- भारतीय संसद ने समान नागरिक संहिता (यूसीसी) पारित नहीं की है, जो सभी धर्मों के नागरिकों पर समान कानून लागू करेगी। इस निष्क्रियता को कुछ लोग समानता सुनिश्चित करने के लिए एक चूके हुए अवसर के रूप में देखते हैं।

<u>नोट:-</u> : भारत का मैग्ना कार्टा, राजनीतिक लोकतंत्र, सीमित अधिकार, निरपेक्ष नहीं लेकिन योग्य, उचित प्रतिबंध, न्यायोचित, न्यायिक समीक्षा का सिद्धांत

समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18)

- **समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18)** भारतीय संविधान का आधारभूत स्तंभ है, जो सभी नागरिकों के लिए **समान दर्जा और अवसर के लोकतांत्रिक चरित्र को प्रतिबिंबित करता है।**
- यह **कानूनों के एकसमान अनुप्रयोग को सुनिश्चित करता है** , धर्म, जाति, लिंग या जन्म स्थान जैसे आधारों पर **अनुचित भेदभाव को रोकता है, और सार्वजनिक स्थानों, सरकारी सेवाओं में रोजगार तक समान पहुंच** और **अस्पृश्यता और उपाधियों के उन्मूलन को बरकरार रखता है** ।

<u>अनुच्छेद 14: कानून के समक्ष समानता</u>

- **अनुच्छेद 14** यह गारंटी देता है कि भारत के राज्यक्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति के **साथ कानून के समक्ष समान व्यवहार किया जाएगा** तथा उसे **कानूनों का समान संरक्षण प्राप्त होगा** , तथा यह सुनिश्चित किया जाएगा कि राज्य द्वारा **किसी को भी विशेष विशेषाधिकार न दिया जाए या उसके साथ अनुचित भेदभाव न किया जाए ।**

<u>कानून के समक्ष समानता बनाम कानूनों का समान संरक्षण</u>

- **कानून के समक्ष समानता** : **ब्रिटिश कानूनी परंपरा** में निहित , इस सिद्धांत का तात्पर्य है कि **कोई भी व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है , और सभी कानूनी मानदंडों के एक ही सेट** के अधीन हैं । यह कुछ वर्गों के लिए **किसी भी मनमाने विशेषाधिकार** के अस्तित्व से इनकार करता है और सामान्य न्यायालयों के समान अधीनता को अनिवार्य बनाता है।
  - **उदाहरण** : चाहे वह सरकारी अधिकारी हो या कोई फेरीवाला, यदि कोई भी चोरी करता है, तो **समान आपराधिक कानून** और **कानूनी प्रक्रियाएं** समान रूप से लागू होती हैं।
- **कानूनों का समान संरक्षण** : **अमेरिकी संविधान** से प्रेरित होकर , यह सुनिश्चित करता है कि **समान परिस्थितियों में व्यक्तियों के** साथ कानून द्वारा **समान** व्यवहार किया जाए । यह **उचित वर्गीकरण की अनुमति**

देता है , लेकिन बिना किसी उचित कारण के **भेदभावपूर्ण व्यवहार को रोकता है ।**

- **उदाहरण** : यदि सरकार **लघु उद्योगों को रियायतें प्रदान करती है, तो सभी योग्य व्यवसायों को, चाहे वे किसी भी क्षेत्र या स्थान के हों,** समान परिस्थितियों में **समान लाभ** मिलना चाहिए ।

अनुच्छेद 14 के अंतर्गत अपवाद

- **सुरक्षात्मक भेदभाव (सकारात्मक कार्रवाई)** - ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर पड़े समूहों के उत्थान के लिए, संविधान राज्य को **अनुसूचित जातियों (एससी), अनुसूचित जनजातियों (एसटी), सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों (एसईबीसी)** , महिलाओं और बच्चों के लिए **विशेष उपाय तैयार** करने का अधिकार देता है। यह प्रावधान **पहले संविधान संशोधन (1951) के माध्यम से पेश किया गया था** ।
- **पिछड़े समूहों के लिए शैक्षिक आरक्षण :- 93वें संविधान संशोधन (2005)** के अनुसार , राज्य **शैक्षिक समावेशिता को बढ़ावा देने के लिए अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए सरकारी और निजी गैर-सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्थानों** (अल्पसंख्यकों द्वारा संचालित संस्थानों को छोड़कर) में सीटें आरक्षित कर सकता है ।
- **आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (ईडब्ल्यूएस) के लिए आरक्षण** :- **103वां संविधान संशोधन (2019)** सरकार को शैक्षणिक संस्थानों और सार्वजनिक रोजगार में **ईडब्ल्यूएस को 10% आरक्षण प्रदान करने की अनुमति देता है** , यह सुनिश्चित करता है कि **अकेले आर्थिक नुकसान** भी सकारात्मक समर्थन का आधार हो सकता है।
- **उच्च संवैधानिक प्राधिकारियों को कानूनी प्रतिरक्षा** :- **अनुच्छेद 361 राष्ट्रपति और राज्य के राज्यपालों को** उनके कार्यकाल के दौरान आपराधिक और सिविल कार्यवाही से सीमित प्रतिरक्षा प्रदान करता है , ताकि वे भय या बाहरी प्रभाव के बिना कार्य कर सकें।
- **विधायी विशेषाधिकार** :- **अनुच्छेद 105 (संसद के लिए)** और **194 (राज्य विधानसभाओं के लिए)** सांसदों और विधायकों को **कुछ स्वतंत्रताएं और सुरक्षा प्रदान करते हैं** , जैसे सदन के भीतर बोलने की स्वतंत्रता और विधानमंडल में कही गई या मतदान की गई किसी भी बात के लिए कानूनी कार्रवाई से छूट। ये **स्वतंत्र और निर्भीक कानून निर्माण को सक्षम बनाते हैं** ।

अनुच्छेद 15: भेदभाव का निषेध

- **भेदभाव पर प्रतिबंध (अनुच्छेद 15)** : संविधान राज्य को सार्वजनिक सेवाओं या कानूनों तक पहुंच के मामले में **किसी भी नागरिक के खिलाफ केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान** के आधार पर भेदभाव करने से रोकता है।
- **सार्वजनिक सुविधाओं तक समान पहुंच** : सभी नागरिकों को **दुकानों, रेस्तरां, होटल, मनोरंजन स्थलों, सार्वजनिक कुओं, टैंकों, स्नान घाटों, सड़कों और अन्य सार्वजनिक स्थानों** जैसी सार्वजनिक सुविधाओं तक **निर्बाध पहुंच का अधिकार है** , जिससे **दैनिक जीवन में सामाजिक समानता सुनिश्चित होती है** ।
- **अनुमेय सकारात्मक भेदभाव** : अनुच्छेद 15 राज्य को **महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष उपाय तैयार करने की शक्ति भी प्रदान करता है** ताकि उनके **ऐतिहासिक और सामाजिक नुकसान को दूर किया जा सके** तथा उनके **कल्याण और विकास को बढ़ावा दिया जा सके** ।

अनुच्छेद 16: सार्वजनिक रोजगार में अवसर की समानता

- **सार्वजनिक रोजगार तक उचित पहुंच (अनुच्छेद 16)** - संविधान यह सुनिश्चित करता है कि **प्रत्येक नागरिक को** राज्य के अधीन सार्वजनिक कार्यालयों में नियुक्ति के लिए **आवेदन करने और प्रतिस्पर्धा करने का समान अधिकार** है , जिससे सरकारी भर्ती में **समान अवसर प्राप्त हो।**
- **नौकरियों में भेदभाव के विरुद्ध संरक्षण** :- राज्य को **धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, वंश, जन्म स्थान या निवास** जैसे आधारों पर **रोजगार के अवसरों से इनकार करने से रोका गया है** । यह प्रावधान **समावेशी शासन और योग्यता आधारित चयन को बढ़ावा देता है** ।
- अपवाद: लेख में कुछ अपवादों की अनुमति दी गई है:
  - आवासीय आवश्यकताएं: संसद ऐसे कानून बना सकती है, जिनके तहत नागरिकों को सरकारी नौकरियों के लिए किसी राज्य में कुछ समय तक निवास करना अनिवार्य होगा।
  - आरक्षण नीति: सरकार सामाजिक समानता को बढ़ावा देने के लिए पिछड़े वर्गों (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति) और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए नियुक्तियों को आरक्षित कर सकती है।
  - आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए आरक्षण: हाल ही में एक संशोधन के माध्यम से समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए 10% आरक्षण जोड़ा गया है।
- **अनुच्छेद 16 का महत्व** :- यह प्रावधान **योग्यता आधारित सार्वजनिक रोजगार प्रणाली स्थापित करने में महत्वपूर्ण है** , यह सुनिश्चित करता है कि **सरकारी नौकरियों में चयन और नियुक्ति सामाजिक पृष्ठभूमि** के आधार पर नहीं, बल्कि **निष्पक्षता और समानता के आधार पर हो। यह प्रणालीगत बहिष्कार को खत्म करने** और शासन में **समान प्रतिनिधित्व को बढ़ावा देने के लिए** एक उपकरण के रूप में कार्य करता है ।
- **लगातार चुनौतियां** : संवैधानिक सुरक्षा उपायों के बावजूद, **भेदभावपूर्ण प्रथाएँ** - विशेष रूप से **जाति-आधारित पूर्वाग्रह, हाशिए पर पड़े समूहों का कम प्रतिनिधित्व और क्षेत्रीय पक्षपात - अभी भी भर्ती प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। यह कानूनी इरादे और जमीनी हकीकत** के बीच अंतर को दर्शाता है , जिसके लिए **प्रभावी प्रवर्तन और सामाजिक संवेदनशीलता की आवश्यकता है** ।

निजी क्षेत्र की नौकरियों में स्थानीय आरक्षण की मांग
निजी नौकरियों में स्थानीय आरक्षण की मांग ने भारत में बहस छेड़ दी है। समर्थकों का तर्क है कि यह स्थानीय लोगों को सशक्त बनाता है और बेरोज़गारी को दूर करता है, जबकि विरोधी संवैधानिकता और योग्यता में बाधा डालने की चिंता जताते हैं।
पक्ष में:
▪ स्थानीय लोगों को सशक्त बनाना: स्थानीय युवाओं को अक्सर क्षेत्र की आवश्यकताओं की बेहतर समझ होती है और वे अधिक प्रभावी ढंग से योगदान दे सकते हैं।
▪ बेरोजगारी की समस्या का समाधान: आरक्षण उच्च बेरोजगारी दर का सामना कर रहे स्थानीय लोगों के लिए अवसर पैदा कर सकता है।
▪ सामाजिक सामंजस्य: यह स्वामित्व की भावना को बढ़ावा दे सकता है और बाहरी लोगों के प्रति नाराजगी को कम कर सकता है।
खिलाफ़:
▪ संवैधानिकता: अनुच्छेद 19(1)(जी) पूरे भारत में किसी भी पेशे को अपनाने के अधिकार की गारंटी देता है। केवल निवास के आधार पर आरक्षण इसका उल्लंघन कर सकता है।
▪ योग्यता-आधारित: यदि कंपनियों को स्थानीय स्तर तक ही सीमित रखा जाए तो उन्हें सर्वाधिक योग्य उम्मीदवार ढूंढने में कठिनाई हो सकती है।
▪ निवेश में बाधा: सख्त आरक्षण नीतियां व्यवसायों को कुछ क्षेत्रों में निवेश करने से रोक सकती हैं।
उदाहरण:
▪ हरियाणा: राज्य ने 2020 में एक कानून पारित किया, जिसमें स्थानीय लोगों के लिए 75% निजी नौकरियां आरक्षित की गईं, लेकिन संवैधानिक चिंताओं के कारण इसे उच्च न्यायालय ने रद्द कर दिया।
▪ महाराष्ट्र: निजी नौकरियों में 80% आरक्षण की ऐसी ही नीति प्रस्तावित की गई, जिससे समान कानूनी प्रश्न उठे।

- स्थानीय आकांक्षाओं और राष्ट्रीय आर्थिक स्वतंत्रता के बीच संतुलन बनाना महत्वपूर्ण है। कौशल विकास कार्यक्रम के साथ-साथ आवासीय आवश्यकताओं में ढील देना अधिक प्रभावी तरीका हो सकता है।

अनुच्छेद 17: अस्पृश्यता का उन्मूलन

- **अस्पृश्यता उन्मूलन (अनुच्छेद 17)** :- यह अनुच्छेद **सभी प्रकार की अस्पृश्यता का दृढ़तापूर्वक निषेध करता है तथा** भारतीय समाज में इस प्रथा को **असंवैधानिक और अवैध घोषित करता है।**
- **भेदभावपूर्ण प्रथाओं पर प्रतिबंध :-** जाति से जुड़ी छुआछूत के आधार पर किसी भी प्रकार का **सामाजिक बहिष्कार या सार्वजनिक स्थानों, धार्मिक स्थलों या व्यवसायों तक पहुंच से इनकार करना सख्त वर्जित है** ।
- **कानूनी परिणाम** :- इस अनुच्छेद का उल्लंघन करना एक **दंडनीय अपराध है** । **नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955** (जिसे शुरू में अस्पृश्यता अपराध अधिनियम कहा जाता था) इसके प्रवर्तन के लिए **दंड और प्रक्रिया निर्धारित करता है।**
- **संवैधानिक महत्व** :- अनुच्छेद 17 **सामाजिक समानता प्राप्त करने की दिशा में एक बड़ा कदम है** और यह सभी नागरिकों, विशेषकर दलितों और हाशिए के समुदायों के लिए **न्याय और सम्मान के प्रति भारत की प्रतिबद्धता का प्रतीक है।**
- **जमीनी स्तर की वास्तविकताएँ** :- यद्यपि कानूनी रूप से प्रतिबंधित है, फिर भी **अस्पृश्यता से संबंधित भेदभाव** विभिन्न क्षेत्रों में जारी है। अनुच्छेद 17 ऐसी सामाजिक बुराइयों को चुनौती देने और उन्हें समाप्त करने के लिए एक **शक्तिशाली संवैधानिक सुरक्षा के रूप में काम करना जारी रखता है।**

अनुच्छेद 18: उपाधियों का उन्मूलन

- **उपाधियाँ प्रदान करने पर प्रतिबंध (अनुच्छेद 18)** :- संविधान राज्य को ऐसी कोई भी **उपाधि या सम्मान प्रदान करने से रोकता है** जो **सामाजिक पदानुक्रम या विरासत में मिले विशेषाधिकार को बढ़ावा देती हो** । इसका उद्देश्य **समानता के सिद्धांत को बनाए रखना** और उपाधि प्राप्त कुलीनता के निर्माण को रोकना है।
- **स्वीकार्य अपवाद** :- केवल **सैन्य सम्मान** (जैसे, *परमवीर चक्र*) और **शैक्षणिक विशिष्टताएं** (जैसे, *डॉक्टरेट की डिग्री*) की अनुमति है, क्योंकि वे **योग्यता और सेवा को मान्यता देते हैं , सामाजिक स्थिति को नहीं** ।
- **प्रावधान की भावना :- अनुच्छेद 18 योग्यता आधारित समाज** के प्रति संविधान की प्रतिबद्धता को दर्शाता है , तथा उपाधियों के माध्यम से व्यक्तियों को श्रेणीबद्ध करने की औपनिवेशिक या सामंती प्रणालियों के पुनरुद्धार को हतोत्साहित करता है।
- औपनिवेशिक राज्यों द्वारा प्रदान की गई कुलीनता की वंशानुगत उपाधियों का उन्मूलन।

नोट:- : कानून के समक्ष समानता और कानून का समान संरक्षण, भेदभाव का निषेध, अवसर की समानता, अस्पृश्यता, नागरिक अधिकार

स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22)

अनुच्छेद 19: अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आदि से संबंधित कुछ अधिकारों का संरक्षण।

- **अनुच्छेद 19 के तहत स्वतंत्रता** : अनुच्छेद 19 भारतीय नागरिकों को **छह आवश्यक स्वतंत्रताएं प्रदान करता है, जो सार्वजनिक जीवन में लोकतांत्रिक भागीदारी** और व्यक्तिगत अभिव्यक्ति का आधार बनती हैं।
- **नागरिकों के लिए विशेष** : ये अधिकार **केवल नागरिकों द्वारा लागू किए जा सकते हैं और विदेशी नागरिकों** या **कॉर्पोरेट संस्थाओं** तक विस्तारित नहीं होते हैं । हालाँकि, कुछ संदर्भों में, **शेयरधारक** कंपनी के मामलों के संबंध में इन अधिकारों का दावा कर सकते हैं।
- **असीमित नहीं** : अनुच्छेद 19 के तहत स्वतंत्रताएँ **उचित प्रतिबंधों के अधीन हैं। राज्य संप्रभुता, सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, शालीनता और राष्ट्रीय सुरक्षा** के हित में इन अधिकारों को विनियमित कर सकता है , जिससे **स्वतंत्रता और सामाजिक स्थिरता के बीच संतुलन सुनिश्चित हो सके** ।
- अनुच्छेद 19(1) के तहत अधिकार:

- वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता: प्रतिशोध, सेंसरशिप या कानूनी प्रतिबंध के भय के बिना अपनी राय और विचार व्यक्त करने का मौलिक अधिकार।
- शांतिपूर्वक और बिना हथियार के एकत्र होने का अधिकार: एक साथ आने और सामूहिक रूप से साझा हितों को अभिव्यक्त करने, बढ़ावा देने, आगे बढ़ाने और बचाव करने का अधिकार।
- संघ या यूनियन बनाने का अधिकार [या सहकारी समितियां]: सामूहिक रूप से दूसरों के साथ जुड़ने का अधिकार
- सामान्य हितों को व्यक्त करना, बढ़ावा देना, उनका अनुसरण करना और उनकी रक्षा करना।
- भारत के क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से घूमने का अधिकार: नागरिकों को भारत के क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से घूमने की अनुमति देता है - हालांकि इस अधिकार को आम जनता या अनुसूचित जनजातियों के हितों में प्रतिबंधित किया जा सकता है।
- भारत के किसी भी भाग में निवास करने और बसने का अधिकार: भारत के किसी भी भाग में निवास करने और बसने का अधिकार।
- कोई भी पेशा अपनाने, या कोई व्यवसाय, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार: कोई भी वैध पेशा अपनाने, या कोई व्यवसाय, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार।

- **स्वतंत्रता पर अनुमेय सीमाएँ - अनुच्छेद 19(2)** :- संविधान राज्य को व्यापक राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए अनुच्छेद 19 की स्वतंत्रता के प्रयोग पर **उचित प्रतिबंध लगाने की अनुमति देता है। इनमें भारत की संप्रभुता और अखंडता** , **राज्य की सुरक्षा** , **सार्वजनिक व्यवस्था** , **शालीनता या नैतिकता** , **न्यायालय की अवमानना** , **मानहानि** और **अपराध के लिए उकसाना शामिल हैं** ।
- **स्वतंत्रता और सामाजिक सद्भाव में संतुलन** :- अनुच्छेद 19 को **सावधानीपूर्वक संतुलन बनाए रखने के लिए बनाया गया है - व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करते हुए यह सुनिश्चित करना कि वे सामूहिक कल्याण, नैतिक मानकों या राष्ट्रीय एकता को** बाधित न करें ।

भारत में सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक मामले और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

श्रेया सिंघल केस (2015): इस मामले में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 की धारा 66A को चुनौती दी गई थी। इस धारा में ऑनलाइन "बेहद आपत्तिजनक" या "धमकी भरी" जानकारी भेजने पर दंड का प्रावधान था। सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 66A को रद्द कर दिया और इसे भारत में ऑनलाइन मुक्त भाषण के लिए एक महत्वपूर्ण जीत माना।

केदार नाथ सिंह केस (1962): इस मामले में भारतीय कानून के तहत राजद्रोह की व्याख्या की गई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने राजद्रोह कानून की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखा, यह स्पष्ट करते हुए कि सरकार की आलोचना तब तक राजद्रोह नहीं मानी जाएगी जब तक कि वह हिंसा को भड़काने या उसकी वकालत करने वाली न हो।

अनुच्छेद 20 (अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण)

- **अनुच्छेद 20 - अभियुक्त के लिए कानूनी सुरक्षा** :- यह अनुच्छेद आपराधिक आरोपों का सामना करने वाले व्यक्तियों के लिए एक **संवैधानिक ढाल के रूप में कार्य करता है, जो अभियोजन और दंड की प्रक्रिया में निष्पक्षता सुनिश्चित करता है** ।
- **कोई पूर्वव्यापी आपराधिक दायित्व नहीं** :- किसी व्यक्ति को उस कार्य के लिए दंडित नहीं किया जा सकता जो उस समय **आपराधिक अपराध नहीं था** । पिछले कार्यों को दंडित करने के लिए **नए कानूनों को पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं किया जा सकता है** ।
- **दोहरी सजा (डबल जोपार्डी) पर प्रतिबंध** :- किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए **एक से अधिक बार मुकदमा चलाकर दंडित नहीं किया जा सकता** । **यह आपराधिक कार्यवाही में अंतिमता को बनाए रखता है** और उत्पीड़न से बचाता है।
- **आत्म-दोष के विरुद्ध संरक्षण** :- किसी भी अभियुक्त को **स्वयं के विरुद्ध गवाही देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता** , यह सुनिश्चित करते हुए कि स्वीकारोक्ति या साक्ष्य **स्वैच्छिक होना चाहिए** , जबरदस्ती नहीं।
- **निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार का मूल** :- अनुच्छेद 20 **राज्य की मनमानी शक्ति को सीमित करता है** और **उचित प्रक्रिया की गारंटी देता है** , इस विचार को

मजबूत करता है कि **न्याय निष्पक्षता, वैधता और मानव गरिमा पर आधारित होना चाहिए** ।

अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार)

- **अनुच्छेद 21 - मौलिक अधिकारों का हृदय** :- व्यापक रूप से सबसे महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधानों में से एक माना जाने वाला अनुच्छेद 21 भारतीय क्षेत्र के भीतर प्रत्येक व्यक्ति के लिए **जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को सुरक्षित करता है।**
- **उचित प्रक्रिया के माध्यम से संरक्षण** :- इसमें कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति को **कानूनी रूप से स्थापित प्रक्रिया** के अलावा **जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा** , यह सुनिश्चित करते हुए कि **राज्य की कार्रवाइयां निष्पक्ष और न्यायसंगत कानूनों का पालन करेंगी** ।
- **विस्तृत न्यायिक व्याख्या** :- समय के साथ, न्यायपालिका ने अनुच्छेद 21 के **दायरे का विस्तार करते हुए इसमें निजता का अधिकार** , **सम्मानजनक जीवन का अधिकार** , **स्वच्छ पर्यावरण** , **स्वास्थ्य देखभाल** , **शिक्षा** आदि जैसे अधिकार शामिल कर दिए हैं - जिससे यह **विभिन्न मानव अधिकारों का प्रवेश द्वार बन गया है** ।

महत्वपूर्ण मामले:

- **ए.के. गोपालन केस (1950)** :- इस प्रारंभिक संवैधानिक मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने **अनुच्छेद 21 के प्रति संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया तथा कहा कि** *"विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया"* वाक्यांश केवल **कानूनी रूप से अधिनियमित प्रक्रियाओं को संदर्भित करता है, इस प्रकार यह केवल कार्यपालिका के अतिक्रमण के विरुद्ध** संरक्षण प्रदान करता है , न कि स्वयं अन्यायपूर्ण कानूनों के विरुद्ध।
- **मेनका गांधी केस (1978)** :- एक महत्वपूर्ण मोड़ को चिह्नित करते हुए, न्यायालय ने एक **व्यापक और उदार व्याख्या को अपनाया** , जिसमें फैसला सुनाया गया कि अनुच्छेद 21 के तहत कोई भी प्रक्रिया **न्यायसंगत, निष्पक्ष और उचित होनी चाहिए। इसने भारतीय न्यायशास्त्र को "कानून की उचित प्रक्रिया"** के अमेरिकी सिद्धांत के करीब ला दिया , जिसने **विधायी और कार्यकारी दोनों कार्यों** को संरक्षण प्रदान किया ।
- **न्यायमूर्ति के.एस. पुट्टस्वामी केस (2017)** - एक ऐतिहासिक फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 21 के तहत **जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार के** एक अनिवार्य हिस्से के रूप में **निजता के अधिकार की पुष्टि की । इस फैसले ने** महत्वपूर्ण सुधारों के लिए आधार तैयार किया, जिसमें **समलैंगिकता (धारा 377 आईपीसी) को अपराध से मुक्त करना** और **व्यभिचार कानूनों (धारा 497 आईपीसी) को** असंवैधानिक करार देना शामिल है।

ये व्याख्याएं यह सुनिश्चित करती हैं कि अनुच्छेद 21 न केवल बुनियादी जीवन की रक्षा करता है, बल्कि सम्मान और आवश्यक जीवन स्थितियों के साथ जीवन की भी रक्षा करता है।

अनुच्छेद 21: निजता का अधिकार बनाम भूल जाने का अधिकार

- **डिजिटल गोपनीयता में उभरते आयाम** :- **भूल जाने का अधिकार** व्यक्तियों को **व्यक्तिगत डेटा तक ऑनलाइन पहुँच को प्रतिबंधित या मिटाने की अनुमति देता है जो पुराना, अप्रासंगिक या उनकी गरिमा के लिए हानिकारक है। यह लोगों को** सर्च इंजन या डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म से ऐसी सामग्री को **हटाने, सुधारने या डीलिंक करने की** शक्ति देता है ।
- **डेटा संरक्षण में भूमिका** :- **डेटा संरक्षण पर बीएन श्रीकृष्ण समिति ने** इस अधिकार को डिजिटल युग में **सूचनात्मक गोपनीयता के एक प्रमुख घटक के रूप में मान्यता दी, विशेष रूप से जहां ऑनलाइन सामग्री व्यक्तिगत प्रतिष्ठा और स्वायत्तता को प्रभावित कर सकती है।**
- **अन्य अधिकारों के साथ संतुलन की आवश्यकता** :- इस अधिकार को लागू करने के लिए **भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता** के साथ-साथ **जनता के सूचना तक पहुँचने के अधिकार के** साथ **सावधानीपूर्वक सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता है** । अतिक्रमण से **सेंसरशिप या सूचना दमन का खतरा हो सकता है** ।
- **वैश्विक डिजिटल वातावरण में जटिलताएँ** :- **इंटरनेट की सीमाहीन प्रकृति** और **समान वैश्विक कानूनों की**

अनुपस्थिति RTBF को प्रभावी ढंग से लागू करना चुनौतीपूर्ण बनाती है। अधिकार क्षेत्र में संग्रहीत डेटा प्रवर्तन और अनुपालन को जटिल बनाता है।

अनुच्छेद 21ए (शिक्षा का अधिकार)

- **सशक्तिकरण की नींव** :- शिक्षा व्यक्ति को आकार देने और समाज को सशक्त बनाने में एक परिवर्तनकारी भूमिका निभाती है। इसके महत्वपूर्ण महत्व को पहचानते हुए, **86वें संविधान संशोधन (2002) ने अनुच्छेद 21A को** शामिल किया , जिससे शिक्षा को **मौलिक अधिकार** का दर्जा मिला ।

- **निःशुल्क एवं अनिवार्य स्कूली शिक्षा की गारंटी** :- इस अनुच्छेद के तहत, राज्य को **6 से 14 वर्ष** की आयु के सभी बच्चों के लिए **निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा सुनिश्चित करने का अधिदेश दिया गया है** , जिससे यह केवल नीतिगत लक्ष्य न होकर एक कानूनी दायित्व बन जाता है।

- **कार्यान्वयन का लचीला तरीका** :- संविधान राज्यों को इस अधिकार को प्रदान करने के **तरीके और तंत्र को तय करने का अधिकार देता है - आमतौर पर बच्चों के मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम, 2009 (आरटीई अधिनियम)** जैसे कानूनों के माध्यम से किया जाता है ।

- **गुणवत्ता पर जोर** :- जबकि **अनुच्छेद 21ए में स्पष्ट रूप से "गुणवत्ता" का उल्लेख नहीं किया गया है** , आरटीई अधिनियम **बुनियादी ढांचे, शिक्षक-छात्र अनुपात, सीखने के परिणामों** और **समावेशी कक्षाओं के लिए मानदंड निर्धारित करता है, इस प्रकार न केवल पहुंच बल्कि सार्थक शिक्षा** सुनिश्चित करता है ।

- **सकारात्मक परिणाम** :- इस प्रावधान के लागू होने से **स्कूल नामांकन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई** है, विशेष रूप से हाशिए के समूहों में, जिससे **प्रारंभिक शिक्षा अधिक सुलभ और समावेशी हो गई है** ।

- **हालिया घटनाक्रम - एनईपी 2020** :- **राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में 3** से 18 वर्ष की आयु तक अनिवार्य शिक्षा के **दायरे का विस्तार करने** का प्रस्ताव है , जिससे **प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई)** और **माध्यमिक स्कूली शिक्षा को कवर किया जा सके** , जिसका लक्ष्य **समग्र और आजीवन सीखने का दृष्टिकोण है** ।

अनुच्छेद 22 (कुछ मामलों में गिरफ्तारी और हिरासत से संरक्षण)

आपराधिक कानून के तहत संरक्षण (सामान्य गिरफ्तारी के लिए):

- **गिरफ्तारी का कारण जानने का अधिकार** :- हिरासत में लिए गए किसी भी व्यक्ति को **गिरफ्तारी का कारण** तुरंत **बताया जाना चाहिए** , ताकि पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित हो सके।
- **कानूनी प्रतिनिधित्व तक पहुंच** :- गिरफ्तार व्यक्ति को अपनी पसंद के **वकील से परामर्श करने और बचाव पाने का मौलिक अधिकार है** , जो निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार को मजबूत करता है।
- **मजिस्ट्रेट के समक्ष अनिवार्य प्रस्तुति** :- गिरफ्तार किए गए प्रत्येक व्यक्ति को **गैरकानूनी हिरासत को** रोकने के लिए, यात्रा समय को छोड़कर, **24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए** ।
- **मजिस्ट्रेट की मंजूरी के बिना 24 घंटे से अधिक समय तक रिहाई का अधिकार** :- जब तक न्यायिक अनुमति प्राप्त न हो जाए, व्यक्ति को **24 घंटे से अधिक समय तक हिरासत में नहीं रखा जा सकता** , जिससे पुलिस की अतिक्रमण पर रोक लगेगी।

शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)

अनुच्छेद 23 (मानव तस्करी और जबरन श्रम का निषेध)

- **भारतीय संविधान का अनुच्छेद 23** दो प्रमुख प्रकार के शोषण के विरुद्ध मौलिक सुरक्षा प्रदान करता है: **मानव तस्करी** और **जबरन श्रम** ।

- **प्रतिषेध** : यह प्रावधान स्पष्ट रूप से निम्नलिखित प्रथाओं पर प्रतिबंध लगाता है:

  - **मानव तस्करी** : लोगों को बिक्री और खरीद की वस्तु के रूप में समझना।

- **बेगार** : बिना भुगतान के लिया जाने वाला कार्य, जो प्रायः कर्ज के लिए बंधुआ मजदूरी जैसी ऐतिहासिक प्रथाओं से जुड़ा होता है।
- **अनैच्छिक श्रम के अन्य रूप** : कोई भी स्थिति जहां किसी व्यक्ति को धमकी, जबरदस्ती या दबाव के माध्यम से उसकी इच्छा के विरुद्ध **काम करने के लिए मजबूर किया जाता है।**

• **अपराध और सजा** :- इस अनुच्छेद का उल्लंघन **कानून के तहत दंडनीय अपराध माना जाता है** , जिससे पीड़ितों को **कानूनी उपाय प्रदान किया जाता है** ।

• **राज्य की शक्तियाँ** :- यह अनुच्छेद राज्य को सार्वजनिक उद्देश्यों (जैसे राष्ट्रीय कर्तव्यों) के लिए **अनिवार्य सेवा अनिवार्य करने की अनुमति देता है** , लेकिन ऐसी सेवा धर्म, जाति, नस्ल या वर्ग के आधार पर **भेदभाव से मुक्त होनी चाहिए।**

• **पीयूडीआर बनाम भारत संघ** :- इस ऐतिहासिक फैसले ने स्पष्ट किया कि **आर्थिक मजबूरी** , जो किसी व्यक्ति को सार्थक विकल्प से वंचित करती है और **उसे श्रम करने के लिए मजबूर करती है** , वह भी अनुच्छेद 23 के तहत **जबरन श्रम के रूप में योग्य है।**

अनुच्छेद 24 (कारखानों आदि में बच्चों के रोजगार पर प्रतिबंध)

• **अनुच्छेद 24 बच्चों को खतरनाक रोजगार के विरुद्ध विशिष्ट सुरक्षा प्रदान करता है।**

• **बाल श्रम पर प्रतिबंध :- यह कानून कारखानों, खदानों** और **अन्य खतरनाक व्यवसायों** में **14 वर्ष से कम आयु के बच्चों** के रोजगार पर सख्ती से प्रतिबंध लगाता है ।

• **कार्यक्षेत्र की सीमाएँ** :- यह प्रावधान **बाल श्रम के सभी रूपों पर प्रतिबंध नहीं लगाता है । बच्चों को गैर-खतरनाक या उपयुक्त कार्यों** में लगाया जा सकता है , बशर्ते कि इससे उनके स्वास्थ्य या विकास को कोई नुकसान न हो।

• **सहायक कानून** :- इस संवैधानिक सुरक्षा को प्रभावी बनाने के लिए **बाल श्रम (प्रतिषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 1986** तथा अन्य कानून संसद द्वारा पारित किए गए हैं।

• **उद्देश्य :- अनुच्छेद 24 बच्चों को शोषण से बचाने** , उनकी **शिक्षा और कल्याण को बढ़ावा देने** तथा उनके विकास के लिए **सुरक्षित और पोषण वातावरण सुनिश्चित करने** में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।

धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)

अनुच्छेद 25:

• **अनुच्छेद 25 भारत के धर्मनिरपेक्ष ढांचे के आधारभूत तत्व के रूप में कार्य करता है** , जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए **धार्मिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करता है।**

• **गारंटीकृत स्वतंत्रता** :- यह चार प्रमुख अधिकारों को कायम रखता है:

- **अंतःकरण की स्वतंत्रता** - व्यक्तिगत रूप से किसी भी धर्म में विश्वास करने या किसी भी धर्म में विश्वास न करने की स्वतंत्रता।
- अपने धर्म को खुले तौर पर घोषित करने **का अधिकार ।**
- धार्मिक रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों का पालन करने **का अधिकार ।**
- **प्रचार करने का अधिकार** - अपने धर्म को साझा करने और फैलाने का अधिकार, लेकिन **बिना किसी दबाव या जबरन धर्मांतरण के** ।

• **समान संरक्षण** :- ये अधिकार **सभी व्यक्तियों को उपलब्ध हैं** , चाहे वे **नागरिक हों या गैर-नागरिक** ।

• **अनुमत प्रतिबंध** :- इन स्वतंत्रताओं का प्रयोग **सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य जैसी चिंताओं के अधीन है** , जिससे राज्य को सामाजिक कल्याण के लिए आवश्यक होने पर **उचित सीमाएं लगाने की अनुमति मिलती है।**

• **राज्य की तटस्थता** :- संविधान सरकार को **किसी भी धर्म का पक्ष लेने या विरोध करने से रोकता है** , जिससे भारत के **धर्मनिरपेक्ष चरित्र को बल मिलता है** ।

• **महत्व :- अनुच्छेद 25** बहु-विश्वास समाज में **धार्मिक सद्भाव, विविधता के प्रति सम्मान** और **शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व को** बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।

अनुच्छेद 26:

• **प्रदत्त अधिकार** :- अनुच्छेद 26 प्रत्येक **धार्मिक संप्रदाय को अपने धार्मिक मामलों को व्यवस्थित और प्रबंधित करने** , **संपत्ति का स्वामित्व और अधिग्रहण करने** तथा कानूनी प्रावधानों के अनुरूप **ऐसी संपत्ति का प्रशासन करने की** स्वायत्तता प्रदान करता है।

• **अनुच्छेद 25 से अंतर** :- जहां **अनुच्छेद 25 व्यक्ति के** धर्म का पालन करने के अधिकार पर केंद्रित है, वहीं अनुच्छेद 26 धार्मिक समूहों या समुदायों के **सामूहिक अधिकारों की रक्षा करता है ।**

• **अप्रतिबंधित नहीं** :- ये अधिकार **सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य** के आधार पर **उचित सीमाओं के अधीन हैं** , जिससे राज्य को व्यापक सामाजिक हितों के लिए आवश्यक होने पर हस्तक्षेप करने की अनुमति मिलती है।

• **महत्व** :

- धार्मिक समूहों को उनके आंतरिक कार्यों में **राज्य के हस्तक्षेप से बचाता है।**
- उन्हें **अपनी संस्थाओं, अनुष्ठानों और वित्त को स्वतंत्र रूप से चलाने में सक्षम बनाता है** ।

• **उदाहरण** :- मंदिर अपने पुजारी चुन सकते हैं, चर्च धार्मिक समारोह आयोजित कर सकते हैं, और धार्मिक ट्रस्ट उनकी संपत्तियों की देखरेख और प्रबंधन कर सकते हैं।

अनुच्छेद 27:

• **सुनिश्चित अधिकार** :- अनुच्छेद 27 यह गारंटी देता है कि **किसी भी व्यक्ति को कोई कर देने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा,** जिसकी आय **किसी विशिष्ट धर्म के प्रचार या रखरखाव के लिए उपयोग की जाती है** ।

• **धर्मनिरपेक्ष तटस्थता** :- यह खंड इस विचार को पुष्ट करता है कि राज्य को धार्मिक मामलों में **तटस्थ रहना चाहिए और किसी विशेष धर्म को वित्तीय सहायता नहीं देनी चाहिए** ।

• **उदाहरण** :- यदि सरकार **केवल एक धर्म से संबंधित धार्मिक स्थलों के जीर्णोद्धार के लिए कर लगाती है** , तो ऐसा कार्य **अनुच्छेद 27 का उल्लंघन होगा** , क्योंकि इसमें अधिमान्य व्यवहार का प्रावधान है।

अनुच्छेद 28:

• **संरक्षित अधिकार** :- अनुच्छेद 28 उन शैक्षणिक संस्थाओं में **धार्मिक शिक्षा देने पर रोक लगाता है जो पूर्णतः राज्य द्वारा वित्तपोषित हैं** ।

• **निर्दिष्ट अपवाद** :- यह प्रतिबंध **राज्य द्वारा संचालित संस्थाओं पर लागू नहीं होगा** , बल्कि उन संस्थाओं पर लागू होगा जो धार्मिक शिक्षा को शामिल करने के लिए **दान या ट्रस्ट के तहत स्थापित की गई हैं ।**

• **उद्देश्य** :- यह प्रावधान सुनिश्चित करता है कि सरकारी वित्त पोषित स्कूलों में **शिक्षा धार्मिक प्रभाव से मुक्त रहे , जबकि कुछ संस्थानों को अभी भी अपनी धार्मिक पहचान बनाए रखने की अनुमति है** , बशर्ते **छात्रों को सूचित किया जाए और भागीदारी स्वैच्छिक रहे** ।

सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार (अनुच्छेद 29-30)

भारत की विशाल सांस्कृतिक विविधता की सराहना करते हुए संविधान अनुच्छेद 29 और 30 के तहत सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों की भी रक्षा करता है, तथा यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी अल्पसंख्यक समूह अलग-थलग या हाशिए पर न रहे।

अनुच्छेद 29:

• **विविधता की सुरक्षा :- अनुच्छेद 29 भारत की सांस्कृतिक समृद्धि की रक्षा करने** में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है , तथा **अल्पसंख्यक समूहों को** उनकी पहचान बनाए रखने में संवैधानिक सहायता प्रदान करता है।

• **विरासत को संरक्षित करने का अधिकार** :- जिन नागरिकों की अपनी **विशिष्ट भाषा, लिपि या सांस्कृतिक परंपरा है, उन्हें** अपनी अनूठी विरासत को **संरक्षित करने**

और बढ़ावा देने का अधिकार है । इससे यह सुनिश्चित होता है कि **अल्पसंख्यक समुदाय अपनी सांस्कृतिक जड़ों को बनाए रख सकें** ।

• **समान शैक्षणिक पहुँच** :- किसी भी व्यक्ति को **धर्म, जाति, भाषा, नस्ल या ऐसे किसी भी कारक** के आधार पर **सरकारी या सरकारी सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश से वंचित नहीं किया जा सकता** । यह प्रावधान **शिक्षा में गैर-भेदभाव के सिद्धांत को मजबूत करता है** ।

• **महत्व** :- अनुच्छेद 29 **विविधता में एकता को बढ़ावा देते हुए अल्पसंख्यक अधिकारों की** रक्षा करके **सांस्कृतिक समावेशन के माध्यम से राष्ट्रीय एकीकरण को मजबूत करता है** ।

अनुच्छेद 30:

• **स्थापना और प्रशासन का अधिकार** :- धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों को अपने समुदाय के मूल्यों और आवश्यकताओं को प्रतिबिंबित करने वाले **शैक्षिक संस्थानों की स्थापना और प्रबंधन का अधिकार है।**

• **मातृभाषा में शिक्षा :- इस अधिकार में बच्चों को उनकी अपनी मातृभाषा में शिक्षित करने** की क्षमता शामिल है , जिससे उनकी भाषाई पहचान को संरक्षित करने में मदद मिलेगी।

• **उचित विनियमन के अधीन** :-जब तक यह स्वायत्तता विद्यमान है, राज्य ऐसे संस्थानों में **शैक्षणिक मानकों को बनाए रखने और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए नियम बना सकता है।**

• **वित्तीय सहायता तक समान पहुंच** :- सरकार अल्पसंख्यक प्रबंधित शैक्षणिक संस्थान को **वित्तीय सहायता देने से केवल इसलिए इनकार नहीं कर सकती क्योंकि वह अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा संचालित है** ।

• **संपत्ति का संरक्षण - अनुच्छेद 30(1ए)** :- यदि राज्य किसी अल्पसंख्यक संस्था की संपत्ति अर्जित करता है, तो उसे उनके संवैधानिक अधिकारों की रक्षा करते हुए **न्यायोचित एवं उचित मुआवजा प्रदान करना चाहिए।**

नोट:- : धर्मनिरपेक्षता, राज्य धर्म, अल्पसंख्यक अधिकार, धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यक

अधिकारों के प्रवर्तन के लिए उपाय (अनुच्छेद 32)

- **अनुच्छेद 32 भारत के संवैधानिक ढांचे में एक केंद्रीय स्थान रखता है** , क्योंकि यह भाग III के तहत दिए गए **मौलिक अधिकारों की प्रवर्तनीयता सुनिश्चित करता है।**
- **नागरिक सशक्तिकरण** : यह प्रावधान **किसी भी व्यक्ति को सीधे सर्वोच्च न्यायालय में जाने की अनुमति देता है** यदि राज्य या किसी सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा उनके **मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किया जाता है ।**
- **कानूनी प्रवर्तन तंत्र** : अनुच्छेद 32 अधिकारों को **कार्रवाई योग्य कानूनी उपायों में बदलता है** , यह सुनिश्चित करता है कि वे केवल प्रतीकात्मक नहीं हैं, बल्कि **न्यायिक हस्तक्षेप के माध्यम से उन्हें बरकरार रखा जा सकता है** ।
- **रिट क्षेत्राधिकार** : सर्वोच्च न्यायालय **मौलिक अधिकारों के उल्लंघन को ठीक करने** के लिए विभिन्न **संवैधानिक रिट जारी कर सकता है - बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण, और अधिकार पृच्छा** ।
- **संसद की भूमिका** : संसद **अनुच्छेद 226** के तहत उच्च न्यायालयों सहित अन्य न्यायालयों को रिट जारी करने का अधिकार दे सकती है। हालाँकि, **अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार मौलिक है और इसे कम नहीं किया जा सकता** ।
- **महत्व** :
    - **कानून के शासन को कायम रखना** तथा यह सुनिश्चित करना कि राज्य की कार्रवाई संवैधानिक सीमाओं के भीतर रहे।
    - **नागरिकों को** अपने अधिकारों का दावा करने के लिए कानूनी मार्ग प्रदान करता है ।
    - **कमजोर और हाशिए पर पड़े समुदायों के लिए** एक ढाल के रूप में कार्य करता है ।
    - **संविधान की** एक बुनियादी विशेषता माने जाने वाले , डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने अनुच्छेद

32 को *"संविधान का हृदय और आत्मा"* बताया ।

प्रादेश

- **मौलिक लेकिन अनन्य अधिकार क्षेत्र नहीं :- मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन से** संबंधित मामलों में , **सर्वोच्च न्यायालय के पास मौलिक अधिकार क्षेत्र है** । हालाँकि, यह **अनन्य नहीं है** , क्योंकि उच्च न्यायालय भी **अनुच्छेद 226 के तहत ऐसे मामलों पर विचार कर सकते हैं** ।

अनुच्छेद 32 के अंतर्गत रिट के प्रकार

- **बंदी प्रत्यक्षीकरण** : यह रिट **उस व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष लाने के लिए जारी की जाती है जिसे कथित रूप से गैरकानूनी रूप से हिरासत में लिया गया हो** । न्यायालय हिरासत की वैधता की जांच करता है।
  - यह **सरकारी अधिकारियों और निजी व्यक्तियों दोनों पर लागू हो सकता है** ।
- **परमादेश (Mandamus)** : न्यायालय द्वारा किसी लोक अधिकारी को जारी किया गया निर्देश जिसमें उन्हें अपने वैध कर्तव्यों का पालन करने के लिए बाध्य किया जाता है , जिन्हें निभाने में उन्होंने उपेक्षा की है या इनकार किया है।
  - इसे **सार्वजनिक निकायों, निगमों, न्यायाधिकरणों या निचली अदालतों को भी जारी किया जा सकता है** ।
- **प्रतिषेध** : यह रिट उच्चतर न्यायालय द्वारा निचली अदालत या न्यायाधिकरण को जारी की जाती है , जिसमें उसे अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कार्य करने या ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करने से रोका जाता है, जिनमें उसे हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है ।
- **उत्प्रेषण पत्र** : किसी उच्च न्यायालय द्वारा **किसी निचली अदालत या न्यायाधिकरण को जारी किया गया** , या तो **किसी मामले को स्थानांतरित करने के लिए** या **क्षेत्राधिकार के अतिक्रमण या कानूनी त्रुटि** जैसे आधारों पर **उसके आदेश को रद्द करने के लिए** ।
- **क्वो वारनटो** : यह रिट किसी व्यक्ति के **सार्वजनिक पद धारण करने के अधिकार को चुनौती देती है** । न्यायालय यह जानना चाहता है कि व्यक्ति **"किस अधिकार से" उस पद पर आसीन है।**
  - इससे सार्वजनिक भूमिकाओं पर **अनाधिकृत कब्जे को रोकने में मदद मिलती है।**

सशस्त्र बल और मौलिक अधिकार

- **उद्देश्य** :- अनुच्छेद 33 संसद को **सशस्त्र बलों, अर्धसैनिक इकाइयों** और संभावित **खुफिया एजेंसियों** में सेवारत कर्मियों के लिए **मौलिक अधिकारों के आवेदन को सीमित करने का अधिकार देता है** , भले ही बाद वाले का विशेष रूप से नाम नहीं दिया गया हो।

- **प्रतिबंधों का कारण** :- इन सीमाओं का उद्देश्य ऐसे बलों के भीतर **अनुशासन, अखंडता और कुशल कार्यप्रणाली को बनाए रखना है** , जहां पूर्ण व्यक्तिगत स्वतंत्रता राष्ट्रीय सुरक्षा या परिचालन तत्परता में हस्तक्षेप कर सकती है।

- **प्रभावित अधिकारों का दायरा** :- जबकि अनुच्छेद 33 विशिष्ट अधिकारों की सूची नहीं देता है, यह **किसी भी मौलिक अधिकार को** ऐसे कर्मियों के लिए सीमित करने की अनुमति देता है, जैसा कि आवश्यक समझा जाता है। हालाँकि, ये **प्रतिबंध न्यायिक जाँच के अधीन हैं** यदि वे **अनुचित या अत्यधिक प्रतीत होते हैं** ।

- **उदाहरण :-** सक्रिय ड्यूटी के दौरान **सैन्य अनुशासन को बनाए रखने या संवेदनशील जानकारी के लीक होने को रोकने के लिए** एक सैनिक की **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19) को** सीमित किया जा सकता है ।

मार्शल कानून और मौलिक अधिकार

- **मार्शल लॉ प्रावधान** : अनुच्छेद 34 तब लागू होता है जब **भारत के किसी क्षेत्र में मार्शल लॉ घोषित किया जाता है** , जिसका अर्थ है कि सेना अस्थायी रूप से व्यवस्था बहाल करने या बनाए रखने के लिए **नागरिक प्रशासन पर नियंत्रण रखती है ।**
- **मौलिक अधिकारों को सीमित करना** : ऐसी परिस्थितियों में, **संसद को ऐसे कानून बनाने का अधिकार है** जो संविधान के भाग III में सूचीबद्ध

मौलिक अधिकारों के अनुप्रयोग को सीमित कर सकते हैं।

- **की गई कार्रवाइयों के लिए कानूनी संरक्षण** : यह अनुच्छेद संसद को यह अधिकार भी देता है कि वह मार्शल लॉ लागू रहने के दौरान **सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखने या बहाल करने के लिए** की गई कार्रवाइयों के लिए **सरकारी अधिकारियों या अन्य लोगों** को **कानूनी प्रतिरक्षा प्रदान कर सके।**
- **उद्देश्य और महत्व** :
  - अनुच्छेद 34 संकट के समय **व्यक्तिगत स्वतंत्रता और राष्ट्रीय सुरक्षा के बीच संतुलन बनाता है ।**
  - यह शांति बहाल करने के लिए आवश्यक होने पर **अधिकारों पर अस्थायी प्रतिबंध लगाने की अनुमति देता है।**
  - **सद्भावनापूर्वक कार्य करने वालों को** कानूनी परिणामों से भी सुरक्षित रखता है।

संपत्ति का अधिकार

• **44वें संशोधन (1978) द्वारा लाया गया परिवर्तन** : इस संशोधन ने संपत्ति के अधिकार की **संवैधानिक स्थिति को** मौलिक अधिकारों की सूची से हटाकर इसे **संवैधानिक कानूनी अधिकार** के रूप में **अनुच्छेद 300 ए के तहत रख दिया** ।

• **अनुच्छेद 31 के तहत पूर्व संरक्षण** : पहले, संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में **मजबूत कानूनी सुरक्षा प्राप्त थी, जिसके तहत** किसी भी सरकारी अधिग्रहण के लिए **सख्त प्रक्रियाओं और उचित मुआवजे की आवश्यकता होती थी।**

• **अब एक कानूनी अधिकार (अनुच्छेद 300 ए)** : संशोधन के बाद, **संपत्ति का अधिग्रहण अभी भी किया जा सकता है** , लेकिन **कानूनी सुरक्षा कमजोर है** । यह राज्य को **विकास और जन कल्याण** पहलों के लिए भूमि अधिग्रहण में **अधिक छूट प्रदान करता है।**

• **निरंतर न्यायिक निरीक्षण** : भले ही यह अब मौलिक अधिकार नहीं है, फिर भी न्यायालय अनुच्छेद 300ए के तहत **अधिग्रहण के मामलों की जांच कर सकते हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उचित प्रक्रिया** और **निष्पक्षता** का पालन किया जा रहा है। **उचित मुआवजे की** , हालांकि स्पष्ट रूप से गारंटी नहीं दी गई है, लेकिन न्यायालयों द्वारा निष्पक्ष व्यवहार के हिस्से के रूप में व्याख्या की जा सकती है।

• **विशिष्ट मामले जहां मुआवजा अभी भी संरक्षित है** :

- **अनुच्छेद 30 : यदि किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान** की संपत्ति अर्जित की जाती है तो **मुआवजा देना अनिवार्य है** ।
- **अनुच्छेद 31ए : यदि अधिकतम सीमा के भीतर निजी खेती की** भूमि अधिग्रहित की जाती है, तो भी कानून में **मुआवजे की आवश्यकता होती है** ।

• **समग्र प्रभाव** : 44वें संशोधन का उद्देश्य व्यक्तिगत स्वामित्व और **राज्य की विकासात्मक आवश्यकताओं के बीच संतुलन बनाना था** । हालांकि यह **तेजी से भूमि अधिग्रहण की सुविधा प्रदान करता है** , फिर भी **निष्पक्षता और संभावित दुरुपयोग के बारे में चिंताएं हैं** , खासकर मुआवजे के संबंध में।

मौलिक अधिकारों के अपवाद

अनुच्छेद 31ए

यह प्रावधान कुछ कानूनों को **संवैधानिक सुरक्षा प्रदान करता है, तथा उन्हें समानता के अधिकार (अनुच्छेद 14)** और **स्वतंत्रता के अधिकार (अनुच्छेद 19) का उल्लंघन करने के लिए चुनौती दिए जाने से बचाता है** ।
यह विशेष रूप से निम्नलिखित से संबंधित कानूनों की सुरक्षा करता है:

1. **कृषि सुधार** ,
2. **सम्पदाओं का उन्मूलन** ,
3. **राज्य द्वारा संपत्ति का प्रबंधन** ,
4. **निगमों का एकीकरण** , और
5. **कृषि, उद्योग और वाणिज्य** के क्षेत्रों में **सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए संपत्ति का अधिग्रहण** ।

अनुच्छेद 31बी

संविधान की **नौवीं अनुसूची** के अंतर्गत रखे गए कानूनों को **मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने के आधार पर अमान्य होने से सुरक्षा प्राप्त है** । हालाँकि, **आईआर कोएलो निर्णय (2007) में** , सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यह **प्रतिरक्षा पूर्ण नहीं है** । **24 अप्रैल, 1973 के बाद नौवीं अनुसूची में शामिल किए गए** किसी भी कानून को चुनौती दी जा सकती है **और उसे रद्द किया जा सकता है** यदि वह **मौलिक अधिकारों के मूल ढांचे** या मुख्य प्रावधानों का उल्लंघन करता है ।

अनुच्छेद 31सी (25वां संविधान संशोधन)

यह लेख निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए प्रस्तुत किया गया था:

(क) उन कानूनों की सुरक्षा करना जो **राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों** , विशेष रूप से **अनुच्छेद 39 (बी) और 39 (सी) को लागू करने का प्रयास करते हैं** , भले ही वे **अनुच्छेद 14 या 19 के साथ संघर्ष करते हों** ।

(ख) अदालतों को यह सवाल करने से रोकना कि क्या कोई कानून वास्तव में इन निर्देशक सिद्धांतों के उद्देश्यों को पूरा करता है।

केशवानंद भारती मामले (1973) में , सुप्रीम कोर्ट ने फैसला सुनाया कि ऐसे कानूनों से **न्यायिक समीक्षा हटाना असंवैधानिक है** , क्योंकि न्यायिक समीक्षा संविधान के **मूल ढांचे का एक हिस्सा है** । हालाँकि, **अनुच्छेद 31C का पहला भाग - कुछ निर्देशक सिद्धांतों को** लागू करने के उद्देश्य से कानूनों को सुरक्षा प्रदान करता है - **को वैध माना गया** ।

मौलिक अधिकारों का महत्व

- **राज्य की शक्ति के दुरुपयोग के खिलाफ सुरक्षा** :- मौलिक अधिकार एक **संवैधानिक ढाल के रूप में काम करते हैं** , जो नागरिकों को **राज्य द्वारा मनमानी कार्रवाई से बचाते हैं** । वे सुनिश्चित करते हैं कि सरकारी अधिकारी **कानूनी और नैतिक सीमाओं के भीतर काम करें** , व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सम्मान करें।
- **समानता और समावेशन को बढ़ावा देना :- ये अधिकार धर्म, जाति, नस्ल, लिंग या जन्म स्थान** के आधार पर असमान व्यवहार पर रोक लगाकर **गैर-भेदभाव** के सिद्धांत को कायम रखते हैं , इस प्रकार एक **न्यायपूर्ण और समावेशी समाज को प्रोत्साहित करते हैं** ।
- **गरिमा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण** :- मौलिक अधिकार **आवश्यक नागरिक स्वतंत्रताएं** जैसे **भाषण, आंदोलन और संघ की स्वतंत्रता को सुरक्षित करते हैं** , जिससे व्यक्तियों को **खुद को व्यक्त करने** , विकास करने और **सम्मान और स्वायत्तता का जीवन जीने में सक्षम बनाया जाता है** ।
- **बहुमत के प्रभुत्व के विरुद्ध संरक्षण** :- जबकि लोकतंत्र बहुमत के शासन पर चलता है, मौलिक अधिकार **अल्पसंख्यकों और व्यक्तियों के लिए सुरक्षा के रूप में कार्य करते हैं** , **बहुसंख्यक उत्पीड़न को रोकते हैं** और **सामूहिक इच्छा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच संतुलन सुनिश्चित करते हैं** ।
- **कानूनी निवारण और जवाबदेही के लिए उपकरण** :- नागरिक अपने अधिकारों का उल्लंघन करने वाले **किसी भी कानून या कार्रवाई को चुनौती देने के लिए अदालतों का दरवाजा खटखटा सकते हैं** । यह न्यायपालिका को **संविधान को बनाए रखने** , कानून के शासन को मजबूत करने और कार्यपालिका और विधायिका की **लोकतांत्रिक जवाबदेही को मजबूत करने का अधिकार देता है।**

मौलिक अधिकारों से संबंधित मुद्दे और चुनौतियाँ

- **कानून और व्यवहार के बीच अंतर** :- यद्यपि संविधान मौलिक अधिकारों की गारंटी देता है, लेकिन **वास्तविक दुनिया में इनका प्रवर्तन अक्सर अपर्याप्त होता है** , जिसके परिणामस्वरूप कई मामलों में **अधिकारों का उल्लंघन होता है और न्याय से इनकार किया जाता है** ।

- **सतत सामाजिक असमानताएं** :- **वंचित समुदाय** , जिनमें **जाति, लिंग, धार्मिक या जातीय भेदभाव का सामना करने वाले लोग भी शामिल हैं** , अक्सर **अपने अधिकारों तक पहुंचने में बाधाओं का सामना करते हैं, विशेष रूप से समानता और गैर-भेदभाव** से संबंधित अधिकारों तक ।

• **न्यायिक अस्पष्टता** :- **न्यायालयों द्वारा मौलिक अधिकारों की व्याख्या से कभी-कभी अनिश्चितता या भिन्न परिणाम** उत्पन्न हो सकते हैं , जिससे **इन अधिकारों के लागू होने या संरक्षण के तरीके में असंगतियां उत्पन्न हो सकती हैं** ।

• **आपातकाल के दौरान अधिकारों का हनन** :- राष्ट्रीय आपातकाल के समय, ऐसे कई प्रकरण हुए हैं जहां **अभिव्यक्ति और व्यक्तिगत स्वतंत्रता जैसी स्वतंत्रताओं को प्रतिबंधित किया** गया है , जिससे **कार्यकारी शक्ति की सीमाओं** पर बहस छिड़ गई है ।

• **डिजिटल युग की चिंताएं** :- **प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रवेश के साथ , डेटा गोपनीयता, डिजिटल निगरानी और व्यक्तिगत जानकारी का दुरुपयोग** जैसे मुद्दे सुरक्षा या शासन की आड़ में **व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वायत्तता के लिए नए खतरे** के रूप में उभरे हैं ।

आगे की राह

• **जागरूकता और शिक्षा का प्रसार** :- नागरिकों को **उनके मौलिक अधिकारों के बारे में अच्छी जानकारी हो तथा वे प्रभावी ढंग से उनका प्रयोग और संरक्षण** कैसे करें , यह समझ सकें, इसके लिए **जन जागरूकता पहल और शैक्षिक प्रयास शुरू करना।**

• **न्यायिक और कानूनी सुधार** :- न्याय प्रक्रिया में तेजी लाने, **लंबित मामलों को कम करने** और मौलिक अधिकारों के उल्लंघन से निपटने में अदालतों की **दक्षता बढ़ाने के लिए प्रणालीगत सुधार लागू करना।**

• **आपातकालीन स्थितियों में अधिकारों का संरक्षण** :- **आपातकालीन शक्तियों के दुरुपयोग को** रोकने के लिए **मजबूत कानूनी जांच विकसित करना** , यह सुनिश्चित करना कि अधिकारों पर कोई भी प्रतिबंध **उचित, आनुपातिक और अस्थायी है** ।

• **डिजिटल गोपनीयता ढांचा** :- **व्यापक डेटा संरक्षण कानूनों को लागू करना** जो **डिजिटल क्षेत्र में नागरिकों की गोपनीयता की रक्षा करते हैं** , और **राष्ट्रीय सुरक्षा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच संतुलन** बनाए रखने के लिए **राज्य निगरानी तंत्र को विनियमित करते हैं** ।

• **न्यायिक क्षमता संवर्धन** :- न्यायाधीशों और कानूनी पेशेवरों के लिए **विशेष प्रशिक्षण और ज्ञान-निर्माण कार्यक्रम आयोजित करना ताकि** अधिकार-संबंधी न्यायशास्त्र की **उनकी समझ गहरी हो सके और व्याख्या में एकरूपता को बढ़ावा मिल सके** ।

• **जमीनी स्तर और सामुदायिक भागीदारी** :- जमीनी स्तर की चुनौतियों की पहचान करने और मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए **संदर्भ-विशिष्ट रणनीति विकसित करने के लिए स्थानीय समुदायों, गैर सरकारी संगठनों और नागरिक समाज के साथ बातचीत को प्रोत्साहित करना।**

समाचार में मुद्दा- महाराष्ट्र का मराठा आरक्षण विधेयक

पृष्ठभूमि

महाराष्ट्र विधानसभा ने **सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों (एसईबीसी)** के तहत वर्गीकृत **मराठा समुदाय** के लिए सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थानों में **10% आरक्षण देने वाले विधेयक को मंजूरी दे दी** , जबकि **क्रीमी लेयर** (समूह के भीतर आर्थिक रूप से उन्नत व्यक्ति) को इससे बाहर रखा गया।

आरक्षण की मांग क्यों?

- **आर्थिक संघर्ष** :- कई मराठा लोग **कृषि से होने वाली आय में कमी** और **आधुनिक, प्रतिस्पर्धी नौकरी बाजार में समायोजन करने में कठिनाई का सामना कर रहे हैं** ।
- **सरकारी नौकरियों के लिए वरीयता** :- निजी क्षेत्र में **नौकरी की सुरक्षा और वेतन कम होने** के कारण , **सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरी को** अधिक स्थिर और वांछनीय विकल्प के रूप में देखा जाता है, खासकर यदि आरक्षण लाभ उपलब्ध हों।
- **जाति-आधारित लामबंदी** :- **जाति-आधारित राजनीतिक आंदोलनों** में वृद्धि, मराठों जैसे समुदायों के बीच **सकारात्मक कार्रवाई के लाभ को सुरक्षित करने के लिए बढ़ते दबाव को दर्शाती है** ।

- **कथित असमानता** :- मराठों में **अन्याय की भावना है, जो अन्य समुदायों को समान सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों का** सामना करने के बावजूद आरक्षण का लाभ उठाते हुए देखते हैं ।
- **आंतरिक आर्थिक विभाजन** :- जबकि कुछ मराठा **धनी और प्रभावशाली हैं** , एक महत्वपूर्ण हिस्सा **आर्थिक और सामाजिक रूप से वंचित है** , जिससे आरक्षण नीतियों में शामिल करने की मांग बढ़ रही है।

जाति-आधारित आरक्षण के समर्थन में तर्क

- **सामाजिक न्याय की खोज** :- **ऐतिहासिक भेदभाव को दूर करने** और **वंचित जाति समूहों के उत्थान का प्रयास** ।
- **निष्पक्ष प्रतिनिधित्व** :- इसका उद्देश्य **सार्वजनिक रोजगार और शिक्षा** में हाशिए के समुदायों की **पर्याप्त भागीदारी सुनिश्चित करना है** ।
- **वास्तविक समानता** :- यह औपचारिक समानता से आगे बढ़कर **गहरी जड़ें जमाए बैठी जाति-आधारित असमानताओं को दूर करती है तथा वास्तविक समानता** की ओर बढ़ती है ।

जाति-आधारित आरक्षण की आलोचना

- **अन्य पिछड़ापन संकेतकों की उपेक्षा** :- **केवल जाति ही** पिछड़ेपन को प्रतिबिंबित नहीं करती; **आर्थिक स्थिति, भूगोल और व्यवसाय** भी महत्वपूर्ण हैं।
- **विशेषाधिकार प्राप्त होने का खतरा** :- यदि समय-समय पर इसकी समीक्षा नहीं की जाती है, तो यह जाति समूह के भीतर **पहले से ही विशेषाधिकार प्राप्त लोगों को लाभ पहुंचाना जारी रख सकता है।**
- **जातिविहीन समाज के लिए बाधा** :- यह **जातिगत पहचान को** खत्म करने की बजाय उसे और मजबूत कर सकता है।
- **बढ़ती मांगें** : समावेशन की मांग करने वाले **राजनीतिक रूप से प्रभावशाली समुदाय प्रणाली पर अत्यधिक बोझ डाल सकते हैं** तथा आरक्षण के उद्देश्य को कमजोर कर सकते हैं।
- **अंतर-जाति आर्थिक असमानता की अनदेखी** :- पूरी जाति को पिछड़ा मानने से **समूह के भीतर की असमानताओं की अनदेखी होती है** ।

आगे की राह

- **साक्ष्य आधारित नीति** :- **संवैधानिक भावना** में आरक्षण के लिए पात्रता निर्धारित करने के लिए **देशव्यापी सामाजिक-आर्थिक और शैक्षिक सर्वेक्षण आयोजित करना** ।
- **विकासोन्मुख दृष्टिकोण** :- **ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देना** , **रोजगार सृजन करना** , तथा जीवनयापन के साधन के रूप में आरक्षण पर निर्भरता कम करने के लिए **क्षेत्रीय बुनियादी ढांचे में निवेश करना।**
- **सख्त क्रीमी लेयर लागू करना** :- यह सुनिश्चित करना कि **आरक्षण का लाभ वास्तव में वंचित वर्ग तक पहुंचे** , न कि समूह के आर्थिक रूप से उन्नत वर्ग तक।

निष्कर्ष

मराठा आरक्षण का मुद्दा भारत में **जाति, अर्थव्यवस्था और अवसर की जटिल वास्तविकताओं को दर्शाता है। सामाजिक समानता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से, समावेशी विकास और वास्तविक समानता** प्राप्त करने के लिए ऐसी नीतियों को **सावधानीपूर्वक कैलिब्रेट किया जाना चाहिए** ।

व्यक्तित्व अधिकार

प्रसंग

हाल ही में एक फैसले में, **दिल्ली उच्च न्यायालय ने एक प्रमुख बॉलीवुड अभिनेता को संरक्षण प्रदान किया** , तथा तीसरे पक्ष को **उनकी पहचान के अनधिकृत उपयोग से रोक दिया। यह फैसला** भारत में **व्यक्तिगत छवि और सार्वजनिक व्यक्तित्व पर व्यक्तिगत नियंत्रण** की **उभरती कानूनी मान्यता को** दर्शाता है ।

व्यक्तित्व अधिकार क्या हैं?

व्यक्तित्व अधिकार किसी व्यक्ति की पहचान की कानूनी सुरक्षा को संदर्भित करते हैं , जो उन्हें उनके **नाम, फोटोग्राफ, आवाज, समानता या अन्य विशिष्ट विशेषताओं के** व्यावसायिक **उपयोग का प्रबंधन करने का विशेष अधिकार प्रदान करते हैं** ।
उदाहरण : किसी सेलिब्रिटी को उस ब्रांड के खिलाफ कानूनी कार्रवाई करने का अधिकार है जो **बिना सहमति के** विज्ञापन में उनकी छवि का उपयोग करता है ।

व्यक्तित्व अधिकार क्यों महत्वपूर्ण हैं

- **सार्वजनिक छवि पर स्वायत्तता** :- व्यक्तियों को यह निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करती है कि सार्वजनिक क्षेत्र में **उनका प्रतिनिधित्व किस प्रकार किया जाएगा ।**
- **वाणिज्यिक दुरुपयोग से सुरक्षा** :- **तीसरे पक्ष द्वारा लाभ** के लिए किसी व्यक्ति की पहचान के **अनधिकृत शोषण को रोकता है** ।
- **प्रतिष्ठा प्रबंधन** :- व्यक्तियों को **अपनी छवि को** भ्रामक या अपमानजनक उपयोग से बचाने की अनुमति देता है।
- **व्यक्तिगत योग्यता को प्रोत्साहित करता है** :- **किसी की उपलब्धियों के माध्यम से बनाए गए मूल्य की रक्षा करता है** , विशेष रूप से खेल, फिल्म या सोशल मीडिया जैसे सार्वजनिक करियर में।

आगे की राह

- **स्पष्ट कानूनी ढांचा** :- व्यक्तित्व अधिकारों को परिभाषित करने और प्रवर्तन तंत्र की रूपरेखा तैयार करने के लिए **विशिष्ट कानून बनाना।**
- **मुक्त भाषण के साथ संतुलन** :- किसी भी कानून को **कलात्मक स्वतंत्रता और सार्वजनिक हित का सम्मान करना चाहिए** , साथ ही **व्यक्तिगत पहचान की रक्षा भी करनी चाहिए** ।
- **सार्वजनिक शिक्षा** :- **नागरिकों** , विशेषकर डिजिटल रचनाकारों के बीच अधिकारों और उपलब्ध कानूनी उपायों के संबंध में जागरूकता बढ़ाना।
- **वैश्विक सहयोग** :- **डीपफेक** और व्यक्तिगत पहचान के **सीमापार डिजिटल दुरुपयोग** जैसे उभरते खतरों से निपटने के लिए **अंतर्राष्ट्रीय मानकों के साथ तालमेल बिठाना।**

निष्कर्ष

एक **कार्यशील लोकतंत्र की मांग है कि व्यक्तियों के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार किया जाए** , न केवल राज्य के संबंध में, बल्कि समाज के भीतर भी। **मौलिक अधिकार व्यक्तियों को निष्क्रिय विषय होने से आगे बढ़ने और डिजिटल पहचान और सार्वजनिक छवि** के क्षेत्र सहित **सक्रिय और संरक्षित नागरिक** के रूप में अपना स्थान प्राप्त करने का अधिकार देते हैं ।

पिछले वर्ष के प्रश्न
1. भारत का निर्माण एक जीवंत साधन है जिसमें अपार गतिशीलता की क्षमता है। यह एक प्रगतिशील समाज के लिए बनाया गया संविधान है।" जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार के विस्तारित क्षितिज के विशेष संदर्भ के साथ व्याख्या करें। 15 अंक- 2023
2. "भारत के पूरे क्षेत्र में आवागमन और निवास का अधिकार भारतीय नागरिकों को स्वतंत्र रूप से उपलब्ध है, लेकिन ये अधिकार निरपेक्ष नहीं हैं।" टिप्पणी.- 2022
3. निजता के अधिकार पर सर्वोच्च न्यायालय के नवीनतम निर्णय - 2017 के प्रकाश में मौलिक अधिकारों के दायरे की जांच करें।
4. क्या पर्यावरण को स्वच्छ रखने के अधिकार के तहत दिवाली के दौरान पटाखे जलाने पर कानूनी विनियमन लागू होता है? भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 और इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के 2015 के निर्णय के आलोक में चर्चा करें।
5. आप "भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता" की अवधारणा से क्या समझते हैं? क्या इसमें घृणा फैलाने वाली बातें भी शामिल हैं? भारत में फिल्में अभिव्यक्ति के अन्य रूपों से थोड़े अलग स्तर पर क्यों हैं? चर्चा करें।-2014
6. संविधान के अनुच्छेद 19 के कथित उल्लंघन के संदर्भ में आईटी अधिनियम की धारा 66ए पर चर्चा करें।-2013

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत (डीपीएसपी) (भाग IV, अनुच्छेद 36-51)

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत भारतीय संविधान में निर्धारित **मार्गदर्शक सिद्धांत** हैं जो सरकार को सभी नागरिकों के लिए **सामाजिक और आर्थिक कल्याण प्राप्त करने की दिशा में काम करने में मदद करते हैं। ये प्रावधान कल्याणकारी राज्य के प्रति संविधान की प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं और आयरलैंड के संविधान** से प्रेरणा लेते हैं ।

मौलिक अधिकारों के विपरीत , जो **न्यायालयों के माध्यम से कानूनी रूप से लागू करने योग्य हैं** , निर्देशक सिद्धांत **न्यायोचित नहीं हैं** । हालाँकि, वे **अत्यधिक संवैधानिक महत्व रखते हैं** , क्योंकि वे कानून बनाने के लिए एक **नैतिक और राजनीतिक ढांचा प्रदान करते हैं और न्याय, समानता और राष्ट्रीय विकास के उद्देश्य से नीतियाँ** बनाने में राज्य का मार्गदर्शन करते हैं ।

डीपीएसपीएस की विशेषताएं/महत्व:

- **सभी क्षेत्रों में न्याय** :-डीपीएसपी का उद्देश्य एक ऐसे समाज का निर्माण करना है जहां प्रत्येक व्यक्ति के लिए **सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय** सुनिश्चित हो, जिससे एक **संतुलित और निष्पक्ष सामाजिक व्यवस्था का निर्माण हो** ।
- **कानूनी रूप से लागू नहीं** :- मौलिक अधिकारों के विपरीत, इन सिद्धांतों को **अदालतों के माध्यम से लागू नहीं किया जा सकता है** । वे **गैर-न्यायसंगत हैं** , जिसका अर्थ है कि व्यक्ति उनके कार्यान्वयन के लिए मुकदमा दायर नहीं कर सकते हैं।
- **मार्गदर्शक भूमिका** :- ये प्रावधान सरकार के लिए **नीति निर्देशक के रूप में कार्य करते हैं,** तथा कानून बनाने और कल्याणकारी कार्यक्रम तैयार करने में **संवैधानिक मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।**
- **समाजवादी मूल्यों को प्रतिबिंबित करें** :- ये सिद्धांत **समान धन वितरण** , **सम्मानजनक कार्य स्थितियों** और समाज के सभी वर्गों के लिए **समान अवसरों की** वकालत करके **समाजवादी दर्शन को मूर्त रूप देते हैं।**
- **शासन ब्लूप्रिंट** :-डीपीएसपी शासन के लिए एक **दूरदर्शी ढांचा प्रदान करते हैं** , जिससे राज्य को **कल्याणकारी और समतावादी समाज की दिशा में उत्तरोत्तर कार्य करने में मदद मिलती है** ।
- **अधिकारों और वास्तविकता के बीच संबंध** :- सामाजिक लक्ष्यों को साकार करने के लिए राज्य को कर्तव्य सौंपकर, डीपीएसपी **संवैधानिक वादों को वास्तविक दुनिया के परिणामों में बदलने में मदद करते हैं** , जिससे **मौलिक अधिकारों की भावना का समर्थन होता है** ।

डीपीएसपी और एफआर के बीच संघर्ष

- भारतीय संविधान **मौलिक अधिकारों (FR)** और **राज्य नीति निर्देशक सिद्धांतों (DPSP)** के बीच **तनाव की गुंजाइश प्रस्तुत करता है** । जबकि **मौलिक अधिकार कानूनी रूप से लागू करने योग्य हैं** और व्यक्तियों को न्यायोचित दावे प्रदान करते हैं, **DPSP गैर-प्रवर्तनीय निर्देशों के रूप में कार्य करते हैं** जिनका उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक कल्याण को बढ़ावा देने में राज्य का मार्गदर्शन करना है।
- **प्रवर्तनीय अधिकारों और गैर-न्यायसंगत निर्देशों के बीच** यह संभावित संघर्ष , **ऐतिहासिक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय** द्वारा व्यापक व्याख्या का विषय रहा है ।

चंपकम दोरैराजन केस 1951	☞ **न्यायालय का निर्णय: सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 37 को स्वीकार किया, जिसमें कहा गया है कि निदेशक तत्वों को न्यायालय द्वारा लागू नहीं किया जा सकता।** ☞ **मौलिक अधिकारों को प्राथमिकता दी जाएगी: न्यायालय ने घोषणा की कि मौलिक अधिकारों पर अध्याय** ☞ **अधिकार सर्वोपरि है। निर्देशक सिद्धांतों को मौलिक अधिकारों के साथ संगत और अधीनस्थ होना चाहिए।** ☞ **वरीयता स्थापित: इस ऐतिहासिक निर्णय ने यह सिद्धांत स्थापित किया कि संघर्ष के मामलों में मौलिक अधिकार राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों (डीपीएसपी) पर वरीयता प्राप्त करते हैं।**

गोलक नाथ केस 1967	इस मामले में न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि नीति निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए मौलिक अधिकारों को कम/क्षीण नहीं किया जा सकता।
केशवानंद भारती केस 1973	मूल संरचना सिद्धांत: सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला दिया कि संसद डी.पी.एस.पी. को लागू करने के लिए संविधान (एफ.आर. सहित) में संशोधन कर सकती है, लेकिन संविधान के "मूल ढांचे" (एफ.आर. सहित) को नष्ट नहीं किया जा सकता।
मिनर्वा मिल्स केस 1980	एफआर और डीपीएसपी के बीच संतुलन: सुप्रीम कोर्ट ने माना कि संविधान अस्तित्व में है भाग III और भाग IV का संतुलन। एक को दूसरे पर पूर्ण प्राथमिकता देने से संविधान की समरसता में खलल पड़ेगा। संविधान पीठ ने माना था कि मौलिक अधिकार और नीति निर्देशक सिद्धांत समतावादी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना में रथ के दो पहिए हैं।

मिनर्वा मिल्स के फैसले के बाद , **सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया** कि **मौलिक अधिकारों** और **राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों** के बीच कोई **अंतर्निहित विरोधाभास नहीं है** । इसके बजाय, दोनों को संविधान के **अभिन्न और पूरक घटकों के रूप में देखा जाता है, जो न्याय और कल्याण प्राप्त करने के लिए मिलकर काम करते हैं।**

न्यायपालिका ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा और **राज्य के सामाजिक उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के बीच संतुलन बनाने की लगातार कोशिश की है** । जबकि **मौलिक अधिकार कानूनी सर्वोच्चता रखते हैं** , **डीपीएसपी नीति और कानून निर्माण का मार्गदर्शन करना जारी रखते हैं** , बशर्ते वे व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर **अनुचित सीमाएँ न लगाएँ।**

यह सतत **संवैधानिक व्याख्या** यह सुनिश्चित करने में मदद करती है कि **भारत का कानूनी ढांचा गतिशील बना रहे और** बदलती सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति उत्तरदायी बना रहे।

समान नागरिक संहिता: समान नागरिक संहिता की खोज - एकीकृत राष्ट्र की ओर एक मार्ग

भारतीय संविधान में **राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों** के अंतर्गत समान नागरिक संहिता (यूसीसी) का उल्लेख किया गया है । **इसमें सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक कानून अपनाने की बात कही गई है** , चाहे उनकी धार्मिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो।

यूसीसी का उद्देश्य **विवाह, तलाक, उत्तराधिकार और गोद लेने** जैसे क्षेत्रों में **कानूनों को मानकीकृत करना है** , जो वर्तमान में **धार्मिक परंपराओं और रीति-रिवाजों** पर आधारित **अलग-अलग व्यक्तिगत कानूनों द्वारा शासित हैं** ।

वर्तमान में, विभिन्न धार्मिक समुदाय **अलग-अलग व्यक्तिगत कानूनों का पालन करते हैं** , जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न समूहों के **नागरिक अधिकारों और दायित्वों में असंगतियां होती हैं ।**

कानून के समक्ष समानता को बढ़ावा मिलने , **धर्म आधारित कानूनी असमानताओं को समाप्त करने** तथा **राष्ट्रीय एकता और सामाजिक एकीकरण में योगदान मिलने की** उम्मीद है ।

प्रमुख विकास और कानून

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

स्वतंत्रता-पूर्व घटनाक्रम

- **लेक्स लोकी रिपोर्ट (1840)** : **कानूनों के एकसमान संहिताकरण की सिफारिश की गई** , साथ ही यह सलाह दी गई कि **व्यक्तिगत कानूनों को** ऐसे संहिताकरण से बाहर रखा जाए।
- **रानी की घोषणा (1859)** : भारतीय समुदायों को उनके धार्मिक मामलों , जिसमें रीति-रिवाज और व्यक्तिगत कानून शामिल हैं, **में हस्तक्षेप न करने का आश्वासन दिया गया।**

- **बीएन राऊ समिति (1941) :** व्यक्तिगत कानूनी मामलों की बढ़ती जटिलता के कारण **हिंदू कानून के संहिताकरण की** जांच के लिए स्थापित की गई थी ।

स्वतंत्रता के बाद के कदम

- **निर्देशक सिद्धांत (डीपीएसपी)** : **समान नागरिक संहिता को अनुच्छेद 44** में शामिल किया गया , जो सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक कानून रखने के **आकांक्षात्मक लक्ष्य को दर्शाता है।**
- **हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम (1956)** : इसका उद्देश्य हिंदुओं, बौद्धों, जैनियों और सिखों के लिए **उत्तराधिकार कानूनों को संहिताबद्ध करना था।**
- **विशेष विवाह अधिनियम (1954) :** धर्म की परवाह किए बिना सिविल विवाह के लिए एक **धर्मनिरपेक्ष ढांचा प्रदान किया गया।**

न्यायिक घटनाक्रम

- **शाहबानो केस (1985)** : सर्वोच्च न्यायालय ने लैंगिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए **संसद द्वारा समान नागरिक संहिता लागू करने की आवश्यकता पर बल दिया।**
- **सरला मुद्गल केस (1995)** : **द्विविवाह की समस्याओं** और विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों से उत्पन्न होने वाले संघर्षों पर प्रकाश डाला गया।
- **शायरा बानो बनाम भारत संघ (2017)** : सर्वोच्च न्यायालय ने **तीन तलाक को** असंवैधानिक करार देते हुए इसे रद्द कर दिया तथा समान नागरिक संहिता की मांग पर पुनः जोर दिया।

हालिया घटनाक्रम: उत्तराखंड का समान नागरिक संहिता विधेयक

उत्तराखंड **समान नागरिक संहिता विधेयक** पारित करने वाला **पहला भारतीय राज्य बन गया** , जिसमें **जनजातीय समुदायों को छोड़कर** विवाह, संपत्ति और उत्तराधिकार जैसे **व्यक्तिगत मामलों पर समान कानून लागू किये गये** ।

प्रमुख प्रावधान:

- **कवरेज** : **जनजातीय प्रथागत कानूनों** द्वारा शासित लोगों को छोड़कर , **सभी राज्य निवासियों पर लागू होता है।**
- **अनिवार्य पंजीकरण** :
    - **विवाह** : **60 दिनों के भीतर पंजीकृत होना चाहिए** ।
    - **लिव-इन रिलेशनशिप : 30 दिनों** के भीतर अनिवार्य पंजीकरण (LGBTQIA+ भागीदारी को छोड़कर)।
- **विवाह प्रथाएँ** :
    - **बहुविवाह, निकाह हलाला और तीन तलाक पर** प्रतिबंध।
- **बाल अधिकार** :
    - **शून्य या शून्यकरणीय विवाह** या **लिव-इन रिलेशनशिप** में जन्मे बच्चों को कानूनी मान्यता ।
- **विरासत** :
    - **बेटे और बेटियों के लिए समान संपत्ति अधिकार** ।
    - हिंदू कानून के तहत **सहदायिक प्रणाली को समाप्त कर दिया गया ।**

यूसीसी को महत्वपूर्ण क्यों माना जाता है?

- **कानून के समक्ष समानता** : धर्म-आधारित कानूनी असमानताओं को समाप्त करके **एकरूपता और समान व्यवहार को बढ़ावा देता है।**
- **लैंगिक न्याय** : व्यक्तिगत कानूनों में महिलाओं के लिए नुकसानदेह **भेदभावपूर्ण प्रावधानों को समाप्त किया जा सकता है।**
- **धर्मनिरपेक्ष ढांचा** : भारत के **धर्मनिरपेक्ष संवैधानिक लोकाचार को प्रतिबिंबित करता है** , तथा नागरिक मामलों में एकरूपता सुनिश्चित करता है।
- **व्यक्तिगत विकल्पों में स्वतंत्रता** : व्यक्तियों को **धार्मिक सीमाओं के बाहर विवाह करने या गोद लेने**

की अनुमति देता है , जिससे **व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ावा मिलता है** ।

- **हाशिए पर पड़े लोगों के लिए संरक्षण** : **महिलाओं, बच्चों और अल्पसंख्यकों के लिए मजबूत कानूनी सुरक्षा प्रदान की जा सकती है** ।
- **प्रगति का प्रतीक** : इसे धार्मिक और जाति-आधारित विभाजन से परे **एक आधुनिक, समावेशी समाज की ओर एक कदम के रूप में देखा जाता है।**

चिंताएँ और चुनौतियाँ

- **धार्मिक संवेदनशीलताएँ** : पारंपरिक रूप से **आस्था और सामुदायिक रीति-रिवाजों** द्वारा शासित मामलों में **दखलंदाजी के रूप में देखे जाने का जोखिम** ।
- **अल्पसंख्यकों की चिंताएं** : कुछ अल्पसंख्यक समूहों को चिंता है कि इससे **उनकी सांस्कृतिक पहचान** या **बहुसंख्यक प्रभुत्व कमजोर हो सकता है** ।
- **सांस्कृतिक विविधता पर प्रभाव** : एक **समान संहिता अनजाने में** पूरे भारत में **बहुलवादी परंपराओं को** दबा सकती है ।
- **मसौदा तैयार करने की जटिलता** : एक **सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य समान नागरिक संहिता तैयार करना** जो सभी परंपराओं का सम्मान करती हो, एक **विधायी चुनौती है** ।
- **विधि आयोग (2018)** : पूर्ण पैमाने पर समान नागरिक संहिता (यूसीसी) लागू करने के बजाय **मौजूदा व्यक्तिगत कानूनों में सुधार और संहिताकरण की सिफारिश की गई।**
- **संवैधानिक तनाव** : समान नागरिक संहिता को **अनुच्छेद 14 (समानता) और अनुच्छेद 25 (धर्म की स्वतंत्रता)** के बीच संतुलन बनाना होगा , जिससे कानूनी तनाव पैदा हो सकता है।

आगे बढ़ने का रास्ता

यूसीसी कार्यान्वयन के लिए सुझाया गया दृष्टिकोण

- **चरण-दर-चरण परिचय** : **प्रतिरोध को कम करने** , सहज परिवर्तन सुनिश्चित करने और समुदायों को अनुकूलन के लिए समय देने के लिए समान **नागरिक** संहिता को लागू करने के लिए **चरणबद्ध या क्रमिक मॉडल** अपनाएं ।
- **कानूनी समानता को प्राथमिकता देना** : मसौदा तैयार करने और लागू करने की पूरी प्रक्रिया के दौरान, सभी नागरिकों के लिए **निष्पक्षता और समान अधिकार सुनिश्चित करने पर ध्यान केंद्रित करना,** धर्म या लिंग के बावजूद **कानूनी समानता के सिद्धांत को कायम रखना।**
- **संवाद को प्रोत्साहित करना** : **पारदर्शिता बनाए रखने** , संदेहों को दूर करने और **समुदायों में विश्वास बनाने** के लिए प्रस्तावित व्यक्तिगत कानून सुधारों पर **खुली, समावेशी सार्वजनिक चर्चा** को बढ़ावा देना ।
- **विशेषज्ञ की भागीदारी** : **कानूनी विद्वानों, सामाजिक वैज्ञानिकों और सामुदायिक नेताओं** के साथ मिलकर यह सुनिश्चित करना कि संहिता संवैधानिक रूप से सुदृढ़ रहते हुए **विविध सामाजिक समूहों की वास्तविकताओं और मूल्यों को प्रतिबिंबित करे।**
- **सार्वभौमिक एवं न्यायसंगत सिद्धांत** : समान नागरिक संहिता को **संविधान की भावना** के अनुरूप **तटस्थ, सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत मूल्यों** जैसे **सम्मान, समानता, स्वतंत्रता और न्याय पर आधारित करें** ।

निष्कर्ष

समान नागरिक संहिता लागू होने से **समानता, समावेशिता और धर्मनिरपेक्षता के प्रति भारत की प्रतिबद्धता मजबूत होने** की संभावना है । हालांकि, **देश के बहुलवादी ताने-बाने को बनाए रखने के लिए, इस प्रक्रिया को सावधानी, परामर्श और सांस्कृतिक संवेदनशीलता** के साथ अपनाया जाना चाहिए ।

ध्यान एक ऐसे **ढांचे के निर्माण पर होना चाहिए जो भारत की विविधता का सम्मान करते हुए कल्याणकारी राज्य** के **निर्देशक सिद्धांतों के दृष्टिकोण** की दिशा में काम करे , सभी के लिए **सामाजिक और आर्थिक न्याय** और **सच्ची लोकतांत्रिक भागीदारी सुनिश्चित करे।**

स्वास्थ्य का अधिकार

स्वास्थ्य के अधिकार को संवैधानिक समर्थन

संविधान के अनुच्छेद **38, 39, 42, 43 और 47 राज्य को** सार्वजनिक स्वास्थ्य और कल्याण को बढ़ावा देने का कर्तव्य सौंपते हैं। इन **निर्देशक सिद्धांतों का** उद्देश्य **स्वास्थ्य सेवा को सुलभ, सस्ती और न्यायसंगत बनाना** है, जो व्यवहार में स्वास्थ्य को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता देने का आधार बनता है।

स्वास्थ्य के अधिकार के समर्थन में हालिया घटनाक्रम

- **राजस्थान की स्वास्थ्य के अधिकार की पहल** : **राजस्थान के मुख्यमंत्री ने** सार्वजनिक **स्वास्थ्य के राजस्थान मॉडल का** अनावरण किया , जिसका उद्देश्य **स्वास्थ्य के अधिकार को शामिल करना है। यह मॉडल विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के मानकों** के अनुरूप **निवारक, प्राथमिक और उपचारात्मक देखभाल** पर केंद्रित है ।

स्वास्थ्य सेवा तक पहुंच को मजबूत करने के लिए प्रमुख सरकारी उपाय

- **आत्मनिर्भर भारत स्वास्थ्य पैकेज (बजट 2021-22)** : **आत्मनिर्भरता मिशन** के तहत स्वास्थ्य सेवा के बुनियादी ढांचे और तैयारियों को बढ़ाने के लिए कई **अल्पकालिक और दीर्घकालिक पहल शुरू की गईं** ।
- **स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए पीएलआई योजना** : उत्पादन **-लिंक्ड प्रोत्साहन (पीएलआई) योजनाओं** का उद्देश्य महत्वपूर्ण **दवा उत्पादों और चिकित्सा उपकरणों के घरेलू विनिर्माण को बढ़ावा देना** और भारत की स्वास्थ्य सुरक्षा को मजबूत करना है।
- **एक राष्ट्र एक राशन कार्ड (ONORC)** : **32 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों** में शुरू की गई यह योजना **690 मिलियन लाभार्थियों के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करती है** , जिससे विशेष रूप से प्रवासी श्रमिकों के लिए **पोषण संबंधी स्वास्थ्य को समर्थन मिलता है।**
- **बुनियादी जरूरतों पर ध्यान (एनएचपी 2017)** : राष्ट्रीय **स्वास्थ्य नीति (2017) स्वास्थ्य, पोषण, स्वच्छ पेयजल, स्वच्छता** और **वायु गुणवत्ता की अन्योन्याश्रयता** को मान्यता देती है , तथा स्वास्थ्य के लिए **एकीकृत दृष्टिकोण पर जोर देती है।**
- **विस्तारित वैक्सीन कवरेज** : सरकार ने बजट 2021 में **स्वदेशी रूप से विकसित न्यूमोकोकल वैक्सीन** के **देशव्यापी विस्तार की घोषणा की । पांच साल से कम उम्र के बच्चों में निमोनिया को रोकने के उद्देश्य से निर्मित इस टीके के** पूरी तरह लागू होने पर **सालाना लगभग 50,000 लोगों की जान बचाने** की क्षमता है ।

पिछले वर्ष के प्रश्न

प्रश्न: उन संभावित कारकों पर चर्चा करें जो भारत को अपने नागरिकों के लिए राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में प्रदत्त समान नागरिक संहिता लागू करने से रोकते हैं। - 2015

मौलिक कर्तव्य (भाग IV ए, अनुच्छेद 51 ए)

भारतीय संविधान में मौलिक कर्तव्य

संविधान **मौलिक अधिकारों की गारंटी देता है** , लेकिन यह **मौलिक कर्तव्यों** के रूप में **नागरिकों के नैतिक दायित्वों को भी रेखांकित करता है** , जिन्हें **भाग IV-A (अनुच्छेद 51A) के तहत सूचीबद्ध किया गया है। ये कर्तव्य कानूनी रूप से लागू करने योग्य नहीं** हैं , लेकिन **नैतिक जिम्मेदारियों के रूप में कार्य करते हैं** जो एक लोकतांत्रिक और सामंजस्यपूर्ण समाज के कामकाज का समर्थन करते हैं।

मौलिक कर्तव्यों की प्रमुख विशेषताएँ

- **42वें संशोधन (1976) द्वारा जोड़े गए** : ये कर्तव्य **मूल रूप से संविधान का हिस्सा नहीं थे। स्वर्ण सिंह समिति** की सिफारिशों से प्रभावित होकर इन्हें **42वें संविधान संशोधन के माध्यम से शामिल किया गया** ।
- **देशभक्ति और राष्ट्रीय भावना को बढ़ावा देना** : कर्तव्यों का उद्देश्य नागरिकों में **राष्ट्रीय गौरव** , एकता और **नागरिक जिम्मेदारी की भावना विकसित करना है।**
- **राष्ट्रीय प्रतीकों और संस्थाओं का सम्मान करना** :
  नागरिकों से अपेक्षा की जाती है कि वे **संविधान का सम्मान करें** , **राष्ट्रीय ध्वज और गान का आदर करें** तथा **भारत की बहुलवादी विरासत को संजोकर रखें** ।
- **सामाजिक सामंजस्य और पर्यावरण जागरूकता को प्रोत्साहित करना** : **समुदायों के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व** को बढ़ावा देना और **प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा सुनिश्चित करना** आवश्यक घटक हैं।
- **व्यक्तिगत विकास और राष्ट्रीय योगदान** : व्यक्तियों से जीवन के सभी क्षेत्रों में **उत्कृष्टता प्राप्त करने तथा राष्ट्रीय विकास और सामूहिक प्रगति में योगदान देने का आग्रह किया जाता है** ।

कर्तव्य और अधिकार: पूरक, विरोधाभासी नहीं

सर्वोच्च **न्यायालय ने , विशेष रूप से केशवानंद भारती निर्णय** के बाद , स्पष्ट किया है कि **मौलिक कर्तव्य और मौलिक अधिकार परस्पर विरोधी नहीं हैं** । इसके बजाय, उन्हें संविधान के **परस्पर सुदृढ़ स्तंभों के रूप में देखा जाता है, जो एक न्यायपूर्ण, समावेशी और कल्याण-उन्मुख समाज के निर्माण के लिए मिलकर काम करते हैं** । इसी तरह, **राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत** और कर्तव्य सार्वजनिक हित में **विधायी और नागरिक व्यवहार का मार्गदर्शन** करके अधिकारों के पूरक हैं ।

अधिकार और कर्तव्य

भारतीय लोकतंत्र में मौलिक अधिकारों और कर्तव्यों के बीच अंतर्संबंध

भारतीय संविधान न केवल नागरिकों को कुछ अविभाज्य **मौलिक अधिकार प्रदान करता है, बल्कि भाग IV-A (अनुच्छेद 51A)** के अंतर्गत संबंधित **मौलिक कर्तव्यों की रूपरेखा भी तैयार करता है। ये सभी मिलकर एक जिम्मेदार और सामंजस्यपूर्ण लोकतांत्रिक समाज** का नैतिक और संवैधानिक आधार तैयार करते हैं ।

दार्शनिक और संवैधानिक आधार

- **महात्मा गांधी का दृष्टिकोण** : *हिंद स्वराज* में , गांधीजी ने इस बात पर जोर दिया कि **सच्चे अधिकार कर्तव्यों की पूर्ति से उत्पन्न होते हैं** , और दोनों को एक न्यायपूर्ण समाज के अविभाज्य तत्व के रूप में चित्रित किया।

- **हेरोल्ड लास्की का कथन** : प्रसिद्ध राजनीतिक विचारक ने सुझाव दिया कि **"अधिकार एक कर्तव्य भी है"** , इस धारणा को पुष्ट करते हुए कि नागरिक स्वतंत्रता में जिम्मेदारी भी शामिल है।

न्यायिक व्याख्या और मान्यता

- **एम्स छात्र संघ बनाम एम्स** : सर्वोच्च **न्यायालय ने** अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों के समान महत्व पर जोर दिया।
- **ग्रामीण मुकदमेबाजी एवं अधिकार केन्द्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** : इस मामले ने **पर्यावरण जिम्मेदारी** के विचार को नागरिकों और राज्य दोनों के लिए एक संवैधानिक कर्तव्य के रूप में विस्तारित किया।
- **न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्रा आयोग (2003)** : नागरिक उत्तरदायित्व को सुदृढ़ करने के लिए **कानूनी और सामाजिक प्रवर्तन के साथ मौलिक कर्तव्यों का समर्थन करने की** सिफारिश की ।

अधिकारों और कर्तव्यों का समन्वय क्यों महत्वपूर्ण है

- **पारस्परिक सुदृढ़ीकरण** : अधिकार और कर्तव्य **एक दूसरे के पूरक हैं** , तथा एक सामाजिक अनुबंध का निर्माण करते हैं जहां स्वतंत्रताएं दायित्वों के साथ संतुलित होती हैं।
- **नागरिक उत्तरदायित्व** : कर्तव्य नागरिकों को उनके अधिकारों का **रचनात्मक** और **सामाजिक जिम्मेदारी के साथ उपयोग करने की याद दिलाते हैं** ।
- **स्वतंत्रता की सुरक्षा** :
  जब कर्तव्यों का सम्मान किया जाता है, तो सामाजिक रूप से सामंजस्यपूर्ण वातावरण में **स्वतंत्रता संरक्षित रहती है ।**
- **सामाजिक पूंजी का निर्माण** : कर्तव्य **आपसी सम्मान और सहयोग को बढ़ावा देते हैं** , सामाजिक ताने-बाने को मजबूत करते हैं।
- **राज्य के कार्यों को सशक्त बनाना** : कर्तव्य **स्वैच्छिक और सहभागी नागरिकता** के माध्यम से **संवैधानिक लक्ष्यों को साकार करने** में सरकार की सहायता करते हैं ।
- **शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व** : अधिकारों का जिम्मेदाराना प्रयोग एक **स्थिर और समावेशी लोकतांत्रिक व्यवस्था में योगदान देता है** ।

अधिकारों और कर्तव्यों के बीच संतुलन बनाने की चुनौतियाँ

- **प्रवर्तनीयता अन्तराल** : अधिकार **न्यायोचित होते हैं** , जबकि कर्तव्य **प्रवर्तनीय नहीं होते** , जिससे उनका कथित महत्व कम हो सकता है।
- **कार्यक्षेत्र में अस्पष्टता** : कुछ कर्तव्यों की **स्पष्ट परिभाषा नहीं है** , जिसके कारण व्यक्तिपरक व्याख्याएं होती हैं या **धार्मिक/सांस्कृतिक मानदंडों के साथ टकराव होता है** ।
- **अनुप्रयोग का टकराव** : अधिकार और कर्तव्य कभी-कभी **तनाव में दिखाई दे सकते हैं** , उदाहरण के लिए, धर्म का अधिकार बनाम सद्भाव को बढ़ावा देने का कर्तव्य।
- **निर्भरता संबंध** : कुछ कर्तव्यों को पूरा करने के लिए शिक्षा या स्वास्थ्य जैसे **बुनियादी अधिकारों की प्राप्ति की आवश्यकता होती है ।**

मौलिक कर्तव्यों की आलोचना

- **अपूर्ण एवं अस्पष्ट** :
  कर्तव्यों की सूची सीमित है , तथा कुछ प्रविष्टियों का दायरा एवं अनुप्रयोग **स्पष्ट नहीं है।**
- **प्रतीकात्मक मूल्य** :
  आलोचकों का तर्क है कि ये **नैतिक सिद्धांत** पहले से ही नागरिक जीवन में निहित हैं, जिससे उनका औपचारिक समावेश निरर्थक हो जाता है।
- **कानूनी बल का अभाव** :
  चूंकि वे **कानूनी रूप से लागू करने योग्य नहीं हैं** , इसलिए उनका प्रभाव **व्यावहारिक होने के बजाय मानकीय रहता है** ।

कर्तव्यों का विधायी सुदृढ़ीकरण

यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से लागू नहीं किया जा सकता, फिर भी कई **कानून मौलिक कर्तव्यों के सार को प्रतिबिंबित करते हैं** , जैसे:

ड्यूटी थीम	संगत कानून
राष्ट्रीय प्रतीकों का सम्मान	*राष्ट्रीय सम्मान अपमान निवारण अधिनियम, 1971*
सामाजिक सद्भाव और गैर-भेदभाव	*नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955*
सार्वजनिक संपत्ति	*भारतीय दंड संहिता, 1860*
और व्यवस्था का सम्मान	*(विभिन्न धाराएं)*
पर्यावरण संरक्षण	*वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972* और *वन संरक्षण अधिनियम, 1980*

निष्कर्ष

अधिकारों और कर्तव्यों की परस्पर निर्भरता एक **लोकतांत्रिक और समावेशी भारत** की दृष्टि के लिए मौलिक है । जैसे-जैसे संविधान **कोविड-19 महामारी जैसी नई चुनौतियों का सामना करने के लिए विकसित हो रहा है** , हमारे **कर्तव्यों का सम्मान करना हमारे अधिकारों का** दावा करने जितना ही महत्वपूर्ण हो गया है । एक नागरिक जो सक्रिय रूप से दोनों को बनाए रखता है, एक **न्यायपूर्ण, प्रगतिशील और शांतिपूर्ण समाज** सुनिश्चित करता है ।

<u>पिछले वर्ष के प्रश्न</u>

प्रश्न: भारतीय संविधान राष्ट्र की एकता और अखंडता को बनाए रखने के लिए केंद्रीकरण की प्रवृत्ति प्रदर्शित करता है। महामारी रोग अधिनियम, 1897; आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 और हाल ही में पारित कृषि अधिनियमों के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट करें।

नागरिकता (भाग II, अनुच्छेद 5-11)

नागरिकता एक संप्रभु राज्य के भीतर एक व्यक्ति की **मूल पहचान के रूप में कार्य करती है, जो नागरिक और राष्ट्र के बीच एक कानूनी और राजनीतिक बंधन स्थापित करती है** । यह **एक लोकतांत्रिक समाज की आधारशिला बनाती है,** जो व्यक्तियों से **अपेक्षित अधिकारों** और कर्तव्यों दोनों को परिभाषित करती है ।

भारतीय संदर्भ में, **संविधान भाग II (अनुच्छेद 5 से 11) में नागरिकता के मुद्दे को व्यापक रूप से संबोधित करता है । इन अनुच्छेदों ने** संविधान के प्रारंभ में **भारतीय नागरिकता निर्धारित करने के लिए प्रारंभिक रूपरेखा** तैयार की ।

<u>प्रमुख पहलुओं में शामिल हैं:</u>

- **स्वचालित नागरिकता : अनुच्छेद 5** स्वतंत्रता के समय **निवास** , **जन्म** और **प्रवास** जैसे मानदंडों के आधार पर व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करता है ।
- **अधिग्रहण और समाप्ति** : प्रावधानों में यह भी बताया गया कि कानूनी और संवैधानिक तरीकों से **नागरिकता कैसे प्राप्त या त्यागी जा सकती है ।**
- **संसद की विधायी शक्ति** : अनुच्छेद 11 **संसद को** 1950 के बाद **नागरिकता अधिग्रहण, समाप्ति और संबंधित मामलों को** विनियमित करने के लिए कानून बनाने का अधिकार देता है।

इस प्रकार, भारत में नागरिकता का संवैधानिक आधार न केवल यह परिभाषित करता है **कि कौन नागरिक होने की योग्यता रखता है , बल्कि विधानमंडल को** भविष्य की राष्ट्रीय आवश्यकताओं और चुनौतियों के अनुरूप **नागरिकता कानूनों को अनुकूलित करने का** अधिकार भी प्रदान करता है ।

नागरिकता अधिनियम 1955

नागरिकता अधिनियम, 1955: अवलोकन और समकालीन प्रासंगिकता

1955 का नागरिकता अधिनियम भारतीय नागरिकता से संबंधित मामलों को विनियमित करने वाला **प्राथमिक कानून** है । इसे संविधान के तहत प्रावधानों को **संहिताबद्ध** और **सुव्यवस्थित करने के लिए डिज़ाइन किया गया था और इसमें कई संशोधन हुए हैं, विशेष रूप से 1986, 2003 और 2019 में** ।

भारतीय नागरिकता प्राप्त करने के पांच कानूनी रास्ते

इस कानून के तहत, निम्नलिखित तरीकों से भारतीय नागरिकता प्राप्त की जा सकती है:

1. **जन्म से** : यह भारत में जन्मे व्यक्तियों पर लागू होता है, तथा जन्म तिथि और माता-पिता की नागरिकता की स्थिति के आधार पर विशिष्ट शर्तें लागू होती हैं।
2. **वंश के आधार पर** : यह छात्रवृत्ति विदेश में भारतीय माता-पिता से जन्मे लोगों को दी जाती है, बशर्ते कि कानून द्वारा निर्धारित शर्तें हों।
3. **पंजीकरण द्वारा** : यह सुविधा भारतीय मूल के व्यक्तियों, या भारतीय नागरिकों से विवाहित व्यक्तियों के लिए उपलब्ध है, जो एक निर्धारित अवधि तक भारत में निवास करते रहे हैं।
4. **प्राकृतिकीकरण द्वारा** : यह उन विदेशियों के लिए उपलब्ध है जो दीर्घकालिक निवास, अच्छे आचरण और भारत में स्थायी रूप से निवास करने की मंशा (जैसा कि **तीसरी अनुसूची में निर्दिष्ट है**) जैसे मानदंडों को पूरा करते हैं।
5. **क्षेत्र के समावेश द्वारा** : ऐसे मामलों में जहां नया क्षेत्र भारत का हिस्सा बन जाता है, वहां निवासियों को नागरिकता प्रदान की जा सकती है।

भारत की विदेशी नागरिकता (ओसीआई) – 2005 सुधार

नागरिकता **(संशोधन) अधिनियम, 2005 ने ओसीआई योजना** शुरू की , जिसके अंतर्गत:

- विदेश में रहने वाले भारतीय मूल के व्यक्ति, और
- भारतीय नागरिकों या ओसीआई धारकों के विदेशी जीवनसाथियों को **अनिश्चित काल तक भारत में रहने और काम करने की अनुमति** है , हालांकि **वे मताधिकार** या **सरकारी नौकरी के लिए पात्र नहीं होंगे** ।

समाचार में हालिया घटनाक्रम: पाकिस्तानी प्रवासियों के लिए नागरिकता

संदर्भ :

एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक कदम में, **गृह मंत्रालय (2021) ने गुजरात, राजस्थान, छत्तीसगढ़, पंजाब और हरियाणा** के चुनिंदा क्षेत्रों में **जिला कलेक्टरों** को **अल्पसंख्यकों (हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई) के नागरिकता आवेदनों को** संसाधित करने की शक्तियां सौंपी हैं, जो **पाकिस्तान, अफगानिस्तान और बांग्लादेश** से पलायन कर गए हैं ।

इस आदेश के तहत हाल ही में **गुजरात में पाकिस्तान से आये 108 प्रवासियों को** भारतीय नागरिकता प्रदान की गयी ।

नागरिकता (संशोधन) नियम, 2024

भारत में नागरिकता के अद्यतन प्रावधान: सीएए 2019 और नियम 2024

हालिया संदर्भ

गृह मंत्रालय (एमएचए) ने नागरिकता (संशोधन) नियम, 2024 को अधिसूचित करके लंबे समय से प्रतीक्षित नागरिकता **(संशोधन) अधिनियम, 2019 (सीएए) को आधिकारिक रूप से लागू कर दिया है** । ये नियम पुराने **नागरिकता नियम, 2009 को अपडेट करते हैं और** संविधान के **अनुच्छेद 11** के तहत **दिसंबर 2019** में पारित सीएए के कार्यान्वयन को सक्षम करते हैं ।

नागरिकता (संशोधन) नियम, 2024 की मुख्य विशेषताएं

पात्रता मापदंड

अब नागरिकता के लिए आवेदन किया जा सकता है:

- भारतीय मूल के व्यक्ति
- भारतीय नागरिकों के जीवन-साथी
- भारतीय नागरिकों के बच्चे
- भारत से पैतृक या ऐतिहासिक संबंध रखने वाले व्यक्ति

आवेदन प्रक्रिया

- **ऑनलाइन** दाखिल किए जाएंगे और **जिला स्तरीय समिति द्वारा उनकी जांच की जाएगी** , जो उन्हें **अधिकार प्राप्त समिति को भेज देगी** ।
- भारतीय नागरिकता प्राप्त होने पर आवेदक को **अपनी पूर्व नागरिकता त्यागनी होगी।**

दस्तावेज़ीकरण में आसानी

भारत में प्रवेश के प्रमाण में अब निम्नलिखित शामिल हो सकते हैं:

- वीज़ा और दीर्घकालिक प्रवास परमिट
- आधार कार्ड
- बिजली और भूमि अभिलेख

भाषा प्रवीणता

आठवीं अनुसूची में सूचीबद्ध कम से कम एक भारतीय भाषा का कार्यसाधक ज्ञान प्रदर्शित करना होगा ।

नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2019 के बारे में

उद्देश्य

31 दिसंबर 2014 से पहले भारत में प्रवेश करने वाले **पाकिस्तान, अफगानिस्तान और बांग्लादेश** से **सताए गए धार्मिक अल्पसंख्यकों** को शीघ्र भारतीय नागरिकता प्रदान करना ।

कवर किए गए समुदाय

- **हिंदुओं**
- **सिखों**
- **बौद्धों**

- **जैन**
- **पारसियों**
- **ईसाइयों**

विदेशी अधिनियम, 1946 और **पासपोर्ट अधिनियम, 1920 के** प्रावधानों से छूट दी गई है ।

आरामदेह निवास

पात्र समूहों के लिए **प्राकृतिकीकरण** हेतु निवास की आवश्यकता 11 वर्ष से घटाकर **5 वर्ष कर दी गई।**

सीएए के समर्थन में तर्क

- **मानवीय आधार** : इस्लामी पड़ोसी देशों में उत्पीड़न का सामना कर रहे अल्पसंख्यकों को आश्रय प्रदान करता है।
- **राष्ट्रीय सुरक्षा संतुलन** : शरणार्थियों को अवैध प्रवासियों से अलग करता है, बेहतर प्रबंधन में सहायता करता है।
- **कानूनी मान्यता** : दीर्घकालिक विस्थापित व्यक्तियों को कानूनी सुरक्षा और सम्मान प्रदान करता है।

आलोचनाएँ और चिंताएँ

- **धार्मिक फ़िल्टरिंग** : अन्य देशों में सताए गए **मुसलमानों और अल्पसंख्यकों (जैसे, रोहिंग्या, अहमदिया) को इसमें शामिल नहीं किया जाता है।**
- **मनमाना कट-ऑफ तिथि** : 31 दिसंबर, 2014 में स्पष्ट औचित्य का अभाव है।
- **धर्मनिरपेक्षता पर बहस** : आलोचकों का तर्क है कि यह **अनुच्छेद 14** (कानून के समक्ष समानता) और भारत के धर्मनिरपेक्ष ढांचे को चुनौती देता है।
- **सत्यापन संबंधी मुद्दे** : धार्मिक उत्पीड़न के दावों को सत्यापित करने के लिए कोई मजबूत प्रणाली नहीं है।
- **कूटनीतिक परिणाम** : पड़ोसी देशों के साथ संबंधों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।

आगे बढ़ने का रास्ता

- **धर्म-तटस्थ दृष्टिकोण** : **सभी सताए गए अल्पसंख्यकों को** , चाहे उनका धर्म कुछ भी हो, शामिल करने के लिए सीएए में संशोधन पर विचार करें।
- **पारदर्शी सत्यापन** : उत्पीड़न के दावों को सत्यापित करने के लिए एक तंत्र विकसित करना।
- **क्रमिक समावेशन** : यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि नागरिकता प्रदान करते समय राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधी चिंताओं का ध्यान रखा जाए।
- **विधायी समीक्षा** : यह सुनिश्चित करना कि आगे कोई भी संशोधन **संवैधानिक नैतिकता** और **मूल संरचना सिद्धांत का पालन करे** ।

यूपीएससी के लिए संकल्पनात्मक <u>नोट्स</u>

- **प्राकृतिकीकरण द्वारा नागरिकता**
- **एकल नागरिकता**
- **मित्रवत एवं शत्रु एलियंस**
- **भारत के विदेशी नागरिक (ओसीआई)**
- **धर्मनिरपेक्षता और समानता (अनुच्छेद 14, 15)**
- **अनुच्छेद 11 – नागरिकता को विनियमित करने की संसद की शक्ति**

अनुसूचित एवं जनजातीय क्षेत्र (भाग X, अनुच्छेद 244-244 ए)

संविधान के अनुच्छेद 244 के तहत, भारत के कुछ भागों, जहां बड़ी संख्या में जनजातीय आबादी रहती है, को उनके हितों की रक्षा और विकास को बढ़ावा देने के लिए विशेष व्यवस्था के तहत शासित किया जाता है:

- **अनुसूचित क्षेत्र**
- ये वे क्षेत्र हैं जिनकी पहचान पर्याप्त जनजातीय समुदायों वाले क्षेत्र के रूप में की गई है।
- उन्हें पांचवीं अनुसूची के अंतर्गत स्वशासन, प्रथागत कानून और सांस्कृतिक विरासत के लिए उन्नत सुरक्षा प्राप्त है।
- राज्य के राज्यपालों को जनजातीय सलाहकार निकायों के परामर्श से स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप कानून बनाने तथा विकास की देखरेख करने का अधिकार है।
- **जनजातीय क्षेत्र**
- असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम में स्थित इन प्रदेशों का प्रबंधन छठी अनुसूची के अनुसार किया जाता है।
- प्रशासन स्वायत्त जिला और क्षेत्रीय परिषदों के माध्यम से किया जाता है, जिन्हें भूमि उपयोग, स्थानीय शासन और सामाजिक रीति-रिवाजों पर कानून बनाने का अधिकार है।
- केंद्र और संबंधित राज्य सरकारें जनजातीय समुदायों के लिए कल्याणकारी उपाय, बुनियादी ढांचे और सांस्कृतिक संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए सहयोग करती हैं।

पांचवीं अनुसूची

भारत की पांचवीं अनुसूची बड़ी जनजातीय आबादी वाले क्षेत्रों के लिए एक अनुकूलित शासन मॉडल तैयार करती है, जिसमें यह सुनिश्चित किया जाता है कि उनके अधिकारों, रीति-रिवाजों और विकास आवश्यकताओं को प्राथमिकता दी जाए।

1. अनुसूचित क्षेत्रों का नामकरण

राष्ट्रपति के प्राधिकार के तहत, कुछ जिलों, ब्लॉकों या छोटे सन्निहित क्षेत्रों को अनुसूचित क्षेत्रों के रूप में अधिसूचित किया जा सकता है, यदि वे निम्नलिखित मानदंडों को पूरा करते हैं:

- **पर्याप्त जनजातीय संकेन्द्रण**
- **संक्षिप्त भूगोल** और स्पष्ट प्रशासनिक सीमाएँ
- पड़ोसी क्षेत्रों की तुलना में **सापेक्ष आर्थिक पिछड़ापन**

2. दोहरी-स्तरीय प्रशासन

- **राज्य सरकार की भूमिका:** दैनिक कार्यकारी कार्य राज्य के पास रहते हैं।
- **राज्यपाल का विशेष अधिदेश:** राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी राज्यपाल:
  - अनुसूचित क्षेत्र में किसी भी केंद्रीय या राज्य कानून को **निलंबित या अनुकूलित करना (जनजाति सलाहकार परिषद से परामर्श के बाद)।**
  - **विशिष्ट विनियम बनाना** (राष्ट्रपति की मंजूरी के अधीन)।
  - अनुसूचित क्षेत्रों को प्रभावित करने वाले किसी भी राज्य कानून या विधेयक को **राष्ट्रपति की जांच के लिए आरक्षित रखना ।**
- **केंद्रीय पर्यवेक्षण:** राज्यपाल को इन क्षेत्रों पर एक वार्षिक रिपोर्ट राष्ट्रपति को भेजनी होगी, और संघ जनजातीय हितों की सुरक्षा के लिए निर्देश जारी कर सकता है।

3. जनजातीय सलाहकार परिषद

अनुसूचित क्षेत्रों वाले प्रत्येक राज्य को मुख्य रूप से आदिवासी विधायकों से बनी एक परिषद बनाए रखनी चाहिए। इसकी ज़िम्मेदारियों में शामिल हैं:

- कल्याण एवं विकास योजनाओं पर सलाह देना
- कानूनों और विनियमों में संशोधन की सिफारिश करना

4. प्रमुख कानून और आयोग

- **पेसा (1996):** पंचायती राज संस्थाओं को अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तारित करता है, ग्राम सभाओं को संसाधन प्रबंधन और स्थानीय नियोजन पर अधिकार प्रदान करता है।
- **अनुसूचित जनजाति कल्याण आयोग (अनुच्छेद 339):** राष्ट्रपति प्रशासन और जनजातीय कल्याण की समीक्षा के लिए आवधिक आयोगों (प्रारंभ में और प्रत्येक दस वर्ष में) की नियुक्ति करता है।
- **अनुसूची संशोधन:** पांचवीं या छठी अनुसूची में परिवर्तन, अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संवैधानिक संशोधन प्रक्रिया को लागू किए बिना, सरल संसदीय आदेश द्वारा किया जा सकता है।

5. वित्तपोषण एवं विकास तंत्र

- **जनजातीय उप-योजना/आईटीडीपी:** योजना परिव्यय (केन्द्रीय और राज्य दोनों) का एक अनुपात जनजातीय जनसंख्या के हिस्से के अनुरूप निर्धारित किया जाता है।
- **केंद्र प्रायोजित योजनाएं:** उदाहरणों में एकलव्य आवासीय विद्यालय और वनबंधु कल्याण योजना शामिल हैं, जिनका उद्देश्य शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, आजीविका और बुनियादी ढांचे पर केंद्रित है।
- **वन अधिकार अधिनियम (2006): यह अधिनियम** वन में रहने वाली जनजातियों को भूमि और लघु वनोपज पर स्वामित्व और उपयोगकर्ता अधिकार प्रदान करता है।

6. लगातार बाधाएँ

- **अपर्याप्त 3एफ:** धन, कार्यों और पदाधिकारियों की कमी, पेसा के तहत ग्राम सभा के अधिकार को कमजोर करती है।
- **प्रशासनिक प्रतिरोध:** नौकरशाही की जड़ता अक्सर स्थानीय निर्णयों को नकार देती है, विशेष रूप से भूमि और संसाधनों के उपयोग के मामले में।
- **जागरूकता की कमी:** कई आदिवासी नागरिक PESA और संबंधित कानूनों के तहत अपने कानूनी अधिकारों के बारे में अनभिज्ञ हैं।
- **वैधानिक संघर्ष:** राज्य के कानून कभी-कभी PESA की भावना के साथ टकराते हैं, जबकि बाद के राष्ट्रीय कानून (जैसे, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 2013) प्रावधानों की नकल करते हैं और भ्रम पैदा करते हैं।

7. आगे का रास्ता

- **क्षमता निर्माण:** पंचायत और परिषद के सदस्यों को अपनी शक्तियों का आत्मविश्वासपूर्वक प्रयोग करने के लिए प्रशिक्षित करना।
- **कानूनी साक्षरता अभियान:** पेसा, एफआरए और ग्राम सभा कार्यों पर समुदायों और अधिकारियों को शिक्षित करें।
- **अधिकार-आधारित वकालत:** भूमि अधिग्रहण की निगरानी करने और स्वतंत्र, पूर्व और सूचित सहमति सुनिश्चित करने में गैर सरकारी संगठनों और नागरिक समाज को समर्थन प्रदान करना।
- **वैधानिक संरेखण:** राज्यों से आग्रह किया जाए कि वे अपने कानूनों को PESA के साथ सुसंगत बनाएं तथा संबंधित कानूनों (जैसे, भारतीय वन अधिनियम) में संशोधन करके जल निकायों, वनों और खनिजों का नियंत्रण ग्राम सभाओं को सौंपें।

छठी अनुसूची

छठी अनुसूची असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के जनजातीय क्षेत्रों में स्वायत्त शासन संरचनाएं स्थापित करती है, जो उनकी विशिष्ट सांस्कृतिक परंपराओं को प्रतिबिंबित करती है।

1. विशेष स्वायत्तता का औचित्य

इन पूर्वोत्तर राज्यों में जनजातियों ने बड़े पैमाने पर अद्वितीय सामाजिक प्रणालियों और प्रथागत कानूनों को बरकरार रखा है, जिससे उनकी विरासत का सम्मान करने वाली स्व-शासन व्यवस्था की आवश्यकता हुई है।

2. स्वायत्त जिले और क्षेत्रीय परिषदें

- **संवैधानिक व्यवस्था:** राज्यपाल किसी राज्य के भीतर स्वायत्त जिलों या क्षेत्रों को परिभाषित या पुनर्गठित कर सकता है।

- **परिषद संरचना:** प्रत्येक स्वायत्त जिला परिषद (ADC) और क्षेत्रीय परिषद में 30 सदस्य होते हैं - 26 निर्वाचित (पांच वर्ष का कार्यकाल) और 4 राज्यपाल द्वारा नामित।

3. शक्तियां एवं कार्य

1. **विधायी:** परिषदें भूमि प्रबंधन, उत्तराधिकार, ग्राम प्रशासन और सामाजिक रीति-रिवाजों जैसे मामलों पर कानून बना सकती हैं - राज्यपाल की सहमति के अधीन।
2. **न्यायिक:** वे जनजातीय विवादों के निपटारे के लिए निचली अदालतें स्थापित कर सकते हैं, जिनमें अपील की सीमा राज्यपाल द्वारा निर्धारित की जाएगी।
3. **कार्यपालिका एवं विकास:** परिषदें स्कूलों, स्वास्थ्य केन्द्रों, सड़कों और स्थानीय वाणिज्य की देखरेख करती हैं; वे गैर-आदिवासी उद्यमों को विनियमित कर सकती हैं और कुछ कर एकत्र कर सकती हैं।
4. **चयनात्मक कानून का अनुप्रयोग:** केन्द्रीय या राज्य कानून स्वचालित रूप से इन क्षेत्रों पर लागू नहीं होते, जब तक कि जिला परिषद अनुमति न दे या राज्यपाल अनुकूलन निर्धारित न कर दे।

4. राज्यपाल की निगरानी

- जांच आयोग बुलाने, परिषदों को भंग करने की सिफारिश करने तथा सीमा परिवर्तन की निगरानी करने की शक्ति।
- परिषदों को राज्यपाल की अधिसूचनाओं द्वारा परिभाषित मापदंडों के भीतर काम करना होगा।

5. आवर्ती चुनौतियाँ

- **वित्तीय बाधाएं:** एडीसी अक्सर अनियमित राज्य अनुदान पर निर्भर रहते हैं, जिससे दीर्घकालिक योजना बनाने में बाधा उत्पन्न होती है।
- **राज्यपाल की श्रेष्ठता:** अत्यधिक केंद्रीय निगरानी वास्तविक स्वायत्तता को बाधित कर सकती है।
- **असमान शक्तियां:** विभिन्न परिषदों को सौंपे गए विभागों और कार्यों में असमानताएं शिकायतों को बढ़ाती हैं।
- **शासन संबंधी खामियां:** परिषद के भंग होने के बाद नए चुनाव कराने के लिए कोई निश्चित समय-सीमा नहीं है।
- **संस्थागत हस्तांतरण में विलंब:** राज्य की अनिच्छा के कारण कभी-कभी विभागों या कर्मचारियों का स्थानांतरण अवरुद्ध हो जाता है।
- **प्रतिनिधित्व की कमी:** महिलाओं और छोटे जनजातीय समूहों का परिषद सदस्यता में प्रतिनिधित्व कम है।

6. स्वायत्तता को मजबूत करने के लिए सिफारिशें

- **स्थिर वित्त:** राज्य वित्त आयोगों के माध्यम से एडीसी को नियमित, सूत्र-आधारित स्थानान्तरण का आदेश देना।
- **शीघ्र पुनः चुनाव:** विघटन के बाद नए चुनाव कराने के लिए छह महीने की सीमा लागू करें।
- **जमीनी स्तर पर समावेशन:** छठी अनुसूची के अंतर्गत ग्राम स्तरीय जनजातीय निकायों को कानूनी मान्यता प्रदान करना।
- **लिंग एवं अल्पसंख्यक:** परिषदों में विविध आवाजों को सुनिश्चित करने के लिए महिलाओं और छोटी जनजातियों के लिए सीटें आरक्षित करें।

ये सुधार संवैधानिक मंशा और जमीनी हकीकत के बीच की खाई को पाट सकते हैं, तथा जनजातीय समुदायों को अपने मामलों का प्रबंधन स्वयं करने तथा अपनी सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने के लिए सशक्त बना सकते हैं।

भारत के संघीय ढांचे में मुद्दों और चुनौतियों की पड़ताल

भारतीय संघवाद: "अर्ध-संघीय" मॉडल

भारत का संविधान दो-स्तरीय सरकार - संघ और राज्य - की स्थापना करता है, जिसमें साझा प्राधिकार और केंद्रीय प्रभुत्व का एक अनूठा संतुलन होता है, जिसे अक्सर "अर्ध-संघीय" या "संघीय स्वरुप" कहा जाता है।

1. आधार और तुलना

- **संघवाद की परिभाषा:** सत्ता राष्ट्रीय केंद्र और घटक इकाइयों के बीच विभाजित होती है।
- **भारत बनाम अमेरिका:**
  - **संयुक्त राज्य अमेरिका:** संघवाद का उदय संप्रभु राज्यों द्वारा विशिष्ट शक्तियां सौंपने से हुआ।
  - **भारत:** पहले एक एकात्मक इकाई, जिसके प्रांतों को बाद में राज्य का दर्जा दिया गया और जिम्मेदारियां सौंपी गईं।

2. मुख्य विशेषताएं

1. **दोहरी राजनीति:** अलग-अलग संघ और राज्य सरकारें, जिनमें से प्रत्येक की अपनी कार्यपालिका और विधायिका होती है।
2. **सातवीं अनुसूची: इसमें** केवल केंद्र, केवल राज्य और समवर्ती विषयों को स्पष्ट रूप से सूचीबद्ध किया गया है।
3. **लिखित एवं सर्वोच्च संविधान:** केवल निर्धारित प्रक्रियाओं के माध्यम से संशोधन योग्य; सभी कानूनों को अनुरूप होना चाहिए।
4. **कठोरता:** संशोधनों के लिए विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है - स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए।
5. **न्यायिक मध्यस्थ:** एक स्वतंत्र सर्वोच्च न्यायालय अंतर-सरकारी विवादों का निपटारा करता है।
6. **द्विसदनीय विधायिका:** लोकसभा (लोगों का सदन) और राज्यसभा (राज्यों का सदन)।

3. एकात्मक तत्व

- **एकल संविधान एवं नागरिकता:** सभी के लिए एक कानूनी ढांचा और राष्ट्रीयता।
- **एकीकृत न्यायपालिका:** एक एकीकृत न्यायालय प्रणाली, जिसके शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय हो।
- **आपातकालीन प्रावधान:** संकट की स्थिति में, केंद्र राज्य के मामलों पर कानून बना सकता है और यहां तक कि राज्य शासन का कार्यभार भी अपने हाथ में ले सकता है।
- **अखिल भारतीय सेवाएँ:** आईएएस, आईपीएस आदि, जो केंद्र द्वारा नियुक्त होते हैं लेकिन राज्यों में सेवा करते हैं, जिससे प्रशासनिक सुसंगतता सुनिश्चित होती है।
- **राज्यपाल की भूमिका:** केंद्र द्वारा नियुक्त व्यक्ति जो राज्य के विधेयकों को रोक सकता है या आरक्षित रख सकता है।
- **प्रादेशिक नियंत्रण:** संसद राज्य की सहमति के बिना राज्य की सीमाओं का पुनर्गठन कर सकती है।
- **राजकोषीय केंद्रीकरण:** प्रमुख कर और राजस्व स्रोत संघ के पास हैं; राज्य हस्तांतरण और अनुदान पर निर्भर हैं।

4. उभरते मुद्दे

1. **राज्य निर्माण शक्तियां:** नए राज्यों के गठन का केंद्र का अधिकार क्षेत्रीय स्वायत्तता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।
2. **राज्यपाल का विवेकाधिकार:** इसे राजनीतिक हस्तक्षेप का एक साधन माना जाता है।
3. **राज्य सभा असंतुलन:** सीटें जनसंख्या के आधार पर आवंटित की जाती हैं, प्रत्येक राज्य के लिए समान नहीं।

4. **सेवा संवर्ग नियंत्रण:** यह नौकरशाही के प्रबंधन में राज्य के लचीलेपन को सीमित करता है।
5. **आपातकालीन दुरुपयोग:** अत्यधिक आवेदन का इतिहास विश्वास को कमजोर करता है।
6. **केंद्रीय निरीक्षण तंत्र:** चुनाव नियंत्रण, लेखा परीक्षा और विधेयक वीटो राज्य की पहल को बाधित कर सकते हैं।

अतिरिक्त कमियां:

- **समन्वय अंतराल:** केन्द्रीय और राज्य योजनाएं कभी-कभी ओवरलैप या डुप्लिकेट होती हैं।
- **क्षेत्राधिकार संबंधी टकराव:** शिक्षा जैसे साझा विषय टकराव उत्पन्न करते हैं।
- **शीर्ष-स्तरीय योजना:** राष्ट्रीय योजनाएं स्थानीय प्राथमिकताओं की अनदेखी कर सकती हैं।
- **संसाधन असंतुलन:** असमान राजकोषीय शक्तियां निर्भरता को जन्म देती हैं।
- **राजनीतिक गतिरोध:** दलीय प्रतिद्वंद्विता सहकारी शासन को बाधित करती है।

5. नोट्स

संघ की अपनी विशिष्टता · अर्ध-संघवाद · सातवीं अनुसूची · शक्तियों का विभाजन · सहकारी संघवाद · राज्य स्वायत्तता · वित्तीय हस्तांतरण · अंतर्राज्यीय विवाद

असममित संघवाद

1. तर्क

- यह स्वीकार किया गया कि कुछ क्षेत्रों को विशेष अधिकार या स्वायत्तता की आवश्यकता है।
- ऐतिहासिक, सांस्कृतिक या आर्थिक वास्तविकताओं के अनुरूप शासन को ढालना (उदाहरणार्थ, पूर्वोत्तर के लिए अनुच्छेद 371)।

2. लाभ

- **विविधता के माध्यम से एकता:** अलगाववादी दबावों को कम करती है।
- **सामाजिक न्याय:** दीर्घकालिक नुकसान की भरपाई करता है।
- **बेहतर प्रतिनिधित्व:** अल्पसंख्यक क्षेत्रों को मजबूत आवाज मिलेगी।
- **सांस्कृतिक संरक्षण:** विशिष्ट परंपराओं की सुरक्षा करता है।

3. चुनौतियाँ

- **कथित असमानता:** अन्य राज्य विशेष शक्तियों को अनुचित मान सकते हैं।
- **जटिल प्रशासन:** अनेक मॉडल नीति संरेखण को जटिल बना देते हैं।
- **राजनीतिक दुरुपयोग का खतरा:** असाधारण प्रावधानों का शोषण किया जा सकता है।

केंद्र-राज्य संबंध

1. संवैधानिक ढांचा

- **अनुच्छेद 263:** परामर्श के लिए अंतर-राज्य परिषद की अनुमति देता है।
- **अनुच्छेद 246 और 254:** विधायी विषयों को विभाजित करना और विसंगतियों को दूर करना।
- **अनुच्छेद 356:** विशिष्ट परिस्थितियों में राष्ट्रपति शासन की अनुमति देता है।

2. सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक फैसले

- **एसआर बोम्मई बनाम भारत संघ (1994):** राष्ट्रपति शासन के मनमाने उपयोग पर अंकुश लगाया गया।
- **बीपी सिंघल बनाम भारत संघ (2010):** आपातकालीन उद्घोषणाओं की विधायी जांच को मजबूत करता है।
- **कुलदीप नायर बनाम भारत संघ (2006):** राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों को स्पष्ट करता है।

3. समकालीन फ्लैशपॉइंट

- **अनुच्छेद 356 अति प्रयोग**
- **राज्यपाल बनाम निर्वाचित मंत्रालय**
- **समवर्ती सूची घर्षण**
- **राजस्व बंटवारे से संबंधित विवाद**
- **अखिल भारतीय सेवा प्रबंधन**

सुधार के रास्ते: आयोग की सिफारिशें

आयोग	प्रमुख सुझाव
प्रथम प्रशासनिक सुधार (एआरसी)	• एक स्थायी अंतर-राज्य परिषद का गठन करें (अनुच्छेद 263) • अनुभवी राज्यपालों की नियुक्ति करें • राज्यों को अधिक कार्य सौंपें • राज्य की वित्तीय स्वायत्तता बढ़ाएं
सरकारिया आयोग	• आईएससी को एक वैधानिक निकाय बनाएं • अनुच्छेद 356 के उपयोग को प्रतिबंधित करें • अखिल भारतीय सेवाओं को मजबूत करें • राज्य विधेयकों पर पारदर्शिता में सुधार करें • क्षेत्रीय परिषदों को पुनर्जीवित करें
पुंछी आयोग	• राज्यपाल की विवेकाधीन सीमाओं को स्पष्ट करें • त्रिशंकु विधानसभाओं के लिए दिशानिर्देश • स्थायी, घूर्णनशील वित्त आयोग • राज्यों के बीच राज्यसभा की सीटों को समान करें
NCRWVC	• अंतर-राज्यीय व्यापार और वाणिज्य आयोग (अनुच्छेद 307) • राष्ट्रपति शासन लागू करने से पहले बातचीत का आदेश • समवर्ती सूची की सीमाओं को स्पष्ट रूप से परिभाषित करें

नीति आयोग एवं सहकारी संघवाद

वर्ष 2015 से नीति आयोग ने "टीम इंडिया" दृष्टिकोण को आगे बढ़ाया है - राष्ट्रीय नियोजन में राज्यों को शामिल करना, केंद्र प्रायोजित योजनाओं की निगरानी करना, तथा रैंकिंग और सर्वोत्तम अभ्यास साझाकरण के माध्यम से सहकारी और प्रतिस्पर्धी संघवाद को बढ़ावा देना।

अंतर्राज्यीय नदी जल विवाद

कानूनी ढांचा

- **अनुच्छेद 262:** संसद को न्यायाधिकरण बनाने का अधिकार देता है तथा न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को समाप्त करता है।
- **नदी बोर्ड अधिनियम, 1956** और **अंतर्राज्यीय जल विवाद अधिनियम, 1956:** विवाद निपटान का प्रावधान।

मूल कारणों

- जल आवंटन पर राजनीतिक रुख
- राज्य विभाजन के बाद नई सीमाएं
- तीव्र अभाव एवं प्रदूषण
- ऐतिहासिक दावे बनाम आधुनिक मांगें

समाधान बाधाएं

- केंद्र और राज्यों के बीच अधिकार क्षेत्र का ओवरलैप
- कमजोर प्रवर्तन के साथ धीमी गति से न्यायाधिकरण के निर्णय
- अपील के मार्ग पर कानूनी अस्पष्टता
- पारिस्थितिकी नियोजन के बिना इंजीनियरिंग समाधानों पर अत्यधिक निर्भरता

सुझाए गए सुधार

- न्यायाधिकरण के निर्णयों के लिए प्रवर्तनीय तंत्र बनाना
- अपील/कार्यान्वयन पर सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देश
- बेसिन-स्तरीय एकीकृत जल प्रबंधन प्राधिकरण

- सूखे की स्थिति के लिए पूर्व-सहमत साझाकरण सूत्र
- जल को समवर्ती सूची में शामिल करने पर विचार करें

छोटे राज्यों की मांग

ड्राइवरों

- कम प्रतिनिधित्व महसूस करने वाले क्षेत्र (जैसे, विदर्भ)
- विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान (जैसे, गोरखालैंड)
- कथित प्रशासनिक उपेक्षा
- क्षेत्रीय भावनाओं के इर्द-गिर्द राजनीतिक लामबंदी
- बड़े राज्यों के भीतर आर्थिक असमानताएँ

पक्ष विपक्ष

- **लाभ:** उन्नत स्थानीय शासन, अनुकूलित नीतियां, कम प्रशासनिक व्यय।
- **विपक्ष:** स्टार्टअप लागत, नेतृत्व घाटा, संघ पर वित्तीय निर्भरता, बुनियादी ढांचे में अंतराल।

आगे की राह

- स्पष्ट व्यवहार्यता मानदंड (जनसंख्या, संसाधन, भूगोल) परिभाषित करें।
- गहन सामाजिक-आर्थिक प्रभाव अध्ययन आयोजित करें।
- विकेंद्रीकरण को प्राथमिकता दें और विकल्प के रूप में स्थानीय निकायों को सशक्त बनाएं।
- किसी भी नए राज्य के लिए मजबूत वित्तीय योजना सुनिश्चित करना।
- साझा चुनौतियों पर अंतर-राज्यीय सहयोग को बढ़ावा देना।

चर्चा का विषय: अनुच्छेद 370

- **पृष्ठभूमि:** जम्मू-कश्मीर को "अस्थायी" विशेष दर्जा दिया गया।
- **2019 निरसन:** राष्ट्रपति के आदेश से अनुच्छेद 370 को निरस्त कर दिया गया, जिससे जम्मू-कश्मीर दो केंद्र शासित प्रदेशों में विभाजित हो गया।
- **सुप्रीम कोर्ट के निर्देश:**
  - राज्य की सहमति के बिना निरस्त करने के केंद्र के अधिकार को बरकरार रखा जाएगा।
  - 30 सितंबर 2024 तक विधानसभा चुनाव आयोजित करें।
  - पूर्ण राज्य का दर्जा शीघ्र बहाल किया जाए।
  - मानव अधिकार निवारण के लिए सत्य एवं सुलह आयोग की स्थापना करें।

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली शासन (संशोधन) अधिनियम, 2023

प्रसंग

- दिल्ली: एक राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र जिसमें विधान सभा है लेकिन सीमित अधिकार क्षेत्र है।
- 2023 सुप्रीम कोर्ट का फैसला: दिल्ली सरकार पुलिस, भूमि और सार्वजनिक व्यवस्था को छोड़कर अधिकांश सेवाओं को नियंत्रित करेगी।

मुख्य परिवर्तन

- **राष्ट्रीय राजधानी सिविल सेवा प्राधिकरण:** उपराज्यपाल (एलजी) को सलाह देता है।
- **एलजी विवेकाधिकार:** परिषद की सिफारिशों को स्वीकार/अस्वीकार करने की शक्ति का विस्तार किया गया।
- **अधिकारी स्थानांतरण:** नियुक्तियों में केंद्र को अधिक अधिकार प्राप्त।
- **मामलों का रूटिंग:** एलजी अधिसूचना की आवश्यकता वाली परिभाषित श्रेणियां।

आलोचना एवं उपाय

- **अतिकेंद्रीकरण:** निर्वाचित सरकार के अधिकार को कमजोर करता है।

- **अस्पष्टता:** "विवादास्पद" जैसे शब्द अपरिभाषित रह गए हैं।
- **वैश्विक सर्वोत्तम अभ्यास:** अन्यत्र राजधानी-शहर प्रशासन मॉडल का अध्ययन करें।
- **नगर निगम सुदृढ़ीकरण:** स्थानीय निकायों को दो-स्तरीय व्यवस्था में सशक्त बनाना।

नोट:- : एकात्मक संविधान, संघवाद, सहकारी संघवाद, वित्तीय विकेंद्रीकरण, क्षेत्रीय स्वायत्तता

पिछले वर्षों के प्रश्न

प्रश्न: 101वें संविधान संशोधन अधिनियम का महत्व बताएं। यह किस हद तक संघवाद की समायोजनात्मक भावना को दर्शाता है? - 2023

प्रश्न: भारत में राष्ट्रीय राजनीतिक दल केंद्रीकरण के पक्ष में हैं, जबकि क्षेत्रीय दल राज्य स्वायत्तता के पक्ष में हैं।" टिप्पणी करें। - 2022

प्रश्न: आपके विचार में सहयोग, प्रतिस्पर्धा और टकराव ने भारत में संघ की प्रकृति को किस हद तक आकार दिया है? अपने उत्तर को पुष्ट करने के लिए कुछ हालिया उदाहरण दीजिए। - 2020

प्रश्न: न्यायालयों द्वारा विधायी शक्तियों के वितरण के संबंध में विवादास्पद मुद्दों के समाधान से, 'संघीय सर्वोच्चता का सिद्धांत' और 'सामंजस्यपूर्ण निर्माण' उभर कर सामने आए हैं। व्याख्या करें।- 2019

प्रश्न: हाल के वर्षों में सहकारी संघवाद की अवधारणा पर अधिक जोर दिया गया है। मौजूदा ढांचे में कमियों को उजागर करें और बताएं कि सहकारी संघवाद किस हद तक इन कमियों को दूर करेगा। - 2015

प्रश्न: यद्यपि हमारे संविधान में संघीय सिद्धांत प्रमुख है और यह सिद्धांत इसकी मूलभूत विशेषताओं में से एक है, लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि भारतीय संविधान के तहत संघवाद एक मजबूत केंद्र के पक्ष में है, जो एक ऐसी विशेषता है जो मजबूत संघवाद की अवधारणा के विरुद्ध है। चर्चा करें- 2014

प्रश्न: अंतर-राज्यीय जल विवादों को हल करने के लिए संवैधानिक तंत्र समस्याओं को संबोधित करने और हल करने में विफल रहे हैं। क्या विफलता संरचनात्मक या प्रक्रिया अपर्याप्तता या दोनों के कारण है? चर्चा करें। - 2013

YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

शक्ति पृथक्करण और कार्यात्मक ओवरलैपिंग

भारत की लोकतांत्रिक प्रणाली शक्तियों के पृथक्करण के विचार को दर्शाती है, भले ही इसका स्पष्ट उल्लेख न किया गया हो। मोंटेस्क्यू द्वारा समर्थित यह सिद्धांत सरकार को विधायी, कार्यकारी और न्यायिक शाखाओं में विभाजित करता है ताकि किसी एक समूह को बहुत अधिक शक्ति रखने से रोका जा सके। जबकि भारत का संविधान इन शाखाओं के बीच कुछ ओवरलैप की अनुमति देता है, यह जाँच और संतुलन के साथ एक जटिल परस्पर क्रिया भी सुनिश्चित करता है।

1. संवैधानिक आधार

1.1 अनुच्छेद 50: न्यायिक स्वतंत्रता

"राज्य को राज्य की सार्वजनिक सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने के लिए कदम उठाने होंगे।"

- भारत सरकार अधिनियम, 1935 से उत्पन्न।
- अलग-अलग कैडर, वेतनमान और प्रशासनिक नियंत्रण की स्थापना हुई: उच्च न्यायालयों के अंतर्गत अधीनस्थ न्यायाधीश (अनुच्छेद 233-237), राज्य सरकारों के अंतर्गत कार्यकारी मजिस्ट्रेट।

1.2 अनुच्छेद 122 और 212: विधायी अंतिमता

- **अनुच्छेद 122** न्यायालयों को संसद की कार्यवाही की जांच करने से रोकता है।
- **अनुच्छेद 212** राज्य विधानमंडलों को भी यही संरक्षण प्रदान करता है।
- यह "भाषण-और-बहस" प्रतिरक्षा सुनिश्चित करता है: सदन में सांसदों/विधायकों द्वारा कही गई बातों या कार्यों को कोई न्यायिक चुनौती नहीं दी जाती।

1.3 अनुच्छेद 105 और 194: संसदीय विशेषाधिकार

- प्रत्येक सदन को अवमानना के लिए दंडित करने, उसकी कार्यवाही को विनियमित करने और सदस्यों की सुरक्षा करने की शक्ति प्रदान करें।
- संसदीय विशेषाधिकार अधिनियम, 1952 इन अधिकारों को संहिताबद्ध करता है - जो संभावित टकराव का बिन्दु है, यदि विशेषाधिकार का दावा मुक्त भाषण या न्यायपालिका की अवमानना शक्तियों पर अतिक्रमण करता है।

2. अंतर्राष्ट्रीय मॉडल

नमूना	विशेषताएँ	उदाहरण
सख्त अलगाव	कोई कार्मिक क्रॉसओवर नहीं; स्वतंत्र बजट	यूएसए
संसदीय संलयन	कार्यपालिका विधायिका से निकलती है; न्यायिक समीक्षा	ब्रिटेन, कनाडा, न्यूज़ीलैंड
अर्ध-संघीय संकर	संघीय-एकात्मक विशेषताओं का मिश्रण; अंतर-शाखा ओवरलैप	भारत, दक्षिण अफ्रीका

भारत बीच में बैठा है: मंत्रिमंडल संसद से लिया गया है, लेकिन न्यायालयों के पास सशक्त समीक्षा शक्तियां हैं।

3. कार्यकारी-विधायी अंतर्क्रिया

3.1 राष्ट्रपति एवं संसद

- **आहूत करना/सत्रावलंबन करना/विघटित करना** (अनुच्छेद 85): राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सलाह पर सत्र बुला सकता है या समाप्त कर सकता है।
- **अध्यादेश** (अनुच्छेद 123): जब संसद सत्र में नहीं होती है, तो राष्ट्रपति कानून लागू कर सकते हैं - पुनः सभा के छह सप्ताह के भीतर अनुसमर्थन के अधीन।

3.2 मंत्रिपरिषद

- **सामूहिक उत्तरदायित्व** (अनुच्छेद 75): मंत्रिमंडल लोकसभा के प्रति जवाबदेह होगा।
- **मंत्रिस्तरीय द्वैधता** : मंत्रियों को संसद का सदस्य होना चाहिए (या बनना चाहिए) - नीति-निर्माण और वैधानिक कार्य दोनों को संभालना चाहिए।

3.3 प्रत्यायोजित विधान

- **सक्षमकारी अधिनियम** : संसद अक्सर व्यापक कानून पारित करती है और मंत्रालयों को नियमों, विनियमों या अधिसूचनाओं के माध्यम से विवरण भरने का अधिकार देती है।
- **संसदीय जांच** : प्रत्यायोजित दस्तावेजों को प्रस्तावों के माध्यम से रद्द किया जा सकता है या संयुक्त समितियों को भेजा जा सकता है।

3.4 विधायी नियंत्रण

- **प्रश्नकाल, शून्यकाल एवं वाद-विवाद** : सांसदों के प्रति प्रत्यक्ष कार्यकारी जवाबदेही।

- **अनुमान एवं लोक लेखा समितियां** : सरकारी व्यय की सीएजी समर्थित जांच (अनुच्छेद 149-151)।

4. न्यायपालिका-विधानसभा इंटरफेस

4.1 न्यायिक समीक्षा

- **अनुच्छेद 13** : मूल अधिकारों से असंगत कानून शून्य हैं।
- **मूल संरचना** : *केशवानंद भारती* (1973) ने कहा कि संसद संविधान के मूल सिद्धांतों में परिवर्तन नहीं कर सकती।
- **ऐतिहासिक मामले** :
  - *गोलकनाथ* (1967): संशोधन द्वारा अधिकारों में कटौती नहीं की जाएगी।
  - *मिनर्वा मिल्स* (1980): संतुलित निर्देशक सिद्धांत और अधिकार।
  - *आई.आर. कोलोहो* (2007): 42वें संशोधन से परे समवर्ती सूची के कानून अमान्य।

4.2 जनहित याचिका

- वास्तविक सार्वजनिक शिकायतों के लिए न्यायालयों के द्वार खोलता है - जिससे नीतिगत नवाचारों (पर्यावरण, शिक्षा, जेल सुधार) को बढ़ावा मिलता है।
- जहां विधायिका मौन रहती है, वहां न्यायालय बाध्यकारी दिशानिर्देश जारी करते हैं (उदाहरणार्थ, शिक्षा का अधिकार नियम)।

4.3 संसदीय प्रतिरोध

- संकीर्ण लोकस स्टैंडाई नियमों के माध्यम से जनहित याचिकाओं को प्रतिबंधित करने का प्रयास।
- "सेवा मामलों" और "नीतिगत निर्णयों" में न्यायिक समीक्षा को सीमित करने के लिए विधेयक प्रस्तावित किए गए हैं।

5. न्यायपालिका-कार्यपालिका अंतःक्रिया

5.1 न्यायिक नियुक्तियाँ

- **कॉलेजियम प्रणाली** : सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्तियों की सिफारिश करते हैं; राष्ट्रपति औपचारिक रूप से अनुमोदन करते हैं।
- **एनजेएसी प्रकरण** : मिश्रित आयोग बनाने वाला 99वां संशोधन (2014) *चौथे न्यायाधीश मामले* (2015) में खारिज कर दिया गया, तथा कॉलेजियम की पुष्टि की गई।

5.2 न्यायाधिकरण एवं अर्ध-न्यायिक निकाय

- विभिन्न क़ानूनों (आयकर, प्रतिस्पर्धा, आदि) के अंतर्गत बनाया गया।
- स्वतंत्रता पर बहस - कुछ में नौकरशाहों की नियुक्ति, अलगाव की चिंता को बढ़ाती है।

5.3 कार्यकारी प्रतिरक्षा

- **अनुच्छेद 361** : राष्ट्रपति और राज्यपालों को आधिकारिक कार्यों के लिए आपराधिक या सिविल कार्यवाही से छूट।
- **दया याचिकाएँ** (अनुच्छेद 72, 161): दण्ड को कम करने या क्षमा करने की विशेष कार्यकारी शक्ति।

5.4 अवमानना क्षेत्राधिकार

- **न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971** : न्यायालय ऐसे भाषण या प्रकाशन को दंडित कर सकते हैं जो अपमानजनक या बाधा उत्पन्न करता हो।
- यदि इसका गलत प्रयोग किया गया तो सार्वजनिक बहस ठप्प पड़ सकती है।

6. सीमाओं को मजबूत करना

क्षेत्र	सुधार विचार
कार्यपालिका-विधानमंडल	अध्यादेश के उपयोग को सीमित करें; सूर्यास्त खंडों को अनिवार्य करें; नियमों की समिति समीक्षा को बढ़ाएं।
विधायिका-न्यायपालिका	जनहित याचिका मापदंडों को संहिताबद्ध करना; संयुक्त कानून-न्यायालय कार्यशालाएं स्थापित करना; बेंच विविधता का विस्तार करना।
न्यायपालिका-कार्यपालिका	नियुक्तियों में इनपुट का विस्तार करना; न्यायाधिकरणों के लिए कार्यकाल/अवधि तय करना; प्रतिरक्षा के दायरे की समीक्षा करना।

7. व्यवहार में जाँच और संतुलन

1. **महाभियोग शक्ति** (अनुच्छेद 61) बनाम **न्यायिक समीक्षा** (अनुच्छेद 13)

2. **संसदीय प्रतिबंध** बनाम **न्यायालयी प्रतिबंध** (जैसे, असंवैधानिक क़ानूनों को अमान्य करना)
3. **सीएजी रिपोर्ट** कार्यपालिका को पीएसी के समक्ष व्यय को उचित ठहराने के लिए बाध्य करती है।
4. दलबदल विरोधी मामले में **स्पीकर का निर्णय अंतिम निर्णय के लिए पुनः न्यायालय को भेजा जाता है।**

8. समन्वय बढ़ाना

- **संस्थागत मंच** : नियमित त्रि-शाखा सम्मेलन (न्यायिक सम्मेलन, संसदीय रिट्रीट)।
- **कार्मिक आदान-प्रदान** : सचिवालय अधिकारियों की न्यायालयों में नियुक्ति; न्यायाधीशों की सिविल सेवा अकादमियों में विजिटिंग फैकल्टी के रूप में नियुक्ति।
- **समझौता ज्ञापन** : संयुक्त प्रशिक्षण, डेटा-साझाकरण और संकट प्रबंधन के लिए प्रक्रियाएं परिभाषित करना।

निष्कर्ष

भारत की प्रणाली में पृथक्करण और सहयोग का मिश्रण है। प्रत्यायोजित कानून की निगरानी को कड़ा करके, न्यायिक साधनों को परिष्कृत करके, प्रतिरक्षा को स्पष्ट करके और औपचारिक संवाद चैनलों का निर्माण करके, हम प्रत्येक शाखा की स्वतंत्रता को संरक्षित कर सकते हैं और साथ ही यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि वे लोकतंत्र और कानून के शासन को बनाए रखने के लिए मिलकर काम करें।

पिछले वर्ष के प्रश्न

प्रश्न: न्यायिक विधान भारतीय संविधान में वर्णित शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के विपरीत है। इस संदर्भ में कार्यकारी अधिकारियों को दिशा-निर्देश जारी करने की प्रार्थना करते हुए बड़ी संख्या में जनहित याचिकाएँ दायर करना उचित है। - 2020

प्रश्न: क्या आपको लगता है कि भारत का संविधान शक्तियों के सख्त पृथक्करण के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करता है, बल्कि यह 'नियंत्रण और संतुलन' के सिद्धांत पर आधारित है? व्याख्या करें- 2019

प्रश्न: अध्यादेशों का सहारा लेने से हमेशा शक्तियों के पृथक्करण सिद्धांत की भावना के उल्लंघन पर चिंता जताई गई है। अध्यादेश जारी करने की शक्ति को उचित ठहराने वाले तर्कों पर ध्यान देते हुए, विश्लेषण करें कि क्या इस मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों ने इस शक्ति का सहारा लेने को और अधिक सुविधाजनक बनाया है। क्या अध्यादेश जारी करने की शक्ति को निरस्त कर दिया जाना चाहिए? - 2015

प्रश्न: 'मूलभूत संरचना' सिद्धांत के आविष्कार से लेकर न्यायपालिका ने यह सुनिश्चित करने में अत्यधिक सक्रिय भूमिका निभाई है कि भारत एक संपन्न लोकतंत्र के रूप में विकसित हो। कथन के आलोक में, लोकतंत्र के आदर्शों को प्राप्त करने में न्यायिक सक्रियता द्वारा निभाई गई भूमिका का मूल्यांकन करें। - 2014

प्रश्न: भारत का सर्वोच्च न्यायालय संविधान में संशोधन करने में संसद की मनमानी शक्ति पर नियंत्रण रखता है। आलोचनात्मक चर्चा करें। - 2013

संसद और राज्य विधानमंडल - संरचना, कार्यप्रणाली, कार्य संचालन, शक्तियां और विशेषाधिकार, तथा इनसे उत्पन्न होने वाले मुद्दे

भारत की लोकतांत्रिक ताकत इसकी कानून बनाने वाली विधानसभाओं की जीवंतता पर निर्भर करती है - केंद्र में संसद और प्रत्येक राज्य में विधानमंडल। वे कानून बनाते हैं, कार्यपालिका की निगरानी करते हैं, संवैधानिक मूल्यों की रक्षा करते हैं और नागरिकों की आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करते हैं।

1. संसदीय सरकार: प्रमुख विशेषताएँ

1. **औपचारिक बनाम वास्तविक अधिकार**
   - राष्ट्रपति कार्यपालिका का औपचारिक (वास्तविक) प्रमुख होता है, जबकि वास्तविक शक्ति (वास्तविक) प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद के पास होती है।
2. **सामूहिक जवाबदेही**
   - मंत्रीगण एक समूह के रूप में लोक सभा को उत्तर देते हैं (अनुच्छेद 75)।
3. **बहुमत का नियम**
   - लोकसभा में बहुमत प्राप्त करने वाली पार्टी या गठबंधन सरकार बनाती है।
4. **दोहरी भूमिकाएँ**
   - कैबिनेट के सदस्य एक साथ विधायक और कार्यपालक होते हैं।
5. **प्रधान मंत्री नेतृत्व**
   - प्रधानमंत्री नीति निर्देश निर्धारित करते हैं और कैबिनेट बैठकों की अध्यक्षता करते हैं।
6. **पार्टी सामंजस्य**
   - मंत्री आमतौर पर सत्तारूढ़ पार्टी/गठबंधन से होते हैं, जिससे नीतिगत एकता सुनिश्चित होती है।
7. **सदन विघटन**
   - प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति लोकसभा को भंग कर सकते हैं।
8. **कार्यवाही की गोपनीयता**
   - मंत्रीगण कैबिनेट विचार-विमर्श में गोपनीयता बनाए रखते हैं।

गोद लेने का औचित्य

- विधायिका और कार्यपालिका के बीच गतिरोध को रोकता है।
- यह भारतीय संविधान निर्माताओं से परिचित ब्रिटिश संसदीय परंपराओं पर आधारित है।
- व्यापक सामाजिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करता है।
- इसमें स्थायित्व और मंत्रिस्तरीय जिम्मेदारी दोनों अंतर्निहित हैं (अम्बेडकर)।

2. संसद के मुख्य कार्य

1. **विधान**
   - संवैधानिक संशोधनों सहित कानूनों का प्रारूप तैयार करना, संशोधन करना और निरसन करना।
2. **कार्यकारी निरीक्षण**
   - प्रश्नकाल, अविश्वास प्रस्ताव और निंदा प्रस्ताव जैसे साधन मंत्रियों पर नियंत्रण रखते हैं।
3. **चुनावी भूमिका**
   - राष्ट्रपति/उपराष्ट्रपति, सदनों के नेताओं और समिति अध्यक्षों का चुनाव करता है।
4. **बजट नियंत्रण**
   - समेकित निधि से निकासी को मंजूरी दी जाती है; बजट की जांच अनुमान और लोक लेखा समितियों द्वारा की जाती है।
5. **अर्ध-न्यायिक शक्तियां**
   - वह जांच शुरू कर सकता है, राष्ट्रपति या न्यायाधीशों पर महाभियोग लगा सकता है, तथा अपने विशेषाधिकार लागू कर सकता है।

3. विधानमंडलों के समक्ष चुनौतियाँ

- **कम बैठने के घंटे**
  - 17वीं लोकसभा में 1,400 घंटों से भी कम समय तक कार्यवाही चली - जो ऐतिहासिक मानदंडों से काफी कम है।
- **उच्छृंखल आचरण**
  - बार-बार व्यवधान से बहस का बहुमूल्य समय बर्बाद होता है।
- **महिलाओं का कम प्रतिनिधित्व**
  - लोकसभा में यह प्रतिशत लगभग 15% है; कई राज्य विधानसभाओं में यह प्रतिशत और भी कम है।

- **धन-बिल का दुरुपयोग**
  - गैर-वित्तीय उपायों को अक्सर राज्य सभा की जांच को दरकिनार करते हुए धन विधेयक के रूप में पारित कर दिया जाता है।
- **जल्दबाजी में कानून बनाना**
  - ध्वनि मत और न्यूनतम चर्चा प्रचलित है।
- **समिति रेफरल में कमी**
  - हाल के समय में विभागीय समितियों को केवल एक चौथाई विधेयक ही भेजे गए हैं।
- **असंहिताबद्ध विशेषाधिकार**
  - स्पष्ट, लिखित नियमों का अभाव मनमाने प्रयोग को आमंत्रित करता है।
- **अध्यादेश रिलायंस**
  - अत्यधिक उपयोग से सम्पूर्ण विधायी प्रक्रिया बाधित होती है।

4. संसदीय उत्पादकता: हालिया रुझान

- **रिक्त प्रमुख कार्यालय**
  - 17वीं लोक सभा में कोई उपाध्यक्ष या मान्यता प्राप्त विपक्ष का नेता नहीं है।
- **सत्र निलंबन**
  - सांसदों के निलंबन की रिकॉर्ड संख्या।
- **बजट बहस कटौती**
  - 80% तक व्यय को विस्तृत चर्चा के बिना मंजूरी दे दी गई।

5. अनुशंसित सुधार

1. **न्यूनतम बैठने के दिन**
   - लोकसभा के लिए कम से कम 120 दिन तथा राज्य सभा के लिए 100 दिन का वार्षिक अधिदेश होना चाहिए।
2. **विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करना**
   - अधिकारों और प्रतिरक्षा को परिभाषित करने वाले स्पष्ट कानून बनाएं।
3. **दलबदल विरोधी समीक्षा**
   - पार्टी-व्हिप के प्रवर्तन को केवल विश्वास प्रस्तावों तक सीमित रखें।
4. **समितियों को मजबूत करें**
   - कार्यकाल बढ़ाएं, विशेषज्ञता विकसित करें और अधिक बिलों को जांच के लिए भेजें।
5. **विधायी प्रभाव आकलन**
   - प्रस्तावित कानूनों के सामाजिक और आर्थिक प्रभावों का औपचारिक विश्लेषण प्रस्तुत करें।
6. **बेहतर सांसद समर्थन**
   - अनुसंधान स्टाफ, वास्तविक समय डेटा और प्रशिक्षण प्रदान करना।
7. **अपराधीकरण से निपटना**
   - कठोर पात्रता मानदंड और आचार संहिता लागू करें।
8. **आभासी कार्यवाही**
   - आपातकाल के दौरान विधायी कार्य जारी रखने के लिए प्रौद्योगिकी का लाभ उठाएं।

6. संसदीय विशेषाधिकार

- **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय (सीता सोरेन बनाम यूओआई, 2024)**
  - रिश्वतखोरी के आरोपी सांसद/विधायक अनुच्छेद 105/194 के तहत छूट का दावा नहीं कर सकते।
- **दो-आयामी विशेषाधिकार परीक्षण**

1. सदन के सामूहिक कार्यों से संबंधित होना चाहिए।
2. विधायकों के मूल कर्तव्यों के लिए आवश्यक हो।

दायरा

- सदन के भीतर भाषण और मतदान को संरक्षण दिया जाता है, लेकिन आपराधिक न्यायालयों को भ्रष्टाचार के मामलों पर अधिकार क्षेत्र बना रहता है।

उत्पत्ति और महत्व

- स्वतंत्र बहस की रक्षा, व्यवस्था बनाए रखने और विधायिका की गरिमा को बनाए रखने के लिए ब्रिटिश प्रथा से अनुकूलित।
- फिर भी, संसद ने अब तक इन विशेषाधिकारों को कानून में शामिल करने से इनकार कर दिया है।

7. विपक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका

- **जनता के वकील**
  - अल्पसंख्यकों और हाशिए पर पड़े लोगों की चिंताओं को आवाज़ देना।
- **कार्यकारी निगरानी**

- सरकार को घोषणापत्र के वादों पर अड़ाए रखना; उदाहरण के लिए, भ्रष्टाचार विरोधी अभियान जिसके परिणामस्वरूप लोकपाल अधिनियम बना।

- **वर्तमान बाधाएँ**
  - संख्यात्मक कमजोरी, गुटबाजी और दलबदल, समेकित आलोचना को कमजोर करते हैं।
- **आवश्यक सुधार**
  - विपक्ष के नेता की औपचारिक मान्यता (10% सीट नियम)।
  - राष्ट्रीय मुद्दों पर सर्वदलीय एकता।
  - दलबदल विरोधी सुरक्षा उपायों को मजबूत किया गया।

8. राजनीति में महिलाएँ

- **कम प्रतिनिधित्व**
  - वैश्विक महिला संसदीय हिस्सेदारी में भारत का स्थान 141/185 है।
- **बाधाओं**
  - पितृसत्ता, वित्तीय बाधाएं, भूमिका संबंधी रूढ़िवादिता और 'प्रॉक्सी' उम्मीदवारी वास्तविक भागीदारी को कमजोर करती हैं।
- **सकारात्मक परिणाम**
  - महिला नेता अक्सर स्वच्छता, शिक्षा और सामाजिक कल्याण की वकालत करती हैं।
- **आगे बढ़ने का रास्ता**
  - "ज़िपर" या वैकल्पिक-सीट कोटा।
  - आंतरिक पार्टी लोकतंत्र और नेतृत्व प्रशिक्षण।
  - महिला आरक्षण के लिए 106वें संशोधन का समय पर अधिनियमन।

9. दलबदल विरोधी कानून (दसवीं अनुसूची)

- **अयोग्यता के आधार**
  - स्वैच्छिक पार्टी से बाहर निकलना या पार्टी व्हिप के विरुद्ध मतदान करना; स्वतंत्र और मनोनीत सदस्यों के लिए विशेष नियम।
- **इच्छित लाभ**
  - खरीद-फरोख्त पर अंकुश लगाएं, स्थिरता सुनिश्चित करें और पार्टी आधारित जनादेश को कायम रखें।
- **कमियों**
  - सांसदों की स्वतंत्रता को दबाता है, नौकरशाही को बढ़ावा देता है, बहस को कमजोर करता है।
- **सुधार प्रस्ताव**
  - अयोग्यता पर निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र न्यायाधिकरण (प्रति एस.सी.)।
  - निर्णयों के लिए निश्चित समयसीमा।
  - अध्यक्ष के स्थान पर चुनाव आयोग की संभावित भूमिका।
  - विलय के नियम कड़े किए जाएंगे तथा दलबदलुओं के पुनः चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध लगाए जाएंगे।

10. पीठासीन अधिकारी का अधिकार

- **चुनाव और कार्यकाल**
  - अध्यक्ष (लोकसभा) और सभापति (राज्यसभा) का चयन सदस्यों द्वारा किया जाता है; अगले विघटन तक वे अपने पद पर बने रहते हैं।
- **मुख्य कर्तव्य**
  - व्यवस्था बनाए रखना; नियमों की व्याख्या करना; धन-विधेयक की स्थिति तय करना; संयुक्त बैठकों की अध्यक्षता करना; समिति की नियुक्तियों की देखरेख करना; अयोग्यताओं पर निर्णय करना।
- **चिंताएं**
  - विलंबित या पक्षपातपूर्ण दलबदल विरोधी निर्णय (किहोतो होलोहान बनाम ज़ाचिल्हु)।
  - विवादास्पद धन-विधेयक घोषणाएं (जैसे, आधार विधेयक, 2016)।
  - कथित पक्षपातपूर्णता तटस्थता को कमजोर कर रही है।
- **सुझाए गए सुरक्षा उपाय**
  - न्यायिक समीक्षा प्रक्रियागत निष्पक्षता पर रोक लगाती है।
  - ब्रिटेन के गैर-पक्षपाती अध्यक्ष के सम्मेलन पर विचार करें।
  - धन-विधेयक प्रश्नों पर सलाह देने के लिए मिश्रित समितियों की स्थापना करें।

11. संसदीय जांच तंत्र

1. **वाद-विवाद एवं प्रश्नकाल**

- सदस्य सरकारी कार्यों की जांच करते हैं; प्रश्नकाल में तारांकित/अतारांकित/अल्प-सूचना प्रश्नों को शामिल किया जाता है।

2. **स्थायी एवं तदर्थ समितियां**
   - विभागीय पैनल, पीएसी और अनुमान समिति नीतियों, बजट और नियामक प्रदर्शन की समीक्षा करती है।
3. **एड-हॉक पूछताछ पैनल**
   - विशिष्ट मुद्दों या कथित दुराचार की जांच करें।

खामियों

- समिति के संदर्भों और बैठकों में कमी।
- प्रश्नकाल के दौरान व्यवधान।
- प्रभावी विपक्षी नेतृत्व का अभाव।

संवर्द्धन उपाय

- महामारी के बाद प्रश्नकाल/शून्यकाल की पूर्ण कार्यप्रणाली बहाल की जाएगी।
- प्रासंगिकता बनाए रखने के लिए समिति रोस्टर को नियमित रूप से ताज़ा करें।
- विशेषज्ञ सचिवालय सहायता प्रदान करें।
- प्रमुख समिति की रिपोर्टों पर संसदीय बहस पर जोर दें।

मुख्य शब्द:

अर्ध-न्यायिक · प्रश्नकाल · दलबदल विरोधी · संसदीय विशेषाधिकार · लोक लेखा समिति · अनुमान समिति · विपक्ष के नेता · जिपर प्रणाली · विधायी प्रभाव आकलन।

पिछले वर्ष के प्रश्न

प्रश्न: राज्यपाल द्वारा विधायी शक्तियों के प्रयोग के लिए आवश्यक शर्तों पर चर्चा करें। राज्यपाल द्वारा अध्यादेशों को विधानमंडल के समक्ष रखे बिना उन्हें पुनः जारी करने की वैधानिकता पर चर्चा करें। -2022

प्रश्न: विविधता, समानता और समावेशिता सुनिश्चित करने के लिए उच्च न्यायपालिका में महिलाओं के अधिक प्रतिनिधित्व की वांछनीयता पर चर्चा करें।-2021

प्रश्न: पिछले कुछ दशकों में राज्य सभा एक 'बेकार स्टेपनी टायर' से सबसे उपयोगी सहायक अंग में तब्दील हो गई है। उन कारकों और क्षेत्रों पर प्रकाश डालें जिनमें यह परिवर्तन दिखाई दे सकता है। -2020

प्रश्न: "स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण का भारतीय राजनीतिक प्रक्रिया के पितृसत्तात्मक चरित्र पर सीमित प्रभाव पड़ा है।" टिप्पणी करें।-2019

प्रश्न: राष्ट्रीय विधिनिर्माता के रूप में व्यक्तिगत सांसदों की भूमिका में गिरावट आ रही है, जिसके परिणामस्वरूप बहस की गुणवत्ता और उनके परिणाम पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। चर्चा करें-2019

प्रश्न: राष्ट्रपति द्वारा हाल ही में जारी अध्यादेश के माध्यम से मध्यस्थता एवं सुलह अधिनियम, 1996 में क्या प्रमुख परिवर्तन लाए गए हैं? इससे भारत के विवाद समाधान तंत्र में किस हद तक सुधार आएगा? चर्चा करें।-2015

प्रश्न: संविधान के अनुच्छेद 105 में वर्णित 'संसद और उसके सदस्यों की शक्तियाँ, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ' बहुत सारे असंहिताबद्ध और अगणित विशेषाधिकारों के जारी रहने की गुंजाइश छोड़ती हैं। संसदीय विशेषाधिकारों के कानूनी संहिताकरण की अनुपस्थिति के कारणों का आकलन करें। इस समस्या का समाधान कैसे किया जा सकता है? -2014

प्रश्न: राज्यपाल द्वारा विधायी शक्तियों के प्रयोग के लिए आवश्यक शर्तों पर चर्चा करें। राज्यपाल द्वारा अध्यादेशों को विधानमंडल के समक्ष रखे बिना उन्हें पुनः जारी करने की वैधानिकता पर चर्चा करें।-2022

भारत में न्यायिक प्रणाली

यूपीएससी मुख्य परीक्षा के लिए एक व्यापक, बहुस्तरीय अवलोकन, जिसमें एक-लाइनर के बजाय प्रत्येक शीर्षक के अंतर्गत गहन स्पष्टीकरण दिया गया है।

संरचनात्मक पदानुक्रम

1.1 सर्वोच्च न्यायालय

अनुच्छेद 124-147 के तहत गठित सर्वोच्च न्यायालय (SC) भारत का सर्वोच्च मंच है। इसमें भारत के मुख्य न्यायाधीश (CJI) और 33 से अधिक अवर न्यायाधीश शामिल हैं, जिन्हें CJI की सिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है। SC का मूल अधिकार क्षेत्र अंतर-राज्यीय और संघ-राज्य विवादों (अनुच्छेद 131) के साथ-साथ मौलिक अधिकार याचिकाओं (अनुच्छेद 32) को भी कवर करता है। इसका अपीलीय अधिकार क्षेत्र प्रमाणपत्रों (अनुच्छेद 132-134) और अनुच्छेद 136 के तहत विशेष अनुमति याचिकाओं के माध्यम से दीवानी और आपराधिक मामलों तक फैला हुआ है। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति जटिल कानूनी प्रश्नों (अनुच्छेद 143) पर अपनी गैर-बाध्यकारी सलाहकार राय मांग सकते हैं।

1.2 उच्च न्यायालय

प्रत्येक राज्य या राज्यों के समूह में एक उच्च न्यायालय होता है (अनुच्छेद 214) जिसके न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश और राज्य के राज्यपाल से परामर्श के बाद करता है। उच्च न्यायालय तीन कार्य करते हैं:

- **मूल** : अधिकारों के प्रवर्तन और वैधानिक समीक्षा के लिए अनुच्छेद 226 के तहत रिट जारी की गई।
- **अपीलीय** : सिविल और आपराधिक मामलों में जिला और अधीनस्थ न्यायालयों से अपील सुनना।
- **पर्यवेक्षी** : राज्य में सभी न्यायालयों और न्यायाधिकरणों पर अधीक्षण का प्रयोग करें (अनुच्छेद 227)।

1.3

उच्च न्यायालयों के अधीन अधीनस्थ न्यायालय जिला न्यायालय (जिला न्यायाधीशों की अध्यक्षता में) और अधीनस्थ मजिस्ट्रेट न्यायालय हैं। जिला न्यायालय प्रमुख सिविल विवादों और गंभीर आपराधिक मुकदमों को संभालते हैं; सत्र न्यायालय मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराधों की सुनवाई करते हैं। मजिस्ट्रेट न्यायालय (प्रथम/द्वितीय श्रेणी) छोटे आपराधिक मामलों और प्रारंभिक जांच की देखरेख करते हैं। अलग-अलग विशेष मंच - परिवार, किशोर और श्रम न्यायालय - लक्षित जरूरतों को संबोधित करते हैं।

1.4 विशेष न्यायाधिकरण

वैधानिक न्यायाधिकरण (जैसे, आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण, राष्ट्रीय कंपनी कानून न्यायाधिकरण, केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण) क्षेत्र-विशिष्ट विवादों का निपटारा करते हैं। सामान्य न्यायालयों में भीड़भाड़ कम करते हुए, न्यायाधिकरण न्यायिक स्वतंत्रता और सदस्यों की नियुक्तियों और कार्यकाल के समान मानकों की आवश्यकता पर बहस को बढ़ावा देते हैं।

संवैधानिक प्रावधान

2.1 शक्तियों का पृथक्करण

अनुच्छेद 50 राज्यों को निर्देश देता है कि वे "सार्वजनिक सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करें", जो 1935 के भारत सरकार अधिनियम की विरासत है। यह स्वतंत्र न्यायिक संवर्ग और कार्यकारी मजिस्ट्रेटों के बजाय उच्च न्यायालय

रजिस्ट्री द्वारा अलग प्रशासनिक नियंत्रण को रेखांकित करता है।

2.2 निर्णयों की सर्वोच्चता

अनुच्छेद 141 सभी न्यायालयों को सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों से बाध्य करता है, जिससे कानून में एकरूपता सुनिश्चित होती है। अनुच्छेद 142 सर्वोच्च न्यायालय को अधिकारों के प्रवर्तन के लिए आवश्यक किसी भी आदेश के माध्यम से "पूर्ण न्याय करने" की शक्ति प्रदान करता है, जिससे न्याय के हित में विधायी अंतराल भर जाता है।

2.3 रिट क्षेत्राधिकार

- **अनुच्छेद 32** : नागरिकों को मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए सीधे सर्वोच्च न्यायालय से संपर्क करने का अधिकार देता है।
- **अनुच्छेद 226** : उच्च न्यायालयों को न केवल अधिकारों के संरक्षण के लिए बल्कि "किसी अन्य उद्देश्य" के लिए भी रिट जारी करने का अधिकार देता है, जिससे उच्च न्यायालयों को व्यापक उपचारात्मक पहुंच मिलती है।

भारत और अमेरिका की न्यायिक प्रणालियों की तुलनात्मक सारणी

आधार	भारत	अमेरिका
न्यायिक प्रणाली	एकीकृत प्रणाली: सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय एवं अधीनस्थ न्यायालयों का क्रमिक ढाँचा।	द्वि-स्तरीय प्रणाली: संघीय कानूनों के लिए फेडरल न्यायपालिका तथा राज्य कानूनों के लिए राज्य न्यायपालिका।
जूरी प्रणाली	नहीं है।	स्वीकृत है।
न्यायाधियों की नियुक्ति	कॉलेजियम प्रणाली: नियुक्ति में न्यायपालिका की प्रमुख भूमिका।	राष्ट्रपति द्वारा नामांकन और सीनेट द्वारा पुष्टि – निर्वाचित प्रतिनिधियों की बड़ी भूमिका।
न्यायाधियों की सेवानिवृत्ति आयु	सर्वोच्च न्यायालय: 65 वर्षउच्च न्यायालय एवं अन्य अधीनस्थ न्यायालय: 62 वर्ष।	उम्र-कैलिबद्ध नहीं; आजीवन सेवा।
सुप्रीम कोर्ट का मूल क्षेत्राधिकार	संघीय (केन्द्रीय) मामलों तक सीमित।	संघीय मामलों के साथ नौसेना, समुद्री गतिविधियाँ, राजदूतों से संबंधित आदि मामलों में मूल क्षेत्राधिकार।
सुप्रीम कोर्ट का अपीलीय क्षेत्राधिकार	संवैधानिक, नागरिक एवं आपराधिक मामलों में।	केवल संवैधानिक मामलों में।
मुकदमों का निर्णय प्रक्रिया	भारतीय न्यायाधीश 3–5 सदस्यों की पीठों पर विचार करते हैं; आवश्यकता होने पर और भी बड़ी पीठ बन सकती है।	सभी न्यायाधीश एक साथ मिलकर निर्णय लेते हैं।
सलाहकार क्षेत्राधिकार	है।	नहीं है।
क्षेत्राधिकार में परिवर्तन	संसद द्वारा विस्तारित किया जा सकता है।	केवल संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों तक सीमित।
अधीनस्थ न्यायालयों पर	एकीकृत प्रणाली: उच्च न्यायालयों पर न्यायिक पर्यवेक्षण (superintendence) का अधिकार।	द्वि-स्तरीय (या पृथक) प्रणाली – ऐसी कोई शक्ति नहीं।

नियंत्रण		

भारत एवं यूके की न्यायिक प्रणालियों में प्रमुख अंतर		
भिन्नता	**भारत**	**यूके**
जूरी प्रणाली	उपस्थित नहीं।	उपस्थित।
न्यायिक समीक्षा	मूलतः कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया। मनेका गांधी मामले के बाद 'न्यायिक प्रक्रिया' (Due Process of Law) की अवधारणा स्वीकारी गई, जिससे न्यायिक समीक्षा का दायरा व्यापक हुआ।	Due Process of Law: संसद सर्वोच्च है और न्यायालय कानून की निष्पक्षता की जांच नहीं करता।
न्यायाधि नियुक्ति	कॉलेजियम प्रणाली: नियुक्ति में न्यायपालिका की प्रमुख भूमिका, जिससे पारदर्शिता कम होती है।	न्यायिक नियुक्ति आयोग: संसद को प्राथमिकता, जिससे नियुक्ति प्रक्रिया अधिक पारदर्शी होती है।

भारतीय और ब्रिटिश न्यायिक प्रणालियों के बीच अभिसरण:

- **न्यायिक स्वतंत्रता : दोनों राष्ट्र शक्तियों के पृथक्करण** के सिद्धांत के माध्यम से न्यायिक स्वायत्तता को कायम रखते हैं ।
  - *उदाहरण* : ब्रिटेन ने न्यायिक प्राधिकार को **लॉर्ड चांसलर के कार्यालय से हटा दिया, जो कि केशवानंद भारती मामले (1973)** में देखी गई न्यायिक स्वतंत्रता की भारत की संवैधानिक सुरक्षा के समान है ।
- **वैकल्पिक विवाद समाधान (एडीआर)** :
  - भारत और ब्रिटेन दोनों ही न्याय तक पहुंच बढ़ाने के लिए **ए.डी.आर. तंत्र को तेजी से अपना रहे हैं।**
  - *उदाहरण* : ब्रिटेन ने **2007 में न्याय मंत्रालय का गठन किया** , जबकि भारत ने **न्याय वितरण और कानूनी सुधार के लिए राष्ट्रीय मिशन शुरू किया** ।
- **न्यायिक जवाबदेही** :
  - भारत न्यायिक नियुक्तियों में अधिक **पारदर्शिता चाहता है, राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (एनजेएसी)** जैसे प्रस्तावों का उद्देश्य मौजूदा प्रणाली में सुधार करना है।

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के 75 वर्ष – हीरक जयंती समारोह

28 जनवरी 2024 को , **भारत के प्रधान मंत्री ने नई दिल्ली** में अपने सभागार में **भारत के सर्वोच्च न्यायालय के हीरक जयंती (75 वर्ष)** समारोह का उद्घाटन किया , जो भारत की न्यायिक यात्रा में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय के बारे में

- भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 124(1)** के अनुसार , **सर्वोच्च न्यायालय में भारत के एक मुख्य न्यायाधीश (सीजेआई)** और अधिकतम **सात अन्य न्यायाधीश** होंगे , जब तक कि संसद कानून द्वारा **इस सीमा को बढ़ाने का निर्णय न ले ।**
- **वर्तमान क्षमता** : सर्वोच्च न्यायालय में वर्तमान में **मुख्य न्यायाधीश** के साथ **33 अन्य न्यायाधीश हैं** , कुल मिलाकर **34 न्यायाधीश हैं** ।
- **संवैधानिक ढांचा** : सर्वोच्च न्यायालय की कार्यप्रणाली, संरचना, अधिकार क्षेत्र और शक्तियों

का विवरण भारत के संविधान के **अनुच्छेद 124 से 147 में दिया गया है।**

भारत के सर्वोच्च न्यायालय की प्रमुख विशेषताएँ

- **सर्वोच्च न्यायिक प्राधिकरण** : देश में **सर्वोच्च न्यायिक निकाय के रूप में मान्यता प्राप्त सर्वोच्च न्यायालय अपील की अंतिम अदालत के रूप में कार्य करता है** । उच्च न्यायालय के फ़ैसलों से असंतुष्ट व्यक्ति न्याय के लिए इसके पास जा सकते हैं।
- **अनुच्छेद 143 के तहत सलाहकारी भूमिका** : न्यायालय संवैधानिक या सार्वजनिक महत्व के मामलों पर **भारत के राष्ट्रपति को कानूनी सलाह दे सकता है।**
- **संघीय विवादों का समाधानकर्ता** : **अनुच्छेद 131 के तहत, यह** संघीय संतुलन बनाए रखते हुए **केंद्र और राज्यों** या **दो या अधिक राज्यों के बीच** विवादों का निपटारा करता है ।
- **संवैधानिक समीक्षा की शक्ति** : **न्यायिक समीक्षा के माध्यम से** न्यायालय **संवैधानिक ढांचे के साथ संरेखण सुनिश्चित करने के लिए विधायी और कार्यकारी कार्यों की जांच करता है** ।
- **मौलिक अधिकारों के रक्षक : अनुच्छेद 32** का आह्वान करके , नागरिक रिट के माध्यम से अपने **मौलिक अधिकारों** के संरक्षण और प्रवर्तन के लिए सीधे सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकते हैं ।

सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौतियाँ

- **लंबित मामलों की बढ़ती संख्या** : 2023 के आंकड़ों के अनुसार, न्यायालय के पास **80,000 से अधिक मामले लंबित हैं** , जिससे समय पर न्याय मिलने में बाधा आ रही है।
- **सक्रियता और संयम के बीच संघर्ष** : इस बात पर बहस जारी है कि क्या न्यायपालिका को **सक्रियतापूर्ण हस्तक्षेप करना चाहिए** या **अपने आपको कानूनी व्याख्या तक ही सीमित रखना चाहिए** .
- **भाई-भतीजावाद की चिंताएं** : **विधि आयोग की 230वीं रिपोर्ट ने न्यायिक नियुक्तियों में पक्षपात** के मुद्दे को उठाया , जिसे अक्सर "अंकल जज सिंड्रोम" कहा जाता है, जो निष्पक्षता पर सवाल उठाता है।
- **कार्यपालिका-न्यायपालिका टकराव** : **नियुक्तियों में देरी** , **न्यायाधिकरणों का प्रसार** और सार्वजनिक आलोचना जैसे मुद्दों - विशेष रूप से महामारी के दौरान - ने **संस्थागत तनाव में योगदान दिया है** ।

सुझाए गए सुधार और आगे का रास्ता

- अदालती डिजिटलीकरण **और स्मार्ट केस प्रबंधन** : **ई-फाइलिंग, एआई-आधारित केस सॉर्टिंग और वर्चुअल कोर्टरूम के उपयोग से** देरी कम हो सकती है और न्याय तक पहुंच में सुधार हो सकता है।
- **नियुक्तियों में पारदर्शिता : न्यायिक चयन प्रक्रिया** में खुलापन बढ़ाने और **अदालती फैसलों तक जनता की आसान पहुंच से** संस्थागत विश्वास का निर्माण हो सकता है।
- **न्यायिक स्वायत्तता की** रक्षा : शक्तियों का सुदृढ़ पृथक्करण सुनिश्चित किया जाना चाहिए ताकि न्यायपालिका **कार्यपालिका के दबाव या राजनीतिक प्रभाव से मुक्त रहे** तथा इसकी **अखंडता और स्वतंत्रता बनी रहे** ।

भारत में न्यायपालिका की बहुमुखी भूमिका

मौलिक अधिकारों के संरक्षक के रूप में न्यायपालिका:

- भारतीय न्यायपालिका **नागरिकों के मौलिक अधिकारों की प्राथमिक रक्षक के रूप में कार्य करती है** तथा यह सुनिश्चित करती है कि कोई भी व्यक्ति अपने संवैधानिक संरक्षण से वंचित न रहे।
- **अनुच्छेद 32** के तहत , सर्वोच्च न्यायालय को **बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, उत्प्रेषण, प्रतिषेध और अधिकार-**

पृच्छा जैसे रिट जारी करके इन अधिकारों को लागू करने का अधिकार है।

- इसी प्रकार , **अनुच्छेद 226** उच्च न्यायालयों को मौलिक अधिकारों और अन्य कानूनी अधिकारों दोनों के प्रवर्तन के लिए रिट जारी करने का अधिकार देता है।
- इसके अलावा , **अनुच्छेद 13 के तहत** , न्यायपालिका को संविधान के भाग III के प्रावधानों के साथ असंगत या उल्लंघन करने वाले **कानूनों को रद्द करने** की शक्ति है - इस प्रकार वह **संविधान के व्याख्याता और संरक्षक के रूप में कार्य करती है** ।

न्यायपालिका संविधान की प्रहरी है और कार्यपालिका की ज्यादतियों पर अंकुश लगाती है:

- न्यायपालिका एक **संवैधानिक प्रहरी के रूप में कार्य करती है** तथा यह सुनिश्चित करती है कि राज्य के सभी अंग अपनी संवैधानिक सीमाओं के भीतर कार्य करें।
- यह **न्यायिक समीक्षा** के सिद्धांत का आह्वान करके विधायिका और कार्यपालिका द्वारा **मनमानी और अत्यधिक कार्रवाई के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है** ।
- **केशवानंद भारती (1973)** और **मेनका गांधी (1978)** जैसे ऐतिहासिक फैसलों के माध्यम से अदालतों ने इस बात पर जोर दिया है कि **कानून का शासन और संवैधानिक सर्वोच्चता** भारतीय लोकतंत्र के मूल सिद्धांत हैं।
- यह भूमिका यह सुनिश्चित करती है कि **संवैधानिक नैतिकता बहुमतवादी या कार्यकारी आवेगों** पर हावी रहे ।

न्यायपालिका: संविधान की रक्षक एवं सरकारी/राज्य की मनमानी से उद्धारकर्ता

विषय	विवरण (हिंदी में)
न्यायिक समीक्षा	संविधान संशोधनों, संसद एवं राज्य विधानसभाओं द्वारा पारित क़ानूनों, अधीनस्थ क़ानूनों और केंद्र एवं राज्य प्रशासनिक कार्यों की समीक्षा।
अनुच्छेद 142	सर्वोच्च न्यायालय को "पूर्ण न्याय" (complete justice) करने के लिए आवश्यक आदेश जारी करने का अधिकार।
उदाहरण:	भोपाल गैस त्रासदी मामले में पीड़ितों को 470 मिलियन डॉलर मुआवजा।
संविधान की व्याख्या	अपने मूल क्षेत्राधिकार के अंतर्गत न्यायालय, न्यायिक व्याख्याओं के माध्यम से सरकार को उनके संवैधानिक अथॉरिटी की सीमाओं में रखता है।

महत्वपूर्ण न्यायिक अवधारणाएँ

अवधारणा	कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया	न्यायिक प्रक्रिया (Due Process of Law)
उद्धृत स्रोत	ब्रिटिश	अमेरिका
क़ानून की वैधता जांचने का परीक्षण	• क्या ऐसा कोई क़ानून है जो कार्यपालिका की कार्रवाई को वैध ठहराता हो? • क्या विधायिका के पास वह क़ानून बनाने का अधिकार था? • क्या विधायिका ने निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया?	• कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के साथ-साथ प्राकृतिक न्याय (natural justice) के सिद्धांतों से क़ानून की आंतरिक न्यायशीलता की भी जाँच करता है।
आश्रित	विधायिका की विवेकपूर्ण समझदारी	न्यायिक विवेक (judicial conscience) पर भी।

	और सशक्त जनमत पर।	
न्यायिक शक्ति	सीमित: केवल प्रक्रियात्मक (procedural) आधारों पर नागरिक अधिकारों का उल्लंघन घोषित कर सकता है।	व्यापक: नागरिक अधिकारों का उल्लंघन सविस्तार—मौलिक (substantive) और प्रक्रियात्मक (procedural) दोनों आधारों पर घोषित कर सकता है।
रक्षा	केवल कार्यपालिका की मनमानी कार्रवाई के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता है।	कार्यपालिका एवं विधायिका—दोनों की मनमानी कार्रवाई के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता है।

प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत (पीएनजे)

प्राकृतिक न्याय **अलिखित कानूनी और नैतिक नियमों के एक समूह को संदर्भित करता है** जो निर्णय लेने में निष्पक्षता, निष्पक्षता और जवाबदेही सुनिश्चित करता है, विशेष रूप से प्रशासनिक या अर्ध-न्यायिक कार्यवाही में। ये संहिताबद्ध कानून नहीं हैं, बल्कि **लोकतांत्रिक समाजों में मान्यता प्राप्त सार्वभौमिक सिद्धांत हैं** ।

प्राकृतिक न्याय के मूल सिद्धांत:

1. **प्राधिकार की निष्पक्षता** : प्रत्येक निर्णय लेने वाली संस्था को **सद्भावनापूर्वक कार्य करना चाहिए** तथा **व्यक्तिगत पूर्वाग्रह या पक्षपात से मुक्त होना चाहिए** ।
2. **निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार (ऑडी अल्टरम पार्टम) : किसी भी व्यक्ति को सुनवाई का अवसर दिए बिना** तथा अपना पक्ष प्रस्तुत किए बिना दंड नहीं दिया जाना चाहिए ।
3. **कोई भी व्यक्ति अपने मामले का स्वयं न्याय नहीं करेगा (नेमो जूडेक्स इन कॉसा सुआ)** : कोई भी व्यक्ति ऐसे मामले की अध्यक्षता नहीं कर सकता जहां उसका **व्यक्तिगत हित या संघर्ष हो** ।

प्रमुख न्यायिक अनुमोदन:

- **मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) : सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 21** का दायरा बढ़ाया **'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया'** के अर्थ में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को शामिल करके , इस प्रकार **उचित प्रक्रिया पर जोर दिया गया है** ।
- **सेंट्रल इनलैंड वाटर ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम ब्रोजो नाथ गांगुली (1986)** : न्यायालय ने कहा कि प्राकृतिक न्याय **अनुच्छेद 14 का एक अनिवार्य हिस्सा है** , जो **कानून के समक्ष समानता को** एक औपचारिक अधिकार न होकर एक मौलिक अधिकार बनाता है।

भारत में न्यायिक लंबित मामले

न्यायपालिका की महत्वपूर्ण संवैधानिक भूमिका के बावजूद , **न्याय प्रदान करने में देरी** एक गंभीर चिंता का विषय बन गई है।

वर्तमान परिदृश्य:

- भारत की अदालतों को हर स्तर पर **भारी लंबित मामलों का सामना करना पड़ रहा है** - सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालय।
- यूरोपीय देशों की तुलना में भारत में **सिविल मामलों में** औसतन 4.4 गुना अधिक समय लगता है तथा आपराधिक मामलों में 6 गुना अधिक समय लगता है।

विधि आयोग की टिप्पणी:

- मौजूदा न्यायाधीश-जनसंख्या अनुपात के आधार पर लंबित मामलों को समाप्त करने में **464 वर्ष** लगेंगे ।

न्यायालयों में लंबित मामलों की संख्या (दिसंबर 2022 तक)

न्यायालय	लंबित मामले
सर्वोच्च न्यायालय	69,598
उच्च न्यायालय	59,78,714
निचली अदालतें	4.4 करोड़

लंबित मामलों के प्रमुख कारण

कारण	विवरण
कार्मिक	• 1 अप्रैल 2024 तक 25 उच्च न्यायालयों में स्वीकृत 1,114 न्यायाधीश पदों में से 327 रिक्त। • प्रति एक मिलियन जनसंख्या पर 10.5 न्यायाधीश (कानून आयोग की सिफारिश: 50 प्रति मिलियन)।
प्रशासनिक	• 50% से अधिक मामले प्रति मामले अधिकतम 3 स्थगन नियम का उल्लंघन करते हैं। • नियम के बावजूद सर्वोच्च न्यायालय औसतन 222 दिन कार्यरत, जबकि न्यूनतम 225 दिन कार्य करने का प्रावधान है; ग्रीष्मकालीन अवकाश व्यवस्था औपनिवेशिक विरासत दर्शाती है। • विशेष अवकाश याचिका (अनु.136) लंबित का 40% हिस्सा। • अधीनस्थ स्तर पर वकीलों द्वारा सौदेबाजी कर भ्रष्टाचार, जिससे मुकदमों में विलंब।
अवसंरचना	• स्वीकृत 20,558 न्यायिक अधिकारियों में से केवल 15,540 के लिए ही मौजूदा अवसंरचना में स्थान। • न्यायालय अवसंरचना पर सकल घरेलू उत्पाद का मात्र 0.09% व्यय। • प्रशासन में पुराने तकनीकी उपायों के उपयोग से मुकदमेबाजी की अवधि बढ़ती है।
अन्य	• अनुसंधान में विलंब: आधुनिक एवं वैज्ञानिक उपकरणों की कमी के कारण पुलिस जांच अक्षम बनी। • केंद्र एवं राज्य सरकारें 46% से अधिक लंबित मामलों के लिए जिम्मेदार।

संस्थागत और न्यायिक सुधार

- **तदर्थ न्यायाधीशों का उपयोग** : **120वें विधि आयोग ने** मामलों की अधिकता से निपटने के लिए **अनुच्छेद 128** (उच्चतम न्यायालय के लिए) और **अनुच्छेद 224ए (उच्च न्यायालय के लिए)** के अंतर्गत **तदर्थ न्यायाधीशों की** तैनाती की सिफारिश की थी ।
- **सर्वोच्च न्यायालय का कार्यात्मक विभाजन** : **वसंता आर. मामले में , विधि आयोग और सर्वोच्च न्यायालय दोनों ने** सर्वोच्च न्यायालय को निम्नलिखित भागों में विभाजित करने का समर्थन किया:
  - एक **संवैधानिक पीठ** और
  - कार्यभार और विशेषज्ञता का प्रबंधन करने के लिए एक **अपील न्यायालय ।**
- **केस लोड गतिशीलता के आधार पर न्यायिक नियुक्तियाँ** :
  - **लंबित मामलों की संख्या 2.5 गुना अधिक होने** के कारण प्राथमिकता दी जाएगी ।
  - विलंब-प्रवण चरणों (जैसे, प्रक्रियागत चूक या स्टाफिंग संबंधी मुद्दे) की पहचान करने के लिए **जीवन चक्र विश्लेषण** अपनाएं ।

        - *उदाहरण: दिल्ली उच्च न्यायालय की "जीरो पेंडेंसी" परियोजना।*
- **राज्यवार मामले निपटान की जानकारी** :
    - **गुजरात ने** 100% केस क्लीयरेंस दर (सीसीआर) दिखाई,
    - **बिहार** केवल **55.8% सीसीआर के साथ पिछड़ गया** , जो असमानताओं को उजागर करता है।

संरचनात्मक एवं तकनीकी उपाय

- **न्यायालय की उत्पादकता बढ़ाना** :
    - **कार्य दिवस** बढ़ाएँ ।
    - जवाबदेही बढ़ाने के लिए **न्यायिक आचार संहिता को सख्त रूप से** लागू करें ।
    - कार्यप्रवाह को अनुकूलित करने के लिए **बिजनेस प्रोसेस रीइंजीनियरिंग (बीपीआर)।**
- **तकनीकी एकीकरण** :
    - **ई-कोर्ट मिशन मोड परियोजना** : वास्तविक समय के मामले की ट्रैकिंग के लिए **राष्ट्रीय न्यायिक डेटा ग्रिड (एनजेडीजी) को सक्षम बनाती है।**
    - देरी को कम करने के लिए **ऑनलाइन केस फाइलिंग** , **वर्चुअल सुनवाई** और **बड़े डेटा एनालिटिक्स को** बढ़ावा दें ।
- **एलआईएमबीएस (कानूनी सूचना प्रबंधन और ब्रीफिंग सिस्टम)** :
    - **विधि एवं न्याय मंत्रालय** द्वारा विकसित यह पोर्टल बेहतर ट्रैकिंग और समन्वय के लिए सरकारी मुकदमेबाजी डेटा को समेकित करता है।

न्यायमूर्ति रमण का त्रि-आयामी दृष्टिकोण

1. ई-न्यायालय और नई अदालतों की स्थापना के माध्यम से **न्यायिक बुनियादी ढांचे को मजबूत करना ।**
2. **मध्यस्थता और परामर्श** के माध्यम से **मुकदमे-पूर्व चरण में विवाद समाधान को बढ़ावा देना** ।
3. **एडीआर** विधियों के उपयोग का विस्तार करें जैसे:
    - **मध्यस्थता करना**
    - **समझौता**
    - **लोक अदालतें**
    - कानूनी जागरूकता फैलाने और समझौतों को प्रोत्साहित करने के लिए **नालसा** , **सालसा** , **डालसा** और **तालसा** जैसे कानूनी सेवा प्राधिकरणों का उपयोग ।

उच्च लंबित मामलों के प्रकारों के लिए विशेष समितियां

- लक्षित कार्रवाई के लिए थोक मामला श्रेणियों को प्राथमिकता दें।
    - *उदाहरण: चेक बाउंस के मामले* ट्रायल कोर्ट में लंबित मामलों का 30-40% हिस्सा होते हैं। इस समस्या से निपटने के लिए हाल ही में एक **पैनल-आधारित निपटान तंत्र का प्रस्ताव रखा गया था।**

सार्वजनिक उत्तरदायित्व एवं नागरिक जागरूकता

- **मीडिया की भूमिका** :
    - **लोकतंत्र के चौथे स्तंभ को** न्यायिक लंबित मामलों पर समय-समय पर रचनात्मक रिपोर्ट देनी चाहिए।

- **पारदर्शिता और जवाबदेही** बढ़ेगी तथा जनता को शिक्षित किया जा सकेगा।

कानूनी संस्कृति और कानून के शासन की आवश्यकता

- **अच्छी तरह से कार्य करने वाली न्यायपालिका** आर्थिक दक्षता और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करती है।
- **शीघ्र और किफायती न्याय तक पहुंच अनुच्छेद 21 के तहत जीवन और सम्मान के अधिकार** का मूलभूत आधार है ।
- सुधार प्रणालीबद्ध होना चाहिए, प्रशासनिक सुधारों के साथ एकीकृत होना चाहिए तथा क्रियान्वयन नागरिक-केन्द्रित होना चाहिए।

भारत में न्यायिक नियुक्तियाँ

हालिया विकास:

- भारत के राष्ट्रपति ने हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय में **पांच नए न्यायाधीशों की नियुक्ति की है, जिससे न्यायाधीशों की** स्वीकृत **अधिकतम संख्या 34 में से बढ़कर 32 हो गई है** ।
- ये नियुक्तियां **सुप्रीम कोर्ट कॉलेजियम की सिफारिशों के आधार पर की गईं** , जिससे न्यायिक नियुक्तियों की चल रही प्रथा को बल मिला।

न्यायाधीशों की नियुक्ति से संबंधित संवैधानिक प्रावधान

सर्वोच्च न्यायालय – अनुच्छेद 124(2):

- **भारत के मुख्य न्यायाधीश (सीजेआई):** **राष्ट्रपति** द्वारा सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों से परामर्श के बाद, जैसा उचित समझा जाए, नियुक्त किया जाता है।
- **सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीश:** **राष्ट्रपति** द्वारा **मुख्य न्यायाधीश** तथा सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों से परामर्श के बाद , जैसा आवश्यक समझा जाए, नियुक्त किया जाता है।

उच्च न्यायालय – अनुच्छेद 217:

- **उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश:** **राष्ट्रपति** द्वारा निम्नलिखित के परामर्श के बाद नियुक्त :
  - **भारत के मुख्य न्यायाधीश**
  - **संबंधित राज्य के राज्यपाल**
- **उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीश:** **राष्ट्रपति** द्वारा निम्नलिखित के परामर्श से नियुक्त किये जाते हैं:
  - **भारत के मुख्य न्यायाधीश**
  - **संबंधित राज्य के राज्यपाल**
  - **संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश**

कॉलेजियम प्रणाली (न्यायिक मिसाल-आधारित अभ्यास):

- कॉलेजियम एक निकाय है जिसके अध्यक्ष **भारत के मुख्य न्यायाधीश** तथा सर्वोच्च न्यायालय के **चार वरिष्ठतम न्यायाधीश होते हैं ।**
- यह निम्नलिखित के लिए नामों की सिफारिश करने के लिए जिम्मेदार है:
  - सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की **नियुक्ति और स्थानांतरण ।**

- यद्यपि संविधान में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है, लेकिन **कॉलेजियम प्रणाली सर्वोच्च न्यायालय के प्रमुख निर्णयों** , विशेषकर **तीन न्यायाधीशों के मामलों (1981, 1993 और 1998) के माध्यम से विकसित हुई, जो न्यायिक नियुक्तियों की वर्तमान प्रणाली** का आधार बनी ।

तीन न्यायाधीशों वाले मामले

न्यायाधीश नियुक्ति संबंधी प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय न्यायाधीश मामलों का विकास

मामला	निर्णय एवं सिद्धांत (हिंदी में)
प्रथम न्यायाधीश मामला *एस.पी. गुप्ता मामला, 1981*	मुख्य न्यायाधीश (CJI) से परामर्श का अर्थ सहमति नहीं, केवल विचार-विनिमय; कार्यपालिका (राष्ट्रपति) को निर्णय में अधिक अधिकारशीलता।
द्वितीय न्यायाधीश मामला, 1993	CJI से परामर्श का अर्थ सहमति—CJI द्वारा दी गई सलाह राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी; परामर्श से पूर्व CJI को दो वरिष्ठतम न्यायाधियों की राय भी लेनी होती है।
तृतीय न्यायाधीश मामला, 1998	CJI अपनी राय बनाने हेतु चार वरिष्ठतम सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधियों से परामर्श करेगा, जिससे कॉलेजियम प्रणाली में न्यायपालिका की प्राथमिक भूमिका और पारदर्शिता सुनिश्चित हो।

कॉलेजियम प्रणाली में अंतराल और चुनौतियाँ

कॉलेजियम प्रणाली से संबंधित मुद्दे:

- **संवैधानिक समर्थन का अभाव:** कॉलेजियम संविधान द्वारा स्पष्ट रूप से बनाया गया निकाय नहीं है। इसका अस्तित्व न्यायिक व्याख्या से उपजा है, जिससे **स्व-नियुक्ति में न्यायिक अतिक्रमण की चिंताएँ बढ़ रही हैं** ।
- **पारदर्शिता की कमी:** कॉलेजियम के आंतरिक कामकाज को सार्वजनिक जांच से काफी हद तक छिपाया जाता है, जिससे **गैर-पारदर्शिता और गैर-जवाबदेही की धारणा को बढ़ावा मिलता है** , जो लोकतांत्रिक लोकाचार के विपरीत है।
- **विधि आयोग की चिंताएं (230वीं रिपोर्ट):** रिपोर्ट में **भाई-भतीजावाद, पक्षपात और वस्तुनिष्ठता की कमी जैसे मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है** , जिसे अक्सर **"अंकल जज सिंड्रोम" कहा जाता है** , जहां व्यक्तिगत संबद्धता योग्यता से अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।
- **अनुच्छेद 74 विरोधाभास:** कॉलेजियम **राष्ट्रपति के लिए मंत्रिपरिषद की सलाहकार भूमिका को दरकिनार कर देता है** , जिससे नियुक्तियों में कार्यकारी बहिष्कार पर संवैधानिक चिंताएं पैदा होती हैं।
- **वरिष्ठता बनाम योग्यता पर बहस:** वरिष्ठता के कठोर अनुपालन के कारण, कम योग्य लेकिन वरिष्ठ न्यायाधीशों के पक्ष में **योग्य उम्मीदवारों की अनदेखी की जाती है ।**
- **अपर्याप्त नियुक्ति प्रक्रिया: न्यायिक रिक्तियों को कुशलतापूर्वक भरने के लिए** प्रणाली संघर्षरत रही है , जिसके परिणामस्वरूप

लंबित मामलों की संख्या बढ़ती जा रही है और न्यायालयों पर कार्यभार का अत्यधिक बोझ बढ़ रहा है।

- **संस्थागत निगरानी का अभाव: द्वितीय न्यायाधीश मामले** के बाद , मुख्य न्यायाधीश की सिफारिशें राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी हो गईं, जिससे **कार्यपालिका की जांच लगभग समाप्त हो गई** , जिसके परिणामस्वरूप न्यायपालिका के भीतर **सत्ता का संकेन्द्रण हो गया।**

सुधार और आगे की राह:

- **एम.ओ.पी. को शीघ्र अंतिम रूप देना:** पारदर्शिता और समय पर कार्रवाई सुनिश्चित करने के लिए नियुक्तियों के लिए **प्रक्रिया ज्ञापन को** अंतिम रूप देना आवश्यक है।
- **स्वतंत्र एवं स्थायी नियुक्ति आयोग: स्वतंत्रता के लिए पर्याप्त सुरक्षा उपायों** के साथ एक समर्पित निकाय , जो **न्यायिक प्रधानता सुनिश्चित करता है, लेकिन विशिष्टता नहीं** , एक संतुलित संरचना बनाए रख सकता है।
- **संयुक्त परामर्श तंत्र:** समय पर और प्रभावी नियुक्तियों के लिए **न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच** एक सहयोगात्मक प्रक्रिया महत्वपूर्ण है, जिससे विविधता, अखंडता और क्षमता सुनिश्चित होती है।
- **योग्यता-आधारित, पारदर्शी मानदंड: स्पष्ट रूप से परिभाषित पात्रता मानकों** की स्थापना से चयन और अस्वीकृति के निर्णयों को स्पष्ट करने में मदद मिलेगी, जिससे जनता का विश्वास बढ़ेगा।
- **कॉलेजियम के निर्णयों का प्रकाशन: अपनी सिफारिशों के कारणों को उजागर करने की सर्वोच्च न्यायालय की पहल,** खुलेपन की दिशा में एक स्वागत योग्य कदम है।
- **राष्ट्रपति को पैनल-आधारित अनुशंसा:** कार्यकारी भागीदारी के तत्व को बहाल करने के लिए कॉलेजियम को स्पष्ट तर्क के साथ प्राथमिकता के आधार पर **पात्र नामों की एक सूची या पैनल की अनुशंसा करनी चाहिए।**
- **विधि आयोग का प्रस्ताव:** विधायिका **न्यायिक नेतृत्व और कार्यकारी इनपुट के बीच संतुलन बनाने के लिए एक कानून पारित करने पर विचार कर सकती है** , जिससे एक जवाबदेह लेकिन स्वतंत्र नियुक्ति तंत्र का निर्माण हो सके।

न्यायाधीशों को हटाना: संवैधानिक तंत्र और मुद्दे

निष्कासन का संवैधानिक आधार (अनुच्छेद 124(4)):

- सर्वोच्च **न्यायालय के न्यायाधीश को केवल राष्ट्रपति द्वारा ही** हटाया जा सकता है , और वह भी निम्नलिखित आधारों पर:
  - **सिद्ध कदाचार** या
  - **अक्षमता**
- निष्कासन के लिए **संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत** (अर्थात् कुल सदस्यों का बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वालों का दो-तिहाई बहुमत) के माध्यम से अनुमोदन की आवश्यकता होती है।

मौजूदा निष्कासन प्रक्रिया में समस्याएं:

- **शब्दावली में अस्पष्टता** : संविधान में *"दुर्व्यवहार" जैसे शब्द अपरिभाषित हैं, जिससे व्याख्या व्यक्तिपरक हो जाती है।*
- **बोझिल प्रक्रिया** : महाभियोग की प्रक्रिया **जटिल है और शायद ही कभी सफल होती है** , जिससे न्यायाधीश व्यावहारिक रूप से जवाबदेह नहीं होते।

- **संस्थागत पृथक्करण का अभाव** :
    - जांच समिति (न्यायाधीश जांच अधिनियम, 1968 के तहत) में वरिष्ठ न्यायाधीश शामिल होते हैं, जो अक्सर सर्वोच्च न्यायालय से होते हैं, जिसके कारण *"न्यायाधीशों द्वारा न्यायाधीशों का मूल्यांकन" वाली* स्थिति उत्पन्न हो जाती है।
- **कार्यवाही में अस्पष्टता** : जांच प्रक्रिया में सार्वजनिक पारदर्शिता का अभाव है; विचार-विमर्श बंद दरवाजों के पीछे होता है।
- **अंतरिम निलंबन नहीं** : जांच के अंतर्गत आने वाले न्यायाधीश का **कार्य जारी है,** क्योंकि उनके पद से हटने का कोई कानूनी आदेश नहीं है।
- **राजनीतिक हस्तक्षेप** : उदाहरण के लिए, **न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी मामले (1993) में** राजनीतिक बहिष्कार (कांग्रेस द्वारा) देखा गया, जिसके कारण प्रतिकूल निष्कर्षों के बावजूद निष्कासन प्रस्ताव विफल हो गया।

सुझाए गए सुधार और आगे का रास्ता:

- **पारदर्शी नियुक्तियाँ** : **प्रक्रिया ज्ञापन (एमओपी) में** बाद में विवादों को रोकने के लिए न्यायिक नियुक्तियों में केंद्रीय मानदंड के रूप में ईमानदारी पर जोर दिया जाना चाहिए।
- **राष्ट्रीय न्यायिक परिषद प्रस्ताव (2006 विधेयक)** :
    - उच्च न्यायपालिका के न्यायाधीशों के विरुद्ध शिकायतों की जांच के लिए एक **राष्ट्रीय न्यायिक परिषद (एनजेसी) की स्थापना करें।**
    - कदाचार या अक्षमता के संबंध में **शिकायत प्रस्तुत करने की** अनुमति दें ।
- **स्वतंत्र निरीक्षण तंत्र** :
    - न्यायपालिका, कार्यपालिका और नागरिक समाज के प्रतिनिधित्व के साथ एक **राष्ट्रीय न्यायिक निगरानी समिति** बनाएं ।
    - इसे **जांच करने, कार्रवाई की सिफारिश करने** और जवाबदेही लागू करने का अधिकार दिया जाएगा।
- **अंतरिम प्रतिबंध** : गंभीर आरोपों का सामना कर रहे न्यायाधीशों को **स्वेच्छा से न्यायिक कार्य से अलग हो जाना चाहिए** या जांच लंबित रहने तक उन्हें **अस्थायी रूप से न्यायिक कार्य से प्रतिबंधित कर दिया जाना चाहिए।**
- **राजनीतिकरण को रोकें** : निष्कासन योग्यता और नैतिकता के आधार पर होना चाहिए, न कि राजनीतिक बहुमत या गठबंधन के आधार पर।

न्यायिक जवाबदेही – एक लोकतांत्रिक अनिवार्यता

अर्थ:

न्यायिक जवाबदेही से तात्पर्य इस विचार से है कि न्यायाधीशों को अपने निर्णयों और आचरण के लिए जवाबदेह होना चाहिए, जिससे न्यायिक प्रक्रिया में पारदर्शिता सुनिश्चित हो सके। इसका मतलब संस्थागत निगरानी, आंतरिक जाँच या सूचना के अधिकार (आरटीआई) जैसे तंत्रों के माध्यम से व्यापक सार्वजनिक जाँच हो सकता है।

न्यायिक जवाबदेही क्यों आवश्यक है:

1. **जनता का विश्वास बनाए रखना:**
   न्यायाधीशों द्वारा विवादास्पद टिप्पणियां (जैसे यौन हिंसा के मामलों में) और मामलों को चुनिंदा रूप से सूचीबद्ध करने से न्यायपालिका की निष्पक्षता में जनता का विश्वास खत्म हो सकता है।
2. **अपारदर्शी नियुक्ति तंत्र:**
   कॉलेजियम प्रणाली, जिसमें न्यायाधीश न्यायाधीशों की नियुक्ति करते हैं, में पारदर्शिता का अभाव है तथा कार्यपालिका या विधायिका का इनपुट इसमें शामिल नहीं है।
3. **हितों का टकराव:**
   मुख्य न्यायाधीश द्वारा 'मास्टर ऑफ रोस्टर' के रूप में कार्य करने जैसी शक्तियों के संकेन्द्रण ने प्रश्न खड़े कर दिए हैं, विशेषकर तब जब मुख्य न्यायाधीश संबंधित मामलों में एक पक्षकार हों।
4. **संदिग्ध आचरण:**
   भ्रष्टाचार (न्यायमूर्ति रामास्वामी मामला) या यौन दुराचार (न्यायमूर्ति रंजन गोगोई प्रकरण) जैसे आरोप शीर्ष न्यायाधीशों की ईमानदारी पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं।
5. **पारदर्शिता का अभाव:**
   शिकायतों से निपटने के लिए आंतरिक तंत्र का उपयोग किया जाता है, लेकिन इनमें सार्वजनिक जवाबदेही और बाह्य निगरानी का अभाव होता है।
6. **सूचना का अभाव:**
   आरटीआई के तहत सर्वोच्च न्यायालय के नियमों में सूचना में देरी के लिए समयसीमा या अपील प्रक्रिया निर्धारित नहीं की गई है, जिससे अस्पष्टता बढ़ रही है।
7. **अवमानना प्रावधानों का दुरुपयोग:**
   न्यायालय की अवमानना का साधन, यद्यपि महत्वपूर्ण है, लेकिन इसका प्रयोग वैध आलोचना (जैसे, प्रशांत भूषण, कुणाल कामरा) के विरुद्ध किया गया है, जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बाधित करता है।
8. **न्यायिक अतिक्रमण:**
   नागरिक शिकायतों के समाधान के प्रयास में, न्यायपालिका कभी-कभी कार्यपालिका के क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है (उदाहरण के लिए, राजमार्गों के पास शराब पर प्रतिबंध, राष्ट्रगान अनिवार्य करना)।
9. **जवाबदेही के बिना स्वतंत्रता:**
   न्यायिक स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि उसे जांच से अलग रखा जाए। अन्यथा, व्यक्तिगत विवेक संवैधानिक नैतिकता को दरकिनार कर सकता है।

अब तक उठाए गए कदम:

- **न्यायिक मूल्यों का पुनर्कथन (1997) और बैंगलोर सिद्धांत (2002):**
  न्यायाधीशों से अपेक्षित आचरण को रेखांकित करने वाली नैतिक रूपरेखाएँ।
- **न्यायिक मानक एवं जवाबदेही विधेयक, 2010:**
  शिकायतों की जांच करने तथा कार्रवाई या निष्कासन का सुझाव देने के लिए एक राष्ट्रीय न्यायिक निरीक्षण समिति का प्रस्ताव।
- **कार्यवाही की लाइव स्ट्रीमिंग:**
  खुलेपन और जागरूकता को बढ़ावा देने के लिए हाल ही में सुप्रीम कोर्ट द्वारा अनुमोदित।
- **मसौदा एम.ओ.पी. (2016):**
  इसमें योग्यता और निष्ठा को मुख्य चयन मानदंड के रूप में प्रस्तावित किया गया; नियुक्तियों और प्रदर्शन पर नज़र रखने के लिए एक स्थायी सचिवालय की भी मांग की गई।

- **आरटीआई निर्णय (सुप्रीम कोर्ट बनाम सुभाष चंद्र अग्रवाल):**
  निर्णय में कहा गया कि मुख्य न्यायाधीश का कार्यालय आरटीआई के अधीन है, जिससे पारदर्शिता को बढ़ावा मिलता है।

भविष्य के लिए सुझाए गए उपाय:

1. **एक स्वतंत्र न्यायिक लोकपाल (लोकपाल-प्रकार का निकाय) बनाएं:**
   न्यायाधीशों के विरुद्ध शिकायतों के समाधान के लिए एक विश्वसनीय और स्वायत्त तंत्र।
2. **आचार संहिता:**
   सभी न्यायाधीशों के लिए एक कानूनी रूप से बाध्यकारी और विस्तृत आचार संहिता अपनाई जानी चाहिए और उसे लागू किया जाना चाहिए।
3. **दो-स्तरीय जवाबदेही संरचना:**
   मामूली कदाचार के लिए दंड या निलंबन हो सकता है; बड़े उल्लंघन के लिए निष्कासन कार्यवाही हो सकती है।
4. **विविधता और संवेदनशीलता सुनिश्चित करें:**
   न्यायाधीशों के चयन में भारत की बहुलता प्रतिबिंबित होनी चाहिए और इसमें लैंगिक संवेदनशीलता, सामाजिक जागरूकता और क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व जैसे मानदंड शामिल होने चाहिए।
5. **अकादमिक जांच और मीडिया सतर्कता:**
   जैसा कि अरुण शौरी ने कहा है: *"निर्णयों का अध्ययन और उन पर सार्वजनिक रूप से बहस होनी चाहिए ताकि न्यायाधीशों को पता चले कि उनसे मानकों की अपेक्षा की जा रही है।"*

न्यायिक सक्रियता और न्यायिक अतिक्रमण

विषय	न्यायिक सक्रियता	न्यायिक अतिक्रमण
परिभाषा	यह न्यायपालिका द्वारा एक सक्रिय एवं आक्रमक भूमिका है, जिसमें कार्यपालिका और विधायिका को उनके संवैधानिक कर्तव्यों का निर्वहन करने हेतु प्रेरित किया जाता है, ताकि नागरिकों के अधिकारों की रक्षा हो सके।	न्यायिक सक्रियता का चरम रूप, जिसमें न्यायपालिका द्वारा मनमाने एवं अनुचित हस्तक्षेप के माध्यम से विधायिका अथवा कार्यपालिका के क्षेत्र में दखल दिया जाता है।
उदाहरण	सूखे से निपटने के लिए नई नीति बनाने का निर्देशन, बैड लोन जांच समिति का गठन, कश्मीर में इंटरनेट सेवा बहाल करने का आदेश आदि।	सड़क सुरक्षा से संबंधित पीआईएल पर फैसला देते हुए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राष्ट्रीय/राज्य राजमार्ग से 500 मी के दायरे में स्थित होटलों, रेस्टोरेंट और बार में शराब बिक्री पर पाबंदी।

भारत में न्यायिक सक्रियता – एक लोकतांत्रिक साधन या अतिक्रमण?

न्यायिक सक्रियता के साधन

- **संवैधानिक व्याख्या** : न्यायपालिका अक्सर समाज की उभरती जरूरतों के अनुरूप संवैधानिक प्रावधानों के अर्थ का विस्तार करती है।
- **न्यायिक समीक्षा** : विधायी और कार्यकारी कार्यों की संवैधानिकता की जांच करने की

शक्ति। संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करने वाले किसी भी कार्य को अमान्य किया जा सकता है।

- **जनहित याचिका (पीआईएल)** : न्यायालय सीधे तौर पर प्रभावित न होने वाले व्यक्तियों द्वारा दायर याचिकाओं को स्वीकार करते हैं, बशर्ते वे व्यापक रूप से जनता के हितों का प्रतिनिधित्व करते हों।
- **पर्यवेक्षी प्राधिकरण** : उच्च न्यायालय उचित प्रक्रिया सुनिश्चित करने के लिए अधीनस्थ न्यायालयों के कामकाज की निगरानी करते हैं।
- **अंतर्राष्ट्रीय कानून का संदर्भ** : न्यायालय संवैधानिक गारंटियों की व्याख्या करने के लिए वैश्विक मानवाधिकार सम्मेलनों या पर्यावरण मानदंडों का संदर्भ लेते हैं।

न्यायिक सक्रियता के लाभ

- **मनमानी शक्ति पर अंकुश** : नवीन और साहसिक उपाय प्रदान करता है। *उदाहरण* : ताजमहल के पास प्रदूषणकारी उद्योगों को बंद करने से सांस्कृतिक विरासत की रक्षा हुई।
- **सामाजिक सुधार के लिए न्यायिक विवेक** : *उदाहरण* : *विशाखा दिशानिर्देश* (1997) ने कानून के अभाव में महिलाओं के लिए कार्यस्थल सुरक्षा मानदंड निर्धारित किए।
- **लोकतांत्रिक सुगम्यता** : जनहित याचिकाओं की अनुमति देकर न्यायपालिका ने कठोर 'लोकस स्टैंडाई' नियमों से आगे बढ़कर स्वयं को आम नागरिकों के लिए अधिक सुलभ बना दिया है।
- **समग्र न्याय प्रदान करना** : *उदाहरण :* भोपाल गैस त्रासदी में मुआवजा दिलाने तथा भीड़भाड़ वाली जेलों से विचाराधीन कैदियों को मुक्त कराने के लिए **अनुच्छेद 142** का उपयोग ।
- **त्वरित निर्णय लेना** : *उदाहरण* : दिल्ली में पुराने वाहनों पर प्रतिबंध लगाने से प्रदूषण संबंधी चिंताओं का त्वरित समाधान हुआ, जबकि विधायी प्रक्रिया धीमी थी।

न्यायिक सक्रियता से जुड़ी चिंताएँ

- **संवैधानिक सीमाओं का अतिक्रमण** : कभी-कभी न्यायिक घोषणाएं कानून बनाने के समान होती हैं, तथा विधायी क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण करती हैं।
- **संस्थागत संतुलन में व्यवधान : बार-बार हस्तक्षेप से शक्तियों के पृथक्करण** का सिद्धांत कमजोर हो जाता है , जिससे लोकतंत्र की संरचनात्मक अखंडता कमजोर हो जाती है।
- **लोकतांत्रिक घाटा** : चूंकि न्यायाधीश निर्वाचित नहीं होते, इसलिए शासन में उनकी व्यापक भूमिका **न्यायिक अत्याचार की चिंता को जन्म देती है** ।
- **व्यक्तिगत पूर्वाग्रह** : ऐसी आशंकाएं हैं कि न्यायाधीश सख्त कानूनी व्याख्या के बजाय व्यक्तिपरक या वैचारिक झुकाव के आधार पर निर्णय दे सकते हैं।
- **नजीर का जाल** : एक मामले में न्यायिक व्याख्याएं अक्सर अन्य मामलों के लिए बाध्यकारी हो जाती हैं, भले ही सामाजिक संदर्भ अलग हों।
- **व्यावहारिक समझ का अभाव** : न्यायिक आदेश प्रशासनिक और आर्थिक बाधाओं को नजरअंदाज कर सकते हैं। *उदाहरण* : बीएस-IV वाहनों पर अचानक प्रतिबंध लगाने से लॉजिस्टिक संबंधी

समस्याओं और समय सीमा विस्तार का सामना करना पड़ा।

न्यायिक अतिक्रमण: एक कदम बहुत आगे

- **कार्यपालिका एवं विधायिका पर अतिक्रमण : अनुच्छेद 142** का व्यापक उपयोग संयमित न्यायिक आचरण की अवधारणा को कमजोर कर सकता है।
- **जमीनी हकीकतों की अनदेखी** : संसाधन क्षमता और प्रशासनिक सीमाओं का आकलन किए बिना न्यायिक आदेश नुकसान पहुंचा सकते हैं।
  उदाहरण : कोयला और दूरसंचार लाइसेंस रद्द करने से वित्तीय संस्थान बुरी तरह प्रभावित हुए।
- **जवाबदेही का अभाव** : अन्य अंगों के विपरीत, न्यायपालिका को सीधे चुनावी या संसदीय जांच का सामना नहीं करना पड़ता है। **अवमानना शक्तियों का दुरुपयोग** आलोचना को दबा सकता है।
- **आर्थिक और सामाजिक व्यवधान** : *उदाहरण* : राजमार्गों के 500 मीटर के भीतर शराब पर प्रतिबंध से व्यापक बेरोजगारी पैदा हुई, जबकि दुर्घटनाओं पर इसके प्रभाव के बारे में सीमित आंकड़े उपलब्ध हैं।

आगे बढ़ने का रास्ता

- **विधायी प्रक्रिया को मजबूत बनाना** : अच्छी तरह से तैयार किए गए कानून न्यायिक सुधार की आवश्यकता को कम करते हैं।
- **न्यायिक आत्म-संयम** : न्यायालयों को विधायी या कार्यकारी कार्यों को संभालने से बचना चाहिए, जब तक कि कोई संवैधानिक शून्यता न हो।
- **सुरक्षा अनुच्छेद 142 का प्रयोग : असाधारण शक्तियों का प्रयोग करने वाले मामलों को** मजबूत विचार-विमर्श के लिए एक **बड़ी संवैधानिक पीठ** द्वारा निपटाया जाना चाहिए ।
- **संस्थागत संतुलन बनाए रखें : संवैधानिक सद्भाव** बनाए रखने के लिए सरकार की प्रत्येक शाखा को अपनी परिभाषित भूमिका के अंतर्गत कार्य करना चाहिए ।
- **जन-केन्द्रित शासन** : न्याय, कल्याण और लोकतंत्र सुनिश्चित करने के लिए तीनों अंगों को एक-दूसरे के अधिकार क्षेत्र का सम्मान करते हुए मिलकर काम करना चाहिए।

न्यायिक सक्रियता और न्यायिक संयम में अंतर

पैरामीटर	न्यायिक सक्रियता	न्यायिक संयम
परिभाषा	यह न्यायपालिका की वह विचारधारा है जो केवल कानून की वैधता की जांच करने से परे जाकर सक्रिय भूमिका निभाती है।	यह न्यायपालिका की वह विचारधारा है जिसमें कानून को असंवैधानिक ठहराने या सरकार के अन्य अंगों के कार्यों में हस्तक्षेप करने से परहेज किया जाता है।
उपयोग	जब सुधार हेतु न्यायिक हस्तक्षेप की गुंजाइश हो।	जब सत्ता पृथक्करण बनाए रखने की आवश्यकता हो और अन्य शिकायत निवारण तंत्र उपलब्ध हों।
उदाहरण	न्यायालय द्वारा स्व-प्रेरित (Suo Motu) मामले उठाना राष्ट्रीय राजमार्गों पर शराब की बिक्री पर प्रतिबंध लगाना	दल-बदल कानून (Anti-Defection Law) में निर्णय के दौरान स्पीकर के कार्यवाहियों में न्यायपालिका का परहेज दिखाना।

प्रसिद्ध मामला	2G घोटाले के फैसले में दूरसंचार लाइसेंस रद्द करना।	एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ, 1994; अलमित्रा एच. पटेल बनाम भारत संघ, 1998।

न्यायालय की अवमानना – एक महत्वपूर्ण अवलोकन

कानून के तहत परिभाषा

अधिनियम **, 1971 में** अवमानना को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:

- **सिविल अवमानना** : न्यायालय के निर्णय, आदेश, निर्देश, रिट या न्यायालय के समक्ष दिए गए वचन की जानबूझकर अवहेलना।
- **आपराधिक अवमानना** (मूल पाठ में उल्लेखित नहीं है, लेकिन प्रासंगिक है): ऐसे कृत्य जो न्यायालय के अधिकार को बदनाम या कम करते हैं, या न्याय प्रशासन में बाधा डालते हैं।

संवैधानिक प्रावधान

- **अनुच्छेद 129** : **सर्वोच्च न्यायालय को** 'रिकॉर्ड न्यायालय' का दर्जा प्रदान करता है, जिसमें स्वयं की अवमानना के लिए दंडित करने की शक्ति है।
- **अनुच्छेद 215** : **उच्च न्यायालयों को** समान शक्तियां प्रदान करता है।
- **अनुच्छेद 142(2)** : सर्वोच्च न्यायालय को अपने निर्णयों को लागू करने के दौरान अवमानना के लिए दंडित करने हेतु कार्रवाई करने का अधिकार देता है।

अवमानना शक्ति की आवश्यकता क्यों है

- **न्यायिक गरिमा का संरक्षण** : न्यायपालिका को अपना अधिकार **लोगों की आस्था से प्राप्त होता है** ; अवमानना शक्ति इसकी पवित्रता को बनाए रखने में मदद करती है।
    - *उदाहरण : प्रीतम लाल बनाम मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय मामले* में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि अदालतों को अवमानना क्षेत्राधिकार के माध्यम से अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करनी चाहिए।
- **विधि के नियम का आधार** : न्यायिक आदेशों की अवहेलना कानूनी सर्वोच्चता के मूल सिद्धांत को ख़तरे में डालती है।
- **कानून के समक्ष समानता कायम रखना** : यह सुनिश्चित करने में मदद करता है कि शक्तिशाली लोग भी अदालती फैसलों का अनुपालन करें।
- **न्यायिक स्वतंत्रता** : यह न्यायपालिका को **मीडिया ट्रायल** और लोकलुभावन दबाव जैसे बाहरी प्रभावों से बचाती है।
- **उचित प्रतिबंध** : **अनुच्छेद 19(2) के तहत** , अवमानना कानून भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर एक अनुमेय सीमा के रूप में कार्य करते हैं।
- **विधि आयोग की 274वीं रिपोर्ट** : दुरुपयोग से बचने के लिए सुरक्षा उपायों की सिफारिश की गई।
    - *उदाहरण* : अधिनियम की धारा 13 में कहा गया है कि यदि अवमानना का प्रभाव मामूली है, तो अदालत को दंड देने की आवश्यकता नहीं है।

हस्तक्षेप की व्यापक व्याख्या

ब्रह्म प्रकाश शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मामले में यह माना गया कि न्यायिक प्रक्रिया को **संभावित नुकसान भी अवमानना प्रावधानों को आकर्षित कर सकता है - वास्तविक व्यवधान को साबित करने की आवश्यकता नहीं है।**

वर्तमान अवमानना ढांचे के विरुद्ध तर्क

- **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता** : लोकतंत्र में न्यायपालिका की सार्वजनिक जांच **अपरिहार्य और स्वस्थ दोनों है** ।
- **न्यायिक जवाबदेही का अभाव** : अवमानना की व्यापक शक्ति जवाबदेही के लिए आवश्यक वैध आलोचना में बाधा उत्पन्न कर सकती है।
- **अस्पष्टता** : *'न्यायालय को बदनाम करना' जैसी अस्पष्ट अभिव्यक्तियों का* दुरुपयोग असहमति को दबाने के लिए किया जा सकता है।
- **प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन** : अवमानना मामलों में शिकायतकर्ता, अभियोजक और निर्णयकर्ता के रूप में कार्य करने वाले न्यायाधीश **निष्पक्षता के सिद्धांत का उल्लंघन करते हैं** ।
- **वैश्विक परिप्रेक्ष्य** :
    - **संयुक्त राज्य अमेरिका** : सार्वजनिक क्षेत्र में **न्यायालयों की स्वतंत्र चर्चा पर जोर देता है। न्यायिक प्रतिष्ठा जनता के विश्वास से उत्पन्न होनी चाहिए, न कि सुरक्षात्मक कानूनों से।**
    - कई न्यायक्षेत्रों में **अवमानना शक्तियों का प्रयोग संयम से किया जाता है** , व्यक्तिगत प्रतिष्ठा के लिए नहीं।

कार्यान्वयन में चुनौतियाँ

- **निपटान में विलंब** : कई अवमानना मामले **एक वर्ष की सीमा अवधि से भी अधिक समय तक लंबित रहते हैं** ।
- **अस्पष्ट सीमाएं** : प्रायः **निर्णय , न्यायाधीश** या **संस्था पर हमला करने के बीच कोई अंतर नहीं होता** ।

आगे बढ़ने का रास्ता

- **मनमाने प्रयोग को न्यूनतम करना** : अवमानना कानून को वस्तुनिष्ठ मानकों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए।
- **न्यायाधीश और संस्थान के बीच अंतर** : न्यायिक आचरण की आलोचना स्वचालित रूप से अवमानना में परिवर्तित नहीं होनी चाहिए।
- **जहां उचित हो वहां दंड में वृद्धि** : जहां हस्तक्षेप गंभीर हो, वहां निवारक दंड सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
- **संविधान के कार्यकरण की समीक्षा के लिए राष्ट्रीय आयोग (एनसीआरडब्ल्यूसी) ने अवमानना शक्ति** और **न्यायिक समीक्षा को** केवल सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय तक सीमित करने का सुझाव दिया ।
- **'मेन्स रीया' को शामिल करें** : केवल तभी अवमानना का दण्ड दें जब दुर्भावनापूर्ण इरादा स्थापित हो।
- **संस्थाओं को सम्मान अर्जित करना चाहिए** : न्यायालयों को आचरण और निष्ठा के माध्यम से विश्वास का निर्माण करना चाहिए - न कि केवल अवमानना की धमकियों के माध्यम से।

भारतीय न्यायपालिका में महिलाएँ

हालिया विकास:

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय में एक ऐतिहासिक क्षण आया, जब **पूरी पीठ में केवल महिलाएं थीं** , तथा इतिहास में इस तरह के गठन का यह केवल **तीसरा उदाहरण है** - जिससे उच्च न्यायपालिका में गहन लैंगिक प्रतिनिधित्व की आवश्यकता पर प्रकाश पड़ता है।

न्यायपालिका में लैंगिक अंतर के कारण

1. **सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाएँ:**
    - कानूनी पेशे में लंबे, अनियमित घंटों की आवश्यकता होती है, जो अक्सर **महिलाओं को पारंपरिक रूप से सौंपी गई घरेलू जिम्मेदारियों से टकराता है** , जिसके परिणामस्वरूप महिलाएं इस क्षेत्र से जल्दी बाहर हो जाती हैं।

2. **कठोर वरिष्ठता मानदंड:**
   - उच्च न्यायपालिका में पदोन्नति वरिष्ठता के आधार पर होती है। यह प्रणाली अक्सर **अनजाने में महिलाओं को दरकिनार कर देती है** , खासकर उन महिलाओं को जिनका करियर बाधित होता है।
3. **अपर्याप्त बुनियादी ढांचा:**
   - कई अदालतों में शौचालय या बच्चों की देखभाल जैसी **बुनियादी सुविधाओं का अभाव है। एक अध्ययन से पता चला है कि 22% ट्रायल कोर्ट में महिलाओं के लिए शौचालय की कमी है** , जिससे उनकी भागीदारी कम हो रही है।
4. **आरक्षण का अभाव:**
   - जबकि कई राज्य **निचली न्यायपालिका में आरक्षण प्रदान करते हैं** , **उच्च न्यायालयों या सर्वोच्च न्यायालय में ऐसी कोई सकारात्मक कार्रवाई मौजूद नहीं है** ।
5. **प्रतिबंधात्मक पात्रता मानदंड:**
   - 7 **वर्षों का निर्बाध कानूनी अभ्यास** और **आयु सीमा (35-45)** जैसी आवश्यकताएं कई महिलाओं को जिला न्यायाधीश पदों के लिए आवेदन करने से रोकती हैं।
6. **महिला अधिवक्ताओं की संख्या सीमित:**
   - **मुकदमेबाजी में महिलाओं की कम भागीदारी से** न्यायिक नियुक्तियों के लिए उम्मीदवारों की उपलब्धता कम हो जाती है।
7. **स्थानांतरण नीति की चुनौतियाँ:**
   - **हर तीन साल में बार-बार होने वाला स्थानांतरण एक बाधा के रूप में कार्य करता है, विशेष रूप से महिलाओं की घरेलू जिम्मेदारियों के बारे में सामाजिक अपेक्षाओं के** कारण ।
8. **गहरी जड़ें जमाए बैठी पितृसत्ता:**
   - **लैंगिक पूर्वाग्रह और रूढ़िवादिता** , भर्ती, पदस्थापना और कानूनी भूमिकाओं को संभालने में महिलाओं की क्षमता के बारे में धारणा को प्रभावित करती है।

महिला न्यायाधीश क्यों मायने रखती हैं?

1. **न्याय तक पहुंच:**
   - महिला न्यायाधीश और वकील **यौन हिंसा के पीड़ितों को** मामले दर्ज कराने और न्याय मांगने में अधिक सहज बना सकती हैं।
2. **बेहतर निर्णय गुणवत्ता:**
   - **सहानुभूति, निष्पक्षता और सूक्ष्म समझ** अक्सर महिला न्यायाधीशों के साथ जुड़ी होती है, जिससे न्यायिक परिणामों में सुधार होता है।
3. **लोगों का भरोसा:**
   - लिंग **-समावेशी पीठ** नागरिकों की नजर में न्यायपालिका की वैधता और विश्वसनीयता को मजबूत करती है।
4. **लिंग संबंधी मानदंडों को तोड़ना:**
   - महिला प्रतिनिधित्व इस **गलत धारणा को चुनौती देता है कि महिलाएं मुकदमेबाजी या उच्च दबाव वाली भूमिकाओं के लिए अनुपयुक्त हैं** ।
5. **वैश्विक लक्ष्य:**
   - सार्वजनिक सेवाओं में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए **एसडीजी 5 (लैंगिक समानता)** और **एसडीजी 16 (समावेशी संस्थान)** के साथ संरेखित करता है ।
6. **व्याख्या में विविध लेंस:**
   - महिलाएं अपने साथ **अद्वितीय जीवन अनुभव लेकर आती हैं** तथा कानूनों, विशेषकर हाशिए पर पड़े समुदायों को प्रभावित करने वाले कानूनों पर विविध दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं।
7. **सशक्तिकरण का प्रतीक:**
   - उच्च न्यायपालिका में महिलाएं **प्रत्यक्ष रोल मॉडल के रूप में कार्य करती हैं** तथा युवा

महिलाओं को कानून और नेतृत्व के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं।

आगे बढ़ने का रास्ता

1. **डेटा और प्रतिनिधित्व योजना:**
   - **पात्र महिलाओं का डेटाबेस** बनाए रखें तथा **समावेशी प्रतिनिधित्व** , विशेष रूप से हाशिए पर पड़ी महिलाओं का प्रतिनिधित्व दर्शाने के लिए नियुक्ति तंत्र को संशोधित करें ।
2. **संवेदीकरण अभियान:**
   - पुराने या प्रतिगामी विचारों वाले न्यायाधीशों के लिए **लिंग-संवेदनशीलता सत्र** आयोजित करें , विशेष रूप से **लिंग-आधारित हिंसा से संबंधित मामलों में** ।
3. **प्रतिधारण और सुरक्षा:**
   - निरंतरता को प्रोत्साहित करने के लिए महिला वकीलों और निचली अदालत के न्यायाधीशों के लिए **स्थिर आय, बेहतर भत्ते और सहायता प्रणाली** की पेशकश करें ।
4. **योग्यता आधारित मूल्यांकन:**
   - ऐसी संस्कृति को बढ़ावा दें जहां **क्षमता लैंगिक रूढ़िवादिता से अधिक महत्वपूर्ण हो** , तथा प्रदर्शन के आधार पर उचित अवसर प्रदान किए जाएं।
5. **उच्च न्यायपालिका में आरक्षण:**
   - **महिलाओं के लिए क्षैतिज आरक्षण पर** विचार करें , जैसा कि निचली न्यायपालिका में है, योग्यता से समझौता किए बिना।

फास्ट-ट्रैक कोर्ट (एफटीसी) और फास्ट-ट्रैक विशेष कोर्ट (एफटीएससी)

हालिया अपडेट:

केंद्रीय कानून मंत्री ने हाल ही में **त्वरित न्याय सुनिश्चित करने के लिए** , विशेष रूप से संवेदनशील मामलों में, त्वरित न्याय अदालतों और त्वरित विशेष न्यायालयों की **स्थापना में तेजी लाने की आवश्यकता पर बल दिया।**

संवैधानिक समर्थन:

- **अनुच्छेद 247 संसद को कानूनों, विशेषकर संघ सूची** से संबंधित कानूनों के अधिक प्रभावी प्रशासन के लिए **अतिरिक्त न्यायालय** स्थापित करने का अधिकार देता है ।

विकास समयरेखा:

- **11वें वित्त आयोग (2000):** मामलों के निपटान में तेजी लाने के लिए **1734 एफटीसी** के गठन की सिफारिश की गई , विशेष रूप से **विचाराधीन कैदियों से संबंधित मामलों के निपटान में तेजी लाने के लिए** ।
- **उच्च न्यायालयों को** सेवानिवृत्त न्यायाधीशों और योग्य अधिवक्ताओं में से **तदर्थ न्यायाधीशों की** नियुक्ति करने का अधिकार दिया गया ।
- **2005** तक 1500 से अधिक **एफटीसी कार्यरत थे, जिन्हें 2011** तक निरन्तर केन्द्रीय समर्थन प्राप्त था , उसके बाद वित्तपोषण बंद कर दिया गया।
- **2011** के बाद एफटीसी के रखरखाव की जिम्मेदारी **राज्य सरकारों पर आ गयी** ।
- **14वां वित्त आयोग (2015): ₹4144 करोड़** के सांकेतिक निधि आवंटन के साथ **1800 नए एफटीसी का** प्रस्ताव किया गया , जिससे राज्यों को उनके वित्त पोषण के लिए अपने बढ़े हुए कर हिस्से (42%) का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

हालिया पहल:

- **विधि एवं न्याय मंत्रालय ने** राष्ट्रीय **महिला सुरक्षा मिशन (एनएमएसडब्ल्यू)** के अंतर्गत **बलात्कार और पोक्सो अधिनियमों** के तहत मामलों के लिए **1023 फास्ट-ट्रैक विशेष अदालतें** स्थापित करने की योजना शुरू की है ।

उल्लेखनीय मामले निपटाये गये:

- **26/11 मुंबई आतंकी हमला**
- **बेस्ट बेकरी केस (2002 गुजरात दंगे)**

फास्ट-ट्रैक न्यायालयों के लाभ:

- **लंबित मामलों में कमी:** एफटीसी ने बड़ी संख्या में लंबित मामलों का निपटारा करके नियमित अदालतों पर बोझ को काफी हद तक कम कर दिया है।
- **न्यायिक दक्षता में वृद्धि:** सरलीकृत प्रक्रिया और केन्द्रित क्षेत्राधिकार से मामले का तेजी से निपटारा होता है, जिससे समग्र न्यायिक प्रदर्शन में सुधार होता है।
- **मामला-विशिष्ट विशेषज्ञता:** एफटीसी अक्सर विशिष्ट श्रेणियों (जैसे, महिलाओं के खिलाफ अपराध, भ्रष्टाचार) पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जिससे **डोमेन विशेषज्ञों को** न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करना संभव हो जाता है।
- **परिणामों में एकरूपता:** ये न्यायालय प्रायः प्रदर्शित करते हैं

फास्ट-ट्रैक कोर्ट: भूमिका, चुनौतियां और आगे का रास्ता

फास्ट-ट्रैक कोर्ट (एफटीसी) की भूमिका:

- **अपराध के विरुद्ध निवारण:** न्याय का शीघ्र वितरण एक मजबूत निवारक के रूप में कार्य करता है, जिससे समाज में अपराध की संभावना कम हो जाती है।
- **न्यायिक दक्षता:** शीघ्र सुनवाई से संस्थागत दक्षता में सुधार होता है और न्याय वितरण प्रणाली में जनता का विश्वास बहाल करने में मदद मिलती है।

एफटीसी कार्यप्रणाली में प्रमुख चुनौतियाँ:

1. संरचनात्मक बाधाएं:

- **अपर्याप्त न्यायिक शक्ति:** मुकदमों की संख्या की तुलना में फास्ट-ट्रैक कोर्ट और जजों की संख्या अपर्याप्त है।

  उदाहरण के लिए, दिल्ली में कई एफटीसी केवल 1-2 जजों के साथ काम करते हैं।

2. घटना-आधारित गठन (एड-हॉकिज्म):

- त्वरित न्यायिक प्रक्रियाएं (एफटीसी) अक्सर सनसनीखेज घटनाओं के जवाब में स्थापित की जाती हैं, न कि दीर्घकालिक लंबित मामलों के व्यवस्थित समाधान के रूप में।

3. बढ़ते मामले:

- न्यायिक जनशक्ति में आनुपातिक वृद्धि के बिना मामलों की संख्या बढ़ती जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप लंबित मामलों की संख्या बढ़ती जा रही है।

4. फास्ट-ट्रैक प्रक्रियाओं का अभाव:

- एफटीसी अक्सर नियमित सुनवाई प्रक्रियाओं का पालन करते हैं, जिससे समय का कोई लाभ नहीं मिलता।

  एनसीआरबी 2018 के अनुसार, एफटीसी में 28,000 मामलों में से 78% मामलों को निपटाने में एक साल से अधिक समय लगा।

5. बुनियादी ढांचे की कमी:

- कई एफटीसी मौजूदा न्यायालय परिसर में ही काम करते हैं और उनके पास समर्पित कमरे, डिजिटल उपकरण या वीडियो/ऑडियो रिकॉर्डिंग व्यवस्था का अभाव है।

6. वित्तपोषण संबंधी बाधाएं:

- *बृज मोहन लाल मामले* के अनुसार , सुप्रीम कोर्ट ने इस बात पर जोर दिया कि एफटीसी की निरंतरता राज्य के वित्तपोषण पर निर्भर करती है।

  पीआरएस (2019): 56% राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों में कोई एफटीसी नहीं था।

7. खंडित शासन:

- क्षेत्राधिकार का अतिव्यापन तथा विभिन्न न्यायाधिकरणों, त्वरित न्यायालयों और विशेष न्यायालयों के बीच समन्वय का अभाव प्रभावी कार्यप्रणाली को सीमित करता है।

आगे बढ़ने का रास्ता:

1. क्षमता वृद्धि:

- अधिक न्यायाधीशों और कर्मचारियों की भर्ती करें, एफटीसी को स्थायी बनाएं, और न्यायालय-विशिष्ट बुनियादी ढांचे और डिजिटल तकनीक में निवेश करें।

2. तकनीकी एकीकरण:

- बेहतर केस प्रबंधन, क्लस्टरिंग और प्राथमिकता निर्धारण के लिए **आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस** और **बिग डेटा टूल का** लाभ उठाएं ।

3. राज्य सरकारों को सशक्त बनाना:

- **मुख्यमंत्रियों और मुख्य न्यायाधीशों** के संयुक्त सम्मेलनों में सिफारिश की गई थी , राज्यों को त्वरित न्यायालयों की स्थापना करने और समय पर धन आवंटन सुनिश्चित करने के लिए उच्च न्यायालयों के साथ सक्रिय रूप से समन्वय करना चाहिए।

4. संस्थागत समन्वय:

- विभिन्न त्वरित न्यायाधिकरणों, न्यायाधिकरणों और विशेष न्यायालयों को एक साझा ढांचे के अंतर्गत एकीकृत करने के लिए केंद्रीय/राज्य स्तर पर एक **नोडल एजेंसी की स्थापना करना।**

5. व्यापक सुधार:

- पुलिस आधुनिकीकरण, प्रक्रियागत सरलीकरण, तथा मामले के निपटान की समयसीमा में तेजी लाने के लिए लक्षित सुधार शामिल करें।

सर्वोच्च न्यायालय की क्षेत्रीय पीठें – सुलभ न्याय की ओर एक कदम

संदर्भ एवं हालिया घटनाक्रम

संसद **की स्थायी समिति ने** अपनी **133वीं रिपोर्ट** जिसका शीर्षक है *"न्यायिक प्रक्रियाएँ और उनका सुधार" में* **भारत के सर्वोच्च न्यायालय** की **क्षेत्रीय पीठों** के निर्माण का प्रस्ताव रखा है । केंद्र सरकार ने इस सिफारिश पर विचार करने के लिए सैद्धांतिक रूप से सहमति दे दी है।

अनुच्छेद 130 के तहत , सर्वोच्च न्यायालय **दिल्ली के अलावा अन्य स्थानों पर भी बैठ सकता है** , जैसा कि राष्ट्रपति द्वारा मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से अधिसूचित किया जाएगा।

प्रस्ताव : दिल्ली **संवैधानिक मामलों की** सुनवाई जारी रख सकती है , जबकि चार या पांच क्षेत्रों में **अपीलीय पीठ** अपील मामलों को संभाल सकती हैं - उनके फैसले को **अंतिम माना जाएगा** , न कि केवल मध्यस्थ।

क्षेत्रीय पीठों पर आयोग की रिपोर्ट

- **95वीं रिपोर्ट (1984)** : सर्वोच्च न्यायालय के भीतर दो खंड बनाने का सुझाव दिया गया - एक **संवैधानिक पीठ** और एक **कानूनी पीठ** ।
- **229वीं रिपोर्ट (2009)** :
  - दिल्ली में एक **स्थायी संवैधानिक पीठ ।**
  - अपील के लिए **चार कैसेशन बेंच :**
    - **उत्तर** – दिल्ली
    - **दक्षिण** – चेन्नई या हैदराबाद
    - **पूर्व** – कोलकाता
    - **पश्चिम** – मुंबई

क्षेत्रीय बेंचों के पीछे तर्क

चिंता	स्पष्टीकरण
समावेशी न्याय (अनुच्छेद 39ए)	जब सर्वोच्च न्यायालय दिल्ली में केन्द्रित रहेगा तो *न्याय तक समान पहुंच* का सिद्धांत कमजोर हो जाएगा।
भौगोलिक बाधाएँ	पूर्वोत्तर जैसे दूरदराज के राज्यों को सर्वोच्च न्यायालय तक पहुंचने में रसद और वित्तीय चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।
केस बैकलॉग	से अधिक **लंबित मामले** (एनजेडीजी के अनुसार) न्याय में देरी का कारण बनते हैं।
संवैधानिक मामलों में गिरावट	पिछले दशक में सुप्रीम कोर्ट के केवल **0.12% फैसले संविधान पीठों (5+ जजों) द्वारा दिए गए, जो 1950 के दशक में 15% से कम है** । क्षेत्रीय पीठें नियमित मामलों को कम कर सकती हैं, जिससे दिल्ली

	संवैधानिक मामलों पर ध्यान केंद्रित कर सकती है।
मुकदमेबाजी संस्कृति और आर्थिक विकास	समृद्ध राज्यों में अक्सर नागरिक विवाद अधिक होते हैं, लेकिन देरी से समाधान और लंबित मामलों की अधिक संख्या न्याय प्रणाली में विश्वास को कम करती है। क्षेत्रीय पीठें इस असंतुलन को दूर कर सकती हैं।

पिछले अनुमोदन

- **संसदीय स्थायी समितियाँ** (2004, 2006, 2008): सुप्रीम कोर्ट बेंचों के विकेन्द्रीकरण का समर्थन किया।
- **विधि आयोग (229वीं रिपोर्ट)** : अपीलीय कार्य के लिए एक **केंद्रीकृत संवैधानिक पीठ** और **क्षेत्रीय पीठों की वकालत की गई।**
- **सर्वोच्च न्यायालय (1986)** : **चेन्नई, कोलकाता और मुंबई** में सीटों के साथ एक **राष्ट्रीय अपील न्यायालय का प्रस्ताव रखा गया** ।
- **वी. वसंत कुमार केस (2016)** : सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रीय अपील न्यायालय के प्रस्ताव को संविधान पीठ को भेज दिया।

चुनौतियाँ और आलोचनाएँ

चिंता	विवरण
सर्वोच्च प्राधिकरण का कमजोर होना	सुप्रीम कोर्ट को विभाजित करने को इसके **केंद्रीकृत अधिकार और कानूनी व्याख्या में एकरूपता को कमजोर करने के रूप में देखा जा सकता है** ।
मूल संरचना सिद्धांत	**अनुच्छेद 130 में** संशोधन को संविधान के **एकीकृत न्यायपालिका ढांचे का उल्लंघन माना जा सकता है** ।
न्यायिक विरोध	**2010** में तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने न्यायिक पदानुक्रम के विखंडन के डर से क्षेत्रीय पीठों का विरोध किया था।

निष्कर्ष

सुप्रीम कोर्ट की क्षेत्रीय बेंच बनाने से **पहुंच, दक्षता और न्याय वितरण में सुधार हो सकता है** , खासकर हाशिए के क्षेत्रों के लिए। हालांकि, मॉडल को **न्यायिक अखंडता** , **संवैधानिक संतुलन** और **संस्थागत सामंजस्य सुनिश्चित करना चाहिए।**

नालसा और न्याय तक पहुंच: एक समीक्षा-आधारित अंतर्दृष्टि

प्रसंग:

संसद **की स्थायी समिति ने हाल ही में विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987** के अंतर्गत कानूनी सहायता प्रावधानों की कार्यप्रणाली की समीक्षा करते हुए एक रिपोर्ट पेश की, जिसमें नालसा और संबंधित निकायों के प्रदर्शन का आकलन किया गया।

नालसा (राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण) के बारे में:

- **विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987** के तहत गठित ।
- देश भर में निःशुल्क कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए **नीतियां और दिशानिर्देश** तैयार करना तथा उनके कार्यान्वयन की निगरानी करना।
- **राज्य विधिक सेवा प्राधिकरणों (एसएलएसए)** , **जिला प्राधिकरणों (डीएलएसए)** और **तालुका समितियों** के साथ समन्वय में कार्य करना ।

संवैधानिक समर्थन:

- **अनुच्छेद 39ए** : राज्य को आर्थिक या सामाजिक रूप से वंचित लोगों को मुफ्त कानूनी सहायता सुनिश्चित करने का निर्देश देता है।
- **अनुच्छेद 14 और 22(1)** : कानून के समक्ष समानता और कानूनी प्रतिनिधित्व तक पहुंच को बनाए रखना, मुफ्त कानूनी सहायता तंत्र की नींव रखना।

विधिक सेवा प्राधिकरणों के मुख्य कार्य:

- पात्र व्यक्तियों को **निःशुल्क एवं सक्षम कानूनी सेवाएं** प्रदान करना ।
    - विवादों के शीघ्र एवं सौहार्दपूर्ण समाधान के लिए **लोक अदालतों** का आयोजन करें ।

- विशेष रूप से ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में **कानूनी साक्षरता और जागरूकता शिविर** आयोजित करें ।
- **मुआवजा योजनाओं के साथ अपराध पीड़ितों का** समर्थन करें ।
- मुकदमेबाजी के बोझ को कम करने के लिए **वैकल्पिक विवाद समाधान (एडीआर)** को बढ़ावा देना ।

निःशुल्क कानूनी सहायता के लिए पात्रता:

कानूनी सहायता निम्नलिखित के लिए उपलब्ध है:

- **महिलाएं, बच्चे**
- **अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति**
- **औद्योगिक कामगार**
- **प्राकृतिक और औद्योगिक आपदाओं के पीड़ित**
- **विकलांग या मानसिक बीमारी से ग्रस्त व्यक्ति**
- **बंदी, कैदी और हिरासत में लिए गए व्यक्ति**
- **₹1 लाख (या सर्वोच्च न्यायालय के मामलों में ₹5 लाख) से कम आय वाले व्यक्ति**
- **मानव तस्करी या जबरन श्रम के शिकार**

निःशुल्क कानूनी सहायता सुनिश्चित करने में प्रमुख चुनौतियाँ:

चुनौती	विवरण
जागरूकता की कमी	अनेक नागरिक निःशुल्क कानूनी सहायता पाने के अपने अधिकार से अनभिज्ञ हैं।
धारणा अंतराल	निःशुल्क सेवाओं को प्रायः निम्न गुणवत्ता वाली समझा जाता है।
मानव संसाधन की कमी	समर्पित एवं प्रशिक्षित कानूनी सहायता वकीलों की कमी।
कम प्रेरणा	नियुक्त वकील वास्तविक प्रयास नहीं करते, जिससे परिणाम प्रभावित होते हैं।
अनैतिक मांगें	ऐसे उदाहरण जहां कानूनी सहायता वकील अनौपचारिक भुगतान चाहते हैं।
अक्षमताओं	वकील नियुक्ति और केस ट्रैकिंग में विलंब और प्रशासनिक अड़चनें।

आगे बढ़ने का सुझाया गया रास्ता:

- **व्यापक कानूनी साक्षरता अभियान** : विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों और कमजोर समुदायों में।
- **प्रौद्योगिकी का लाभ उठाएं** : कार्य पूरा होने में लगने वाले समय को कम करने के लिए **आईसीटी उपकरण, एआई और बड़े डेटा का उपयोग करें** (वर्तमान में औसतन 11 दिन)।
- **युवा प्रतिभाओं को आकर्षित करें** : **सम्मानजनक पारिश्रमिक** , लाभ और सार्वजनिक पदों के लिए त्वरित अवसर प्रदान करके प्रोत्साहित करें।
- **संस्थागत सुधार** : कानूनी सहायता को एक **आवश्यक सार्वजनिक सेवा के रूप में मान्यता दी जाए, जैसा कि दक्षिण अफ्रीका** और **केन्या** में किया गया है ।
- **कानूनी संस्कृति में बदलाव** : विधि विद्यालयों और बार एसोसिएशनों में निशुल्क संस्कृति को एकीकृत करना।

हाल की सरकारी पहल:

पहल	विशेषताएँ
दिशा योजना	कानूनी सहायता तक पहुंच के लिए नवीन, तकनीक-संचालित समाधानों को बढ़ावा देना।
न्याय बंधु ऐप	यह पात्र नागरिकों को निःशुल्क वकील उपलब्ध कराता है तथा स्वैच्छिक कानूनी सहायता की संस्कृति को बढ़ावा देता है।
टेली-लॉ प्लेटफॉर्म	**766 जिलों** में **2.5 लाख ग्राम पंचायतों** में वीडियो/टेली-कानूनी परामर्श प्रदान करता है ।
LADCS (कानूनी सहायता रक्षा परामर्श प्रणाली)	विकसित देशों के लोक बचाव मॉडल से प्रेरित होकर, जिला स्तर पर **पूर्णकालिक आपराधिक बचाव वकीलों की** तैनाती की जाती है ।

वैश्विक प्रासंगिकता और एसडीजी-16:

- **एसडीजी लक्ष्य 16** के अनुरूप : *"सभी के लिए न्याय तक पहुंच सुनिश्चित करना और*

प्रभावी, जवाबदेह संस्थानों का निर्माण करना।"

- भारत की कानूनी सहायता संरचना **समावेशी न्याय** , नागरिक सशक्तीकरण और लोकतांत्रिक सुदृढ़ीकरण में योगदान देती है।

नोट्स

कैसेशन बेंच , **समावेशी न्याय वितरण** , **भाषा बाधाएं** , **राज्य कानूनी सेवा प्राधिकरण** , **सिविल मुकदमेबाजी दरें** , **राष्ट्रीय अपील न्यायालय** , **कानूनी सशक्तिकरण** , **आवश्यक सेवाएं** ।

भारत में न्यायिक अवसंरचना

भारत के मुख्य न्यायाधीश ने प्रणालीगत खामियों को दूर करने के लिए **भारतीय राष्ट्रीय न्यायिक अवसंरचना प्राधिकरण (एनजेआईएआई)** के गठन का सुझाव दिया है ।

न्यायिक अवसंरचना का अर्थ

न्यायिक अवसंरचना से तात्पर्य उन सभी **भौतिक, डिजिटल और मानव संसाधनों से है जो न्याय तक समान, कुशल और नागरिक-केंद्रित पहुँच** सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं ।

इसमें शामिल हैं:

- न्यायालय भवन और न्यायाधिकरण
- वकीलों के चैंबर
- तकनीकी सहायता (डिजिटल प्लेटफॉर्म, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग)
- पर्याप्त स्टाफिंग और मानव संसाधन

एक मजबूत न्यायिक बुनियादी ढांचा **समय पर और न्यायसंगत न्याय प्रदान करने में सक्षम बनाता है** ।

भारत के न्यायिक ढांचे में चुनौतियाँ

- **अपर्याप्त वित्तपोषण** :
  - न्यायिक बुनियादी ढांचे को **सकल घरेलू उत्पाद का केवल 0.09% ही प्राप्त होता है** , जो काफी कम आवंटन है।
- **बुनियादी ढांचा घाटा** :
  - सर्वोच्च न्यायालय (2023) के अनुसार, न्यायालय सुविधाएं केवल **20,831 जिला न्यायाधीशों को समायोजित कर सकती हैं** , जबकि स्वीकृत पद **25,081 हैं** ।
- **दीर्घकालिक योजना का अभाव** :
  - निर्माण कार्य में भविष्य की जरूरतों को ध्यान में नहीं रखा जाता, जिसके कारण तेजी से भीड़ बढ़ जाती है और सुविधाएं पुरानी हो जाती हैं।
- **नौकरशाही जटिलता** :
  - इसमें कई राज्य स्तरीय विभाग (जैसे, पीडब्ल्यूडी, वित्त मंत्रालय, कलेक्ट्रेट) शामिल हैं, जिससे **समन्वय मुश्किल हो जाता है** ।
- **विलंबित निष्पादन और अप्रयुक्त निधियां** :
  - बुनियादी ढांचे का विकास मुख्य रूप से **राज्य की जिम्मेदारी है** , फिर भी कई राज्य परियोजनाओं में देरी करते हैं या **अपना योगदान देने में विफल रहते हैं** ।
- **कार्यकारी मशीनरी पर निर्भरता** :
  - डिजाइन और कार्यान्वयन **लोक निर्माण विभाग के नियंत्रण में रहता है** , जिससे न्यायिक स्वायत्तता सीमित हो जाती है।

सुधारों की तत्काल आवश्यकता क्यों है?

- **बड़े पैमाने पर लंबित मामले** :
  - अदालतों में 4.4 करोड़ से अधिक **मामले लंबित हैं ।**
- वित्त मंत्रालय की एक रिपोर्ट बताती है कि संपत्ति विवादों को सुलझाने में **लगभग 20 वर्ष लग जाते हैं ।**
  - वर्तमान दर से, बकाया काम निपटाने में **300 वर्ष से अधिक का समय लगेगा** ।
- **अनुबंध प्रवर्तन मुद्दे** :
  - कानूनी समाधान में देरी से भारत में **व्यापार करने की सुगमता प्रभावित होती है** , तथा मुकदमेबाजी **महंगी और अकुशल हो जाती है** ।

- **डिजिटल बुनियादी ढांचे में अंतराल** :
  - महामारी के बाद डिजिटलीकरण ज़रूरी है। हालाँकि, **केवल 27% न्यायालयों में वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग की** सुविधा है ।
- **समर्पित जवाबदेही का अभाव** :
  - कोई भी विशिष्ट एजेंसी या निकाय न्यायिक अवसंरचना के निष्पादन या निगरानी को सुनिश्चित नहीं करता है, जिसके कारण **परियोजना में देरी होती है** और **कार्यान्वयन में समन्वय नहीं हो पाता है** ।
- **निधियों का गलत आबंटन एवं कम उपयोग** :
  - वित्त वर्ष 2019-20 में, केंद्र प्रायोजित योजनाओं (सीएसएस) के तहत स्वीकृत 981.98 करोड़ रुपये में से केवल 84.9 करोड़ रुपये का उपयोग पांच राज्यों द्वारा किया गया था - **91% से अधिक धनराशि अप्रयुक्त रह गई** ।
  - कुछ राज्यों ने न्यायिक निधियों को **गैर-न्यायिक गतिविधियों के लिए पुनर्निर्देशित किया है** ।

आगे बढ़ने का रास्ता

न्यायिक अवसंरचना के निर्माण और रखरखाव के लिए एक **समर्पित राष्ट्रीय एजेंसी** या **विशेष प्रयोजन वाहन बनाने से:**

- हाशिए पर पड़े समूहों के लिए **न्याय तक पहुंच में** सुधार
- **कार्यकुशलता और पारदर्शिता** बढ़ाना
- **संस्थागत जवाबदेही को** बढ़ावा देना
- दीर्घकालिक **आधुनिकीकरण और डिजिटल परिवर्तन का समर्थन करें**

पिछले वर्ष के प्रश्न
प्रश्न: हाल के दिनों में भारत और यू.के. की न्यायिक प्रणालियाँ एक-दूसरे से मिलती-जुलती और एक-दूसरे से अलग होती दिख रही हैं। न्यायिक प्रथाओं के संदर्भ में दोनों देशों के बीच समानता और भिन्नता के प्रमुख बिंदुओं पर प्रकाश डालें। - 2020
प्रश्न: न्यायिक विधान भारतीय संविधान में वर्णित शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के विपरीत है। इस संदर्भ में कार्यकारी अधिकारियों को दिशा-निर्देश जारी करने की प्रार्थना करते हुए बड़ी संख्या में जनहित याचिकाएँ दायर करना उचित है। - 2020
प्रश्न: भारत में उच्च न्यायपालिका के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संदर्भ में 'राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग अधिनियम, 2014' पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की आलोचनात्मक जांच करें- 2017

विवाद निवारण तंत्र

विवाद निवारण तंत्र एक संरचित प्रक्रिया है जो व्यवसाय, कानूनी या सामाजिक संबंधों में लगे दो या अधिक पक्षों के बीच उत्पन्न विवादों या शिकायतों का समाधान करती है।

विवाद निवारण तंत्र आमतौर पर गैर-न्यायिक प्रकृति के होते हैं, अर्थात उनका समाधान कानून की अदालत में नहीं किया जाता है।

भारत में गठित विभिन्न तंत्र: ग्राम सभा, न्याय पंचायत, लोक अदालत, पारिवारिक न्यायालय, परामर्श केंद्र, जांच आयोग, न्यायाधिकरण, उपभोक्ता न्यायालय, एडीआर पर भारतीय कानून, आदि।

मुख्य फोकस: संक्षेप में, यह प्रणाली विजेता द्वारा सब कुछ ले लेने के बजाय मध्यस्थता पर ध्यान केंद्रित करती है; न्याय तक पहुंच बढ़ाना और दक्षता में सुधार करना तथा अदालती देरी को कम करना।

वैकल्पिक विवाद समाधान (एडीआर)

एडीआर का अर्थ है किसी विवाद के पक्षकारों द्वारा सहमत कोई भी प्रक्रिया, जिसमें वे किसी समझौते पर पहुंचने और मुकदमेबाजी से बचने में सहायता के लिए किसी तटस्थ पक्ष की सेवाओं का उपयोग करते हैं।

संवैधानिक आधार:

- अनुच्छेद 14: कानून के समक्ष समानता
- अनुच्छेद 32: संवैधानिक उपचारों का अधिकार; लोगों का न्याय पाने का अधिकार।
- अनुच्छेद 39ए: समान न्याय और निःशुल्क कानूनी सहायता।

वैकल्पिक विवाद के लाभ संकल्प (एडीआर)

कुशल न्याय प्रदान करने की आवश्यकता पर **विधि आयोग की 222वीं रिपोर्ट** में रेखांकित किया गया है , निम्नलिखित लाभ भारत में ए.डी.आर. तंत्र की बढ़ती प्रासंगिकता को उजागर करते हैं:

1. लागत-कुशल- एडीआर कार्यवाही पारंपरिक अदालती मामलों की तुलना में काफी अधिक किफायती है। प्रक्रियात्मक औपचारिकताओं, कानूनी फीस और अदालती शुल्क में कमी के कारण कुल मिलाकर खर्च कम होता है।

2. तेज़ समाधान- चूंकि एडीआर आम तौर पर अपील की कई परतों से बचता है, इसलिए यह विवादों का **त्वरित निपटान सुनिश्चित करता है** । लंबी अदालती प्रक्रियाओं की अनुपस्थिति न्याय वितरण को गति देती है।

3. लचीला और गैर- तकनीकी - **कठोर अदालती प्रक्रियाओं के विपरीत, एडीआर विधियाँ** अनौपचारिक और अनुकूलनीय हैं । **वे जटिल कानूनी शब्दजाल और प्रक्रियात्मक बाधाओं से मुक्त होकर पक्षों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करते हैं।**

4. गोपनीय और सुरक्षित - पक्षकार अपनी शिकायतें व्यक्त कर सकते हैं और सार्वजनिक प्रकटीकरण या कानूनी नतीजों के डर के बिना स्वतंत्र रूप से बातचीत कर सकते हैं, जिससे

खुली और ईमानदार बातचीत को बढ़ावा मिलता है।

5. रिश्तों का संरक्षण- ADR विरोधी टकराव के बजाय **सहयोगात्मक समाधान को प्रोत्साहित करता है। यह** जीत या हार की भावना को खत्म करके **व्यावसायिक या व्यक्तिगत संबंधों को बनाए रखने में मदद करता है।**

6. अनुबंध प्रवर्तन को बढ़ावा- विश्व बैंक के व्यापार करने में आसानी सूचकांक के अनुसार , भारत अनुबंध प्रवर्तन समयसीमा के साथ संघर्ष करता है। एडीआर **प्रवर्तन को सुव्यवस्थित करने में मदद कर सकता है** , जिससे भारत निवेशकों के लिए अधिक आकर्षक बन सकता है।

7. उच्च अनुपालन दर- चूंकि पक्ष समाधान प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार होते हैं, इसलिए आमतौर पर **समझौते का सम्मान करने की अधिक इच्छा होती है** , जिससे भविष्य में विवाद की संभावना कम हो जाती है।

8. विदेशी मुद्रा बचत - भारत को अक्सर अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता (जैसे, सिंगापुर, लंदन) में महत्वपूर्ण लागत उठानी पड़ती है । घरेलू एडीआर ढांचे को बढ़ावा देकर, देश **विदेशी मुद्रा भंडार का संरक्षण कर सकता है** ।

एडीआर की सीमाएं

- जागरूकता की कमी एक बड़ी बाधा बनी हुई है। कई नागरिक, वकील और यहां तक कि न्यायिक अधिकारी भी उचित मामलों को मध्यस्थता और सुलह मंचों पर भेजने के लिए अनिवार्यता से अनभिज्ञ हैं। इससे ADR प्लेटफ़ॉर्म का कम उपयोग होता है।
- एडीआर तंत्र के माध्यम से सफल होने में एक कथित नुकसान मौजूद है। कुछ वादियों को लगता है कि औपचारिक न्यायालय प्रणाली अधिक मजबूत कानूनी समर्थन प्रदान करती है और इसलिए वे वैकल्पिक मॉडलों पर जाने के लिए अनिच्छुक हैं।
- प्रक्रिया और इसके परिणामों के बारे में संदेह बना हुआ है। काफी संख्या में पक्ष परिणाम से असंतुष्ट महसूस करते हैं और अंततः एडीआर से खुद को अलग कर लेते हैं, इसके बजाय पारंपरिक मुकदमेबाजी का विकल्प चुनते हैं।
- एडीआर की सफलता इसमें शामिल पक्षों की सद्भावना और सूचित भागीदारी पर निर्भर करती है। दुर्भाग्य से, बिना जानकारी वाले या अनिच्छुक पक्ष पीछे हटकर या पूरी तरह से सहयोग न करके प्रक्रिया को पटरी से उतार सकते हैं।
- चूंकि एडीआर एक स्वैच्छिक प्रक्रिया है, इसलिए इसे तब तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक कि दोनों पक्ष इसके माध्यम से मामले को हल करने के लिए सहमत न हों। यह आपसी सहमति की आवश्यकता विवादास्पद या उच्च-दांव विवादों में इसके दायरे को सीमित करती है।
- तटस्थता और निष्पक्षता को लेकर अक्सर चिंताएं उठती रहती हैं। ऐसे मामलों में जहां एक पक्ष असंतुष्ट होता है, अक्सर मध्यस्थ या मध्यस्थ के खिलाफ पक्षपात के आरोप लगाए जाते हैं, जिससे प्रक्रिया की वैधता कमज़ोर हो जाती है।
- मध्यस्थता के मामले को छोड़कर (जिसके परिणामस्वरूप बाध्यकारी पुरस्कार मिलता है), मध्यस्थता या सुलह जैसे अधिकांश एडीआर तंत्र समाधान की गारंटी नहीं देते हैं। कई बार, पक्ष विवाद को ईमानदारी से हल करने के बजाय

कार्यवाही में देरी करने के लिए प्रक्रिया का दुरुपयोग करते हैं।

- एडीआर का दायरा सीमित है। यह मुख्य रूप से सिविल या वित्तीय मामलों से निपटता है और आपराधिक मुद्दों या निषेधाज्ञा या प्रतिबंधात्मक निर्देशों जैसे अदालती आदेशों की आवश्यकता वाले मामलों के लिए अप्रभावी है।
- एडीआर में कोई अपील तंत्र नहीं है। मध्यस्थों द्वारा लिए गए निर्णयों को, विशेष रूप से बाध्यकारी मध्यस्थता में, न्यायालय के निर्णयों की तरह चुनौती नहीं दी जा सकती, जिससे आगे कानूनी सहारा लेने वाले वादियों में झिझक पैदा होती है।

आगे बढ़ने का रास्ता

- विवादों का त्वरित और प्रभावी समाधान प्राप्त करने के लिए ई-लोक अदालतों और मुकदमे-पूर्व मध्यस्थता जैसे तकनीकी हस्तक्षेपों का विस्तार किया जाना चाहिए। ये उपकरण वादियों में अधिक आत्मविश्वास पैदा कर सकते हैं और विवादों के शीघ्र निपटारे को बढ़ावा दे सकते हैं।
- एडीआर को एक कैरियर पथ के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। इसमें मध्यस्थता और मध्यस्थता में पेशेवरों को प्रशिक्षित करना, गुणवत्ता आश्वासन के लिए प्रक्रियाएं निर्धारित करना और नैतिक और जवाबदेही मानकों को स्थापित करना शामिल है।
- एडीआर का दायरा वाणिज्यिक मामलों से आगे जाना चाहिए। पारिवारिक, संपत्ति, श्रम और अन्य सिविल विवादों के लिए विशेष रूप से मध्यस्थता और मध्यस्थता केंद्र स्थापित करने से एडीआर अधिक समावेशी और प्रासंगिक बन जाएगा।
- व्यवहार में बदलाव ज़रूरी है। नागरिकों को ADR तंत्र पर भरोसा करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, उन्हें अदालतों के लिए निष्पक्ष, तेज़ और लागत प्रभावी विकल्प के रूप में पहचानना चाहिए।
- एडीआर के लिए भौतिक और डिजिटल बुनियादी ढांचे को बढ़ाने, कानूनी पेशेवरों के कौशल विकास और पर्याप्त प्रशिक्षित कर्मियों की तैनाती पर भी ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए।
- मध्यस्थता और सुलह (संशोधन) अधिनियम, 2021 ने विधायी अंतराल को दूर करने और मध्यस्थता प्रक्रिया को सुव्यवस्थित करने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं।
- प्रस्तावित भारतीय मध्यस्थता परिषद मध्यस्थता निर्णयों के इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड की सुविधा प्रदान करके, नियुक्ति प्रक्रियाओं को मानकीकृत करके (उच्चतम न्यायालय/उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षण में) तथा यह सुनिश्चित करके कि मध्यस्थों को सद्भावपूर्ण कार्यों के लिए कानूनी संरक्षण प्राप्त है, इस क्षेत्र को और अधिक पेशेवर बना सकती है।

लोक अदालत: विवाद समाधान का एक भारतीय मॉडल

अवधारणा और उत्पत्ति

लोक अदालत, जिसका अर्थ है "लोगों की अदालत", न्याय और सुलह के गांधीवादी आदर्शों पर आधारित एक अनूठी भारतीय व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती है। यह औपचारिक अदालती प्रक्रियाओं की कठोरता के बिना आपसी संवाद, समझौता और मध्यस्थता के माध्यम से समाधान को बढ़ावा देती है।

स्वतंत्रता के बाद भारत में पहली लोक अदालत 1982 में गुजरात में आयोजित की गई थी, जो विवाद समाधान के लिए जन-केंद्रित दृष्टिकोण की शुरुआत थी।

दायरा और प्रयोज्यता

लोक अदालतों को निम्नलिखित कार्य करने का अधिकार है:

- न्यायालयों में पहले से दायर विवाद (लंबित मुकदमे)
- मुकदमे-पूर्व मामले (ऐसे विवाद जो अभी तक किसी न्यायालय में दायर नहीं किये गये हैं)

अक्सर निपटाये जाने वाले मामलों में निम्नलिखित प्रकार शामिल हैं:

- वैवाहिक या परिवार से संबंधित विवाद
- समझौता योग्य आपराधिक मामले
- मोटर दुर्घटना दावे
- भूमि अधिग्रहण और संपत्ति मामले
- धन वसूली और श्रम विवाद

गैर-समझौता योग्य अपराध (गंभीर आपराधिक मामले) से संबंधित मामले लोक अदालतों के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं।

कानूनी आधार और संरचना

विधिक **सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987** लोक अदालतों को एक वैधानिक ढांचा प्रदान करता है, जो पूरे भारत में उनकी संस्थागत उपस्थिति सुनिश्चित करता है।

आयोजन निकाय :

- लोक अदालतें राज्य, जिला, उच्च न्यायालय और तालुका स्तर पर विधिक सेवा प्राधिकरणों द्वारा आयोजित की जा सकती हैं।
- इन्हें सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालयों के निर्देशों के तहत भी आयोजित किया जा सकता है।

पैनल संरचना :

- किसी वर्तमान या सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारी (अध्यक्ष) की अध्यक्षता में
- एक कानूनी व्यवसायी और सामाजिक सेवा अनुभव वाले व्यक्ति (जैसे, एनजीओ प्रतिनिधि, सामुदायिक नेता) के साथ

कानूनी शक्तियां और पुरस्कार

- लोक अदालतों को कार्यवाही करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता (1908) और सीआरपीसी (1973) के तहत सिविल कोर्ट के समकक्ष शक्तियां प्रदान की गई हैं।
- लोक अदालत द्वारा जारी किया गया निर्णय **अंतिम एवं बाध्यकारी माना जाता है** ।
- ऐसे निर्णय के विरुद्ध कोई अपील स्वीकार्य नहीं है, जिससे विवाद का शीघ्र समाधान सुनिश्चित हो सके।

लोक अदालत के लाभ

- त्वरित एवं किफायती न्याय प्रदान करना
- अनौपचारिक और लचीली कार्यवाही
- लम्बी अदालती लड़ाइयों का खात्मा
- मैत्रीपूर्ण समझौते से प्रतिकूल तनाव कम होता है
- कोई न्यायालय शुल्क आवश्यक नहीं (पहले भुगतान की गई फीस वापस कर दी जाएगी)

नवाचार: मोबाइल लोक अदालतें

हाल के दिनों में, ग्रामीण और दूरदराज के इलाकों में न्याय तक पहुँच बढ़ाने के लिए **मोबाइल लोक अदालतें** शुरू की गई हैं। ये मोबाइल इकाइयाँ गाँवों और कस्बों में जाती हैं, जिससे हाशिए पर पड़े समुदायों को उनके घर के दरवाज़े पर ही विवादों को सुलझाने में मदद मिलती है।

ग्राम न्यायालय - भारत में जमीनी स्तर पर न्याय

पृष्ठभूमि और विकास

ग्राम न्यायालयों का विचार न्याय प्रदान करने को अधिक **सुलभ, त्वरित और जन-केंद्रित** बनाने के समाधान के रूप में उभरा , विशेष रूप से ग्रामीण और हाशिए के समुदायों के लिए।

- 114 **वीं विधि आयोग की रिपोर्ट में** ग्राम स्तरीय न्यायालयों की स्थापना की सिफारिश की गई थी:

- **मानवीय एवं विकेन्द्रित तरीके** से न्याय प्रदान करें ।
- **लंबित मामलों को** कम करना (**50%** तक कमी लाने का लक्ष्य)।
- उच्च न्यायपालिका पर **बोझ कम करना ।**

विधायी ढांचा

मुख्य विशेषताएं और कार्यप्रणाली

पहलू	विवरण
प्रकृति	ग्रामीण आबादी के निकट कार्यरत मोबाइल न्यायालय
पीठासीन अधिकारी	**न्यायाधिकारी** (प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट के समकक्ष न्यायिक अधिकारी)
नियुक्ति	**संबंधित उच्च न्यायालय के परामर्श** से **राज्य सरकारों** द्वारा किया गया
क्षेत्राधिकार	अधिनियम की पहली तीन अनुसूचियों के अंतर्गत निर्दिष्ट **आपराधिक और सिविल दोनों मामलों को** संभालता है
जगह	**ब्लॉक-स्तरीय पंचायत मुख्यालय** या **आस-पास की पंचायतों के समूह** पर आधारित होता है, जहां मध्यवर्ती स्तर की पंचायतें अनुपस्थित होती हैं
प्रक्रिया	**अनौपचारिक प्रक्रियाओं का** पालन करता है , **प्राकृतिक न्याय द्वारा निर्देशित है , भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के सख्त नियमों से बंधा नहीं है**
न्याय का तरीका	विशेष रूप से छोटे विवादों में **सुलह और समझौते** पर जोर
अपील	सिविल मामलों की अपीलें **जिला न्यायालय में जाती हैं** ; आपराधिक अपीलें **सत्र न्यायालय में जाती हैं**

महत्व

- **ग्रामीण नागरिकों** के घरों के नजदीक लाकर उन्हें सशक्त बनाना।
- **वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र को** प्रोत्साहित करता है , जिससे लंबी औपचारिक अदालती प्रक्रियाओं पर निर्भरता कम होती है।
- **ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008** के रूप में अधिनियमित ।
- देश भर में **लगभग 5000 स्थानीय अदालतें** स्थापित करने का इरादा है ।
- केंद्र सरकार ने राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को इनकी स्थापना में सहायता देने के लिए **1400 करोड़ रुपए आवंटित किए** ।
- संविधान के **अनुच्छेद 39ए** में उल्लिखित **विकेन्द्रीकृत न्याय** के आदर्श का समर्थन करता है ।

<u>ग्राम न्यायालय के खराब कामकाज का कारण</u>

- क्षेत्राधिकार का अतिव्यापन: पिछले कुछ वर्षों में कई राज्यों ने तालुका स्तर पर नियमित न्यायालयों की स्थापना की है, जिससे ग्राम न्यायालय की अतिरिक्त संस्था की आवश्यकता कम हो गई है।
- ध्यान का अभाव: केंद्र सरकार द्वारा 1400 करोड़ रुपये के आबंटन के बावजूद अधिकांश राज्य सरकारों ने अपनी नीतिगत प्राथमिकताओं में ग्राम न्यायालयों को दरकिनार कर दिया है।
- ग्राम न्यायालयों की स्थापना के लिए राज्यों से प्रस्तावों की कमी के कारण योजना के अंतर्गत धन उपयोग की गति धीमी है।
- मानव संसाधनों की कमी: ग्राम न्यायाधिकरणों के पद के लिए न्यायिक अधिकारियों की कमी, नोटरी, स्टाम्प विक्रेताओं आदि की अनुपलब्धता ने प्रगति में बाधा उत्पन्न की है।
- स्पष्टता का अभाव: ग्राम न्यायालय त्वरित विवाद समाधान के लिए अतिरिक्त विकल्प प्रदान करता है या नहीं, यह संदिग्ध है, क्योंकि श्रम न्यायालय और पारिवारिक न्यायालय जैसे वैकल्पिक मंच पहले से ही उपलब्ध हैं।
- जागरूकता का अभाव: सामान्य तौर पर सभी हितधारकों, अर्थात् मुकदमे के समाधान में शामिल वादी, वकील और पुलिस अधिकारियों के बीच जागरूकता अत्यंत सीमित है।

<u>आगे बढ़ने का रास्ता</u>

- जन जागरूकता अभियान: न्याय प्राप्त करने के लिए ऐसे मंच की उपयोगिता और लाभ के बारे में हितधारकों को संवेदनशील बनाना।
- प्रत्येक पंचायत में स्थायी ग्राम न्यायालय की स्थापना करना तथा वहां नये न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति अनिवार्य करना, ग्राम न्यायाधिकारियों को प्रशिक्षित करना।
- ग्राम न्यायाधिकारी का एक संवर्ग: कानून के साथ-साथ सामाजिक कार्य में डिग्री वाले व्यक्तियों को इस सेवा में भर्ती किया जाएगा।
- कार्यप्रणाली में बदलाव: ग्राम न्यायालयों की स्थापना के लिए न्यायपालिका, राजनीतिक और कार्यपालिका की भूमिका पूरी तरह से खत्म हो जाएगी। सबसे पहले इसमें बदलाव की जरूरत है।
- अन्य उपाय: आवश्यक बुनियादी ढांचे का निर्माण जैसे अलग भवन, न्यायाधिकारियों की भर्ती के लिए स्थानीय भाषा प्रशिक्षण आदि।

- **टिप्पणियाँ** : गांधीवादी सिद्धांत, गैर-समझौता योग्य, विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987, विधिक सेवा समिति,
- न्यायाधिकारि

न्यायाधिकरण (भाग XIV-ए; अनुच्छेद 323ए, 323बी)

- हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला दिया कि न्यायाधिकरण सरकार को नीति बनाने का निर्देश नहीं दे सकते।
- इसके अलावा, सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि नीति बनाना न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र में नहीं है।
- परिभाषा: न्यायाधिकरण एक अर्ध-न्यायिक संस्था है जिसका गठन प्रशासनिक या कर-संबंधी विवादों जैसे विभिन्न मामलों में शीघ्र, सस्ते और विकेन्द्रित विवाद समाधान के उद्देश्य से किया जाता है।
- संवैधानिक प्रावधान: 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान (स्वर्ण सिंह समिति)

अनुच्छेद 323-A एवं 323-B की तुलनात्मक सारणी

आयाम	अनु. 323-A	अनु. 323-B
उद्देश्य	प्रशासनिक न्यायालय (Administrative Tribunals)	अन्य विषयों के लिए न्यायाधिकरण (Tribunals for Other Matters)
स्थापना द्वारा	केवल संसद द्वारा	संसद एवं राज्य विधानसभाओं द्वारा दोनों से स्थापित हो सकते हैं
क्रमिकता	नहीं (Hierarchy नहीं)	आवश्यकता अनुसार स्थापित किया जा सकता है

न्यायाधिकरणों के लाभ

- लचीलापन: सिविल प्रक्रिया संहिता और भारतीय साक्ष्य अधिनियम के तहत कठोर नियमों से बाधित नहीं होना तथा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना।
- न्यायालयों को राहत: अत्यधिक बोझ से दबी साधारण अदालतों को राहत।
- कम खर्चीला: पारंपरिक अदालत की तुलना में विवादों को सुलझाने का यह कम औपचारिक और तेज़ तरीका है।
- कानूनी रूप से बाध्यकारी निर्णय: सिविल कोर्ट के समान शक्तियाँ, जैसे समन जारी करना और गवाहों को साक्ष्य देने की अनुमति देना। इसके निर्णय कानूनी रूप से पक्षों पर बाध्यकारी होते हैं, जो अपील के अधीन होते हैं।
- तकनीकी विशेषज्ञता: ऐसे विशेषज्ञ सदस्यों की नियुक्ति का प्रावधान जो तकनीकी विशेषज्ञता की मांग वाले मामलों के निर्णय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

न्यायाधिकरणों से संबंधित चिंताएँ

- शक्तियों के पृथक्करण के विरुद्ध: इसमें प्रशासनिक और न्यायिक दोनों सदस्य होते हैं।
- हितों का टकराव: कार्यपालिका और कार्यपालिका द्वारा नियुक्तियां भी देश में सबसे बड़ा विवाद है।
- न्यायिक प्राधिकार को कमजोर करना: विभिन्न अधिनियमों के तहत विवादों के लिए बड़े पैमाने पर उच्च न्यायालय की जगह ले ली गई। अपीलीय न्यायाधिकरण के खिलाफ अपील, सीधे उच्चतम न्यायालय में जाती है, उच्च न्यायालय को दरकिनार कर देती है। (एल. चंद्रकुमार का मामला: उच्च न्यायालय में पहली अपील)
- स्वायत्तता का अभाव: मूल प्रशासनिक मंत्रालयों के अधीन कार्य करना -> सुविधाओं, बुनियादी ढांचे और नियम-निर्माण के लिए उनकी दया पर निर्भर रहना।
- कम पारदर्शिता: कार्यप्रणाली के बारे में जानकारी का अभाव, वेबसाइटें अक्सर गायब रहती हैं, अनुत्तरदायी होती हैं या अद्यतन नहीं होती हैं।
- लंबित मामलों की बढ़ती संख्या: लंबित मामलों की औसत अवधि 3.8 वर्ष है (उच्च न्यायालयों में लंबित मामलों की अवधि 4.3 वर्ष है)
- क्षेत्राधिकार का ओवरलैप होना: न्यायाधिकरण विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के अधीन काम करते हैं, जिससे न्यायाधिकरणों के प्रबंधन को लेकर भ्रम की स्थिति पैदा होती है। साथ ही, कई न्यायाधिकरण समान कार्य करते हैं।
- देरी से दिए गए फैसले: कावेरी अंतरराज्यीय जल विवाद न्यायाधिकरण की स्थापना 1990 में हुई थी और 2007 में अपना फैसला सुनाने में 17 साल लग गए। इसे सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी गई। यह न्यायाधिकरण के त्वरित विवाद-समाधान तंत्र के उद्देश्य को दर्शाता है।

<u>आगे बढ़ने का रास्ता</u>

- विधि आयोग: न्यायाधिकरण प्रणाली के कामकाज में सुधार की प्रक्रिया
- न्यायाधीशों की योग्यता: उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का हस्तांतरण-> उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बनने के लिए योग्य।
- नियुक्ति: न्यायाधिकरणों में नियुक्त सभी सदस्यों की नियुक्ति, कार्यकाल और सेवा शर्तों में एकरूपता सुनिश्चित करने के लिए कानून मंत्रालय के अधीन नोडल एजेंसी।
- रिक्ति: अधिमानतः समय पर प्रक्रिया शुरू करके घटना से छह महीने पहले भरी जाएगी।
- सदस्यों का चयन: निष्पक्ष होगा तथा सरकारी एजेंसियों की न्यूनतम भागीदारी होगी। न्यायिक तथा प्रशासनिक दोनों सदस्यों के लिए अलग-अलग चयन समिति होगी।
- कार्यकाल: अध्यक्ष-> 3 वर्ष / 70 वर्ष और उपाध्यक्ष और सदस्य -> 3 वर्ष / 67 वर्ष। पहुंच: देश के विभिन्न भागों में बेंच, आदर्श रूप से जहां उच्च न्यायालय स्थित हैं।
- मूल संरचना के साथ संरेखित करना: न्यायाधिकरण के आदेश को उच्च न्यायालय की उस खंडपीठ के समक्ष चुनौती दी जा सकती है, जिसका न्यायाधिकरण पर क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र हो।

ट्रिब्यूनल सुधार अधिनियम 2021

वित्त मंत्री सुश्री निर्मला सीतारमण द्वारा 2 अगस्त, 2021 को लोकसभा में न्यायाधिकरण सुधार विधेयक, 2021 पेश किया गया। राष्ट्रपति की मंजूरी के बाद अब यह अधिनियम बन गया है।

<u>विशेषताएँ</u>

- न्यायाधिकरण के सदस्यों की योग्यताएं: उनकी सेवा शर्तें (जैसे योग्यताएं, निष्कासन और वेतन) केंद्र सरकार द्वारा तय की जाएंगी।
- खोज एवं चयन समितियां: न्यायाधिकरणों के अध्यक्ष और सदस्यों का चयन केंद्र सरकार द्वारा खोज-सह-चयन समिति की सिफारिशों के आधार पर किया जाएगा।
- राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरणों के अपने स्वयं के खोज और चयन पैनल होंगे।
- केन्द्र सरकार चयन समितियों की सिफारिशों पर यथाशीघ्र, अधिमानतः सिफारिश की तारीख से तीन महीने के भीतर कार्रवाई करेगी।

- पात्रता और कार्यकाल: अधिनियम न्यायाधिकरण के सदस्यों के लिए चार वर्ष का कार्यकाल स्थापित करता है। इसमें अध्यक्ष के लिए अधिकतम आयु 70 वर्ष और अन्य सदस्यों के लिए 67 वर्ष निर्धारित की गई है।
- नियुक्तियों के लिए न्यूनतम आयु 50 वर्ष है।
- एक समान वेतन और नियम: यह कानून सभी न्यायाधिकरणों में खोज और चयन समितियों के लिए एक समान वेतन और नियम स्थापित करता है।
- यह अधिकरण के सदस्यों को हटाने की भी अनुमति देता है। इसमें प्रावधान है कि केंद्र सरकार खोज-सह-चयन समिति के सुझाव पर किसी भी अध्यक्ष या सदस्य को पद से हटा सकती है।
- वेतन और भत्ते: कानून में यह निर्दिष्ट किया गया है कि विघटित किए जाने वाले न्यायाधिकरण के अध्यक्ष और सदस्य अपने पद पर बने नहीं रहेंगे और अपनी समयपूर्व समाप्ति के लिए तीन महीने के वेतन और भत्ते के बराबर मुआवजे के हकदार होंगे।

अंतर्राज्यीय जल विवाद

हाल का संदर्भ

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने हाल ही में **अंतर-राज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम, 1956** के तहत **कृष्णा जल विवाद न्यायाधिकरण-II (केडब्ल्यूडीटी-II)** के लिए **विचारणीय विषयों (टीओआर) को मंजूरी दी है** , जिससे अंतर-राज्यीय नदी विवादों को सुलझाने के लिए भारत के तंत्र पर पुनः ध्यान केंद्रित हो गया है।

संवैधानिक प्रावधान

अनुच्छेद 262 – नदी जल विवादों का न्यायनिर्णयन

- **संसद को** निम्नलिखित से संबंधित विवादों के समाधान के लिए कानून बनाने का अधिकार देता है :
    - किसी **अंतरराज्यीय नदी या नदी घाटी** में जल का उपयोग , वितरण या **नियंत्रण ।**
- यह विधेयक संसद को ऐसे विवादों पर **सर्वोच्च न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय** के **अधिकार क्षेत्र को बाहर करने का अधिकार देता है।**

अनुच्छेद 246 और 7 वीं अनुसूची

- केंद्र और राज्यों के बीच **विधायी क्षमता** में अंतर :
    - **राज्य सूची (प्रविष्टि 17)** : राज्य के भीतर जलापूर्ति, सिंचाई, नहरें, जल निकासी और तटबंध।
    - **संघ सूची (प्रविष्टि 56)** : जब सार्वजनिक हित में आवश्यक घोषित किया जाए तो अंतरराज्यीय नदियों और नदी घाटियों का विनियमन और विकास।

संसद द्वारा निर्मित कानूनी तंत्र

नदी बोर्ड अधिनियम, 1956

- **राज्यों के अनुरोध** पर केंद्र को **नदी बोर्ड बनाने का अधिकार दिया गया है** ।
- ये बोर्ड एकीकृत विकास और जल बंटवारे के लिए **सलाहकार सहायता प्रदान करते हैं।**

अंतर्राज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम, 1956

(आईएसआरडब्ल्यूडी अधिनियम)

- अंतर-राज्यीय नदी जल से संबंधित **विवादों को हल करने** के लिए अधिनियमित किया गया ।
- प्रमुख विशेषताऐं:
    - जब जल विवाद उत्पन्न होता है और बातचीत के प्रयास विफल हो जाते हैं तो **न्यायाधिकरणों का गठन किया जाता है।**
    - न्यायाधिकरण के निर्णय **बाध्यकारी होते हैं** तथा उनमें **कानून का बल होता है** ।
    - उदाहरण: **कावेरी जल विवाद न्यायाधिकरण , कृष्णा जल विवाद**

न्यायाधिकरण , **महानदी न्यायाधिकरण** आदि।

- **सुचारू बनाने** तथा न्यायनिर्णयन **में तेजी लाने** के लिए 2002 में संशोधन तथा आगे और सुधार प्रस्तावित किए गए ।

ऑनलाइन विवाद समाधान (ओडीआर): एक आधुनिक न्याय उपकरण

ऑनलाइन विवाद समाधान (ओडीआर) से तात्पर्य **वैकल्पिक विवाद समाधान (एडीआर) तंत्रों - जैसे कि बातचीत, मध्यस्थता और पंच निर्णय** - के साथ **डिजिटल प्रौद्योगिकियों के उपयोग से है** , ताकि कानूनी विवादों को हल किया जा सके, विशेष रूप से निम्न से मध्यम मूल्य के मामलों में।

भारत में वर्तमान स्थिति

- **व्यापार करने में आसानी - अनुबंधों का प्रवर्तन** : भारत **विश्व स्तर पर 163वें स्थान पर है, जो 2015 के 186वें स्थान** से केवल मामूली प्रगति दर्शाता है ।
- **विलंब और लागत** : औसतन, किसी वाणिज्यिक विवाद को सुलझाने में लगभग **4 वर्ष** और **परियोजना लागत का 30% से अधिक समय लगता है।**
- **नकारात्मक धारणा** : **श्रीकृष्ण समिति (2017)** ने भारत की **खराब मध्यस्थता प्रतिष्ठा पर प्रकाश डाला** , जिससे निवेशकों का विश्वास प्रभावित हुआ।

लाभ ओ.डी.आर. का

फ़ायदा	स्पष्टीकरण
न्याय तक पहुंच	यह विशेष रूप से दूरदराज के क्षेत्रों में रहने वालों के लिए उपयोगकर्ता-अनुकूल, गैर-प्रतिकूल समाधान की सुविधा प्रदान करता है।
कानूनी सशक्तिकरण	नागरिक अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हो जाते हैं तथा उन्हें लागू करने के लिए साधन प्राप्त करते हैं, जिससे कानून का शासन बेहतर होता है।
गति और सुविधा	इससे यात्रा, प्रतीक्षा समय और न्यायिक लंबित मामलों में कमी आती है।
लागत क्षमता	कानूनी खर्च कम हो जाता है और औपचारिक कानूनी परामर्श पर निर्भरता कम हो जाती है।
पूर्वाग्रह न्यूनीकरण	सुनवाई के दौरान सामाजिक-जनसांख्यिकीय संकेतों के न्यूनतम प्रदर्शन के माध्यम से अचेतन पूर्वाग्रह को सीमित किया जाता है।

वैश्विक उदाहरण

- **सिंगापुर** : 1990 के दशक में **सिंगापुर अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता केंद्र (एसआईएसी) का निर्माण किया गया, जो अब अनुबंध प्रवर्तन में वैश्विक रैंकिंग में शीर्ष पर है** । विडंबना यह है कि कई भारतीय व्यवसाय इसकी विश्वसनीयता और दक्षता के कारण घरेलू विकल्पों की तुलना में **एसआईएसी को प्राथमिकता देते हैं ।**

भारत में ODR की चुनौतियाँ

चुनौती	विवरण

पुराने कानून	कई कानूनी ढांचे (जैसे, **नोटरी अधिनियम, 1956**) पूरी तरह से डिजिटल संचालन के साथ असंगत हैं।
बुनियादी ढांचे में अंतराल	ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में विश्वसनीय इंटरनेट और सुरक्षित डिजिटल प्लेटफॉर्म का अभाव है।
जागरूकता की कमी	वादी और वकील दोनों ही ओ.डी.आर. प्लेटफार्मों के प्रति कम विश्वास और समझ दिखाते हैं।
डेटा गोपनीयता जोखिम	डिजिटल प्रतिरूपण, साक्ष्य से छेड़छाड़ और गोपनीयता के उल्लंघन से संबंधित चिंताएं।

आगे बढ़ने का रास्ता

- **डिजिटल अवसंरचना संवर्धन** : ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च गति कनेक्टिविटी प्रदान करने के लिए **भारतनेट** और **डिजिटल इंडिया मिशनों को आक्रामक रूप से लागू करना।**
- **सरकारी मुकदमों में ओडीआर अपनाना** : चूंकि **46%** लंबित मामले सरकार से संबंधित हैं, इसलिए ओडीआर लागू करने से अदालती बोझ काफी कम हो सकता है।
- **कौशल विकास** : न्यायिक अधिकारियों और सहायक कर्मचारियों को **ओडीआर प्रशिक्षण और डिजिटल कौशल प्रदान करना।**
- **विधायी आधुनिकीकरण** : इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों, दूरस्थ नोटरीकरण और डिजिटल पुरस्कारों की प्रवर्तनीयता को समायोजित करने के लिए कानूनी ढांचे को अद्यतन करना।
- **सार्वजनिक विश्वास को बढ़ावा देना** : ODR प्रणालियों की दक्षता और तटस्थता को प्रदर्शित करने के लिए पायलट कार्यक्रमों और केस अध्ययनों को प्रोत्साहित करना।

पिछले वर्ष के प्रश्न
प्रश्न: केंद्रीय प्रशासन न्यायाधिकरण, जो केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों द्वारा या उनके विरुद्ध शिकायतों के निवारण के लिए स्थापित किया गया था, आजकल एक स्वतंत्र न्यायिक प्राधिकरण के रूप में अपनी शक्तियों का प्रयोग कर रहा है।" व्याख्या करें।-2019
प्रश्न: आप इस दृष्टिकोण से किस हद तक सहमत हैं कि न्यायाधिकरण सामान्य न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को सीमित करते हैं? उपरोक्त के मद्देनजर, भारत में न्यायाधिकरणों की संवैधानिक वैधता और योग्यता पर चर्चा करें।-2018
प्रश्न: अर्ध-न्यायिक निकाय क्या है? ठोस उदाहरणों की मदद से समझाइए।-2016
प्रश्न: राष्ट्रपति द्वारा हाल ही में जारी अध्यादेश के माध्यम से मध्यस्थता एवं सुलह अधिनियम, 1996 में क्या प्रमुख परिवर्तन लाए गए हैं? इससे भारत के विवाद समाधान तंत्र में किस हद तक सुधार आएगा? चर्चा-2015
प्रश्न: अंतर-राज्यीय जल विवादों को हल करने के लिए संवैधानिक तंत्र समस्याओं को संबोधित करने और हल करने में विफल रहे हैं। क्या यह विफलता संरचनात्मक या प्रक्रिया अपर्याप्तता या दोनों के कारण है? चर्चा करें।-2013

स्थानीय स्वशासन (भाग IX, भाग IX-A)

पंचायतें

भारत में स्थानीय स्वशासन का तात्पर्य विकेंद्रीकृत प्रशासन की प्रणाली से है, जहाँ निर्वाचित स्थानीय निकाय स्थानीय मामलों का प्रबंधन करते हैं। यह **लोगों की भागीदारी को बढ़ावा देकर लोकतंत्र को मजबूत करता है , जवाबदेही बढ़ाता है** और शासन को जमीनी स्तर के करीब लाकर **समावेशी विकास को सुगम बनाता है। ये संस्थाएँ बुनियादी सेवाओं** , नियोजन और स्थानीय संसाधन प्रबंधन के वितरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं ।

पंचायती राज सरकार के सामने आने वाले मुद्दे और चुनौतियाँ

हालिया संदर्भ:
भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) ने हाल ही में **"पंचायती राज संस्थाओं के वित्त"** शीर्षक से एक रिपोर्ट प्रकाशित की , जिसमें **2020-21 से 2022-23** के दौरान PRI के वित्तीय परिदृश्य का विश्लेषण किया गया । रिपोर्ट में राजकोषीय विकेंद्रीकरण और जमीनी स्तर पर धन के असमान प्रवाह से संबंधित चुनौतियों पर प्रकाश डाला गया है।

मुख्य मुद्दा - 3एफ चुनौती:
दूसरे **प्रशासनिक सुधार आयोग (द्वितीय एआरसी) ने** इस बात पर बल दिया कि **पंचायती राज संस्थाओं (पीआरआई) की अप्रभावीता** मुख्य रूप से तीन प्रमुख क्षेत्रों में उचित हस्तांतरण की कमी से उपजी है, जिन्हें **3एफ के रूप में जाना जाता है** :

- **कार्य:** पंचायती राज संस्थाओं को उत्तरदायित्वों का अपूर्ण या अस्पष्ट हस्तांतरण।
- **निधि:** इन कार्यों को निष्पादित करने के लिए अपर्याप्त एवं अनियमित वित्तीय संसाधन।
- **पदाधिकारी:** स्थानीय स्तर पर योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए प्रशिक्षित एवं सशक्त कार्मिकों की कमी।

यह त्रिकोणीय अंतर पंचायती राज संस्थाओं की स्वशासन की प्रभावी संस्थाओं के रूप में कार्य करने की क्षमता में बाधा उत्पन्न कर रहा है।

निधि:

- **सीमित वित्तीय स्वायत्तता:** महत्वपूर्ण आंतरिक राजस्व के अभाव और राज्य सरकारों से अपर्याप्त राजकोषीय हस्तांतरण के कारण, कई राज्यों में पंचायती राज संस्थाएं स्वशासन की स्वतंत्र संस्थाओं के बजाय उच्च स्तरीय सरकारों की क्रियान्वयन शाखा के रूप में कार्य करती हैं।
- **सीमित राजस्व-उत्पादन शक्तियाँ:** कर, शुल्क या उपकर लगाने के लिए पीआरआई के पास बहुत कम अधिकार हैं। यहाँ तक कि जहाँ ऐसी शक्तियाँ मौजूद हैं, वहाँ भी स्थानीय निकाय अक्सर राजनीतिक कारणों और जनता के विरोध के डर से उनका प्रयोग करने में हिचकिचाते हैं।
- **राज्य वित्त आयोगों (SFC) के गठन में देरी:** हालाँकि अनुच्छेद 243-I में PRI को वित्तीय हस्तांतरण की सिफारिश करने के लिए हर पाँच साल में राज्य वित्त आयोगों की स्थापना का आदेश दिया गया है, लेकिन कई राज्यों ने इस प्रक्रिया में देरी की है या इसे कमज़ोर कर दिया है। इस अंतर को पहचानते हुए, **15वें वित्त आयोग ने राज्यों के लिए** केंद्रीय अनुदान प्राप्त करने की शर्त के रूप में **मार्च 2024** तक SFC का गठन करना अनिवार्य कर दिया ।
- **स्थानीय आबादी पर कर लगाने में अनिच्छा:** ग्राम पंचायतें अक्सर स्थानीय कर लगाने या संशोधित करने से बचती हैं, जिससे स्थानीय संसाधनों का समुचित उपयोग नहीं हो पाता। नतीजतन, राज्य और केंद्र के हस्तांतरण पर उनकी निर्भरता निरंतर बनी रहती है, जिससे राजकोषीय आत्मनिर्भरता का लक्ष्य कमजोर होता है।

पंचायतों और नगर पालिकाओं के वित्त तंत्र

1. **सहायता अनुदान:**
    - **केन्द्र सरकार से:** संविधान के **अनुच्छेद 280 के अंतर्गत वित्त आयोग** की सिफारिशों पर आवंटित ।
    - **राज्य सरकार की ओर से: अनुच्छेद 243-आई** के तहत **राज्य वित्त आयोग (एसएफसी)** की सिफारिशों के आधार पर , इसका उद्देश्य पंचायती राज संस्थाओं के बीच ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज इक्विटी सुनिश्चित करना है।
2. **ऋण:**
    - राज्य सरकारें विकासात्मक गतिविधियों या बुनियादी ढांचा परियोजनाओं के लिए पंचायती राज संस्थाओं को ऋण प्रदान कर सकती हैं, हालांकि ऐसे ऋण सीमित और सशर्त होते हैं।
3. **स्वयं के राजस्व स्रोत (आंतरिक संसाधन सृजन):**
    - **कर राजस्व:** इसमें संपत्ति कर, गृह कर, जल कर और व्यवसाय कर (जहां लागू हो) शामिल हैं।
    - **गैर-कर राजस्व:** लाइसेंस शुल्क, पंचायत परिसंपत्तियों (जैसे, दुकानें, बाजार) से किराया, जुर्माना, तथा स्वच्छता और जल आपूर्ति जैसी सेवाओं के लिए उपयोगकर्ता शुल्क से प्राप्त होता है।
4. **कार्यक्रम-विशिष्ट आवंटन:**
    - एमजीएनआरईजीएस, पीएमएवाई-जी, जल जीवन मिशन आदि जैसे विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए **केंद्र प्रायोजित योजनाओं (सीएसएस)** और **अतिरिक्त केंद्रीय सहायता (एसीए)** के तहत प्राप्त धनराशि ।

<u>कार्य:</u>

- **पंचायती राज संस्थाओं को सीमित कार्यात्मक हस्तांतरण:**
    - यद्यपि संविधान का **अनुच्छेद 243जी राज्य विधानसभाओं को पंचायतों को शक्तियां और जिम्मेदारियां सौंपने का अधिकार देता है, लेकिन व्यवहार में, अधिकांश राज्य** जलापूर्ति, स्वच्छता, ग्रामीण सड़कें, स्ट्रीट लाइटिंग और सामुदायिक परिसंपत्तियों जैसे **प्रमुख कार्यों पर नियंत्रण बनाए रखते हैं।**
    - परिणामस्वरूप, पंचायती राज संस्थाओं के पास अक्सर आवश्यक सेवाओं की स्वतंत्र रूप से योजना बनाने या क्रियान्वयन करने का अधिकार नहीं होता।
- **अकार्यात्मक जिला योजना समितियाँ (डीपीसी):**
    - **अनुच्छेद 243जेडडी** के तहत संवैधानिक अधिदेश के बावजूद , जिला योजना समितियां - जिनका उद्देश्य ग्रामीण और शहरी स्थानीय निकायों में एकीकृत योजना सुनिश्चित करना है - कई राज्यों में या तो अस्तित्व में नहीं हैं या केवल प्रतीकात्मक हैं।
    - **नीचे से ऊपर की ओर नियोजन** और **अभिसारी विकास** की दृष्टि कमजोर होती है ।
- **महिला प्रतिनिधित्व में दिखावा:**
    - यद्यपि संवैधानिक संशोधनों के माध्यम से अधिकांश राज्यों ने पंचायतों में **महिलाओं के लिए 50% आरक्षण सुनिश्चित कर दिया है** , फिर भी अनेक निर्वाचित महिला प्रतिनिधि (ईडब्ल्यूआर) हाशिए पर ही रह गई हैं।
    - कई मामलों में, **पुरुष रिश्तेदार (अक्सर पति)** प्रतिनिधि निर्णयकर्ता के रूप में कार्य करते हैं - एक प्रवृत्ति जिसे बोलचाल की भाषा में **"सरपंच पति" सिंड्रोम के रूप में जाना जाता है** - जो जमीनी स्तर पर महिलाओं के वास्तविक राजनीतिक सशक्तिकरण को कमजोर करता है।

<u>पदाधिकारी:</u>

- कम जनशक्ति: नगरपालिका प्रशासन के पास सबसे बुनियादी कर्तव्यों को संभालने के लिए भी पर्याप्त लोग नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, क्योंकि अधिकांश कर्मियों को उच्च स्तर के विभागों द्वारा काम पर रखा जाता है और

स्थानीय सरकारों को प्रतिनियुक्त किया जाता है, वे बाद के लिए उत्तरदायी महसूस नहीं करते हैं; इसके बजाय, वे एक विभागीय प्रणाली के एक भाग के रूप में काम करते हैं जो लंबवत रूप से एकीकृत है।

- जवाबदेही तंत्र का अभाव: सार्वजनिक निधियों की जवाबदेही सुदृढ़ सार्वजनिक वित्त का मूल है। इस क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति नहीं हुई है।
- 15वें वित्त आयोग ने स्थानीय निकायों को अनुदान प्राप्त करने के लिए प्रवेश स्तर की शर्तों में से एक के रूप में अनंतिम और लेखापरीक्षित दोनों खातों को सार्वजनिक डोमेन में ऑनलाइन उपलब्ध कराना शामिल किया है।
- विलंबित चुनाव: पंचायती राज संस्थाओं के चुनावों में देरी एक आम बात होती जा रही है, जिससे पंचायती राज संस्थाओं की प्रभावशीलता कम होती जा रही है। मध्य प्रदेश, हरियाणा और तमिलनाडु में पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव में देरी हुई है।
- पंचायती राज संस्थाओं का राजनीतिकरण: अब पंचायती राज संस्थाओं को केवल राजनीतिक दलों, विशेषकर राज्य में सत्तारूढ़ दल की संगठनात्मक शाखा के रूप में देखा जाता है।

पंचायती राज संस्थाओं को सशक्त बनाने के लिए सरकारी प्रयास

- संपत्ति अधिकार सुनिश्चित करना: मंत्रालय ने ड्रोन सर्वेक्षण तकनीक का उपयोग करके ग्रामीण लोगों के घरों की संपत्ति का रिकॉर्ड तैयार करने के लिए 'स्वामित्व' नामक एक योजना शुरू की है।
- पंचायती राज संस्थाओं की क्षमता निर्माण: पंचायती राज संस्थाओं की क्षमता विकसित करने और उन्हें मजबूत बनाने के लिए 1 अप्रैल 2018 को राष्ट्रीय ग्राम स्वराज अभियान (आरजीएसए) की एक नई योजना शुरू की गई।
- ई-ग्राम स्वराज: यह पंचायतों की विश्वसनीयता बढ़ाने में सहायता करेगा, जिससे पीआरआई को अधिक धनराशि का हस्तांतरण होगा और साथ ही उच्च अधिकारियों द्वारा प्रभावी निगरानी के लिए एक मंच प्रदान किया जाएगा।
- ग्राम पंचायत विकास योजना (जीपीडीपी): यह पंचायती राज मंत्रालय (एमओपीआर) द्वारा सभी ग्राम पंचायतों और अन्य स्थानीय स्वशासन निकायों में किया जाने वाला एक वार्षिक अभ्यास है, जहां लोगों की योजना अभियान के तहत भागीदारीपूर्ण तरीके से जीपी विकास योजनाएं तैयार की जाती हैं।
- क्षमता निर्माण - पंचायत सशक्तिकरण अभियान (सीबी-पीएसए): इसने राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को पंचायत के निर्वाचित प्रतिनिधियों के क्षमता निर्माण और प्रशिक्षण के लिए सहायता प्रदान की थी, ताकि वे विकास कार्यक्रमों की योजना और कार्यान्वयन सहित अपने कार्यों को प्रभावी और कुशलतापूर्वक निष्पादित कर सकें।

उठाए जाने वाले कदम

- वास्तविक भावना में राजकोषीय संघवाद: द्वितीय एआरसी ने सिफारिश की थी कि राजकोषीय घाटे का स्पष्ट सीमांकन होना चाहिए।
- सरकार के प्रत्येक स्तर के कार्यों के लिए 15वें वित्त आयोग (XV FC) ने 2020-21 के लिए अपनी अंतरिम रिपोर्ट और 2021-2026 के लिए अंतिम रिपोर्ट में पंचायतों के सभी तीन स्तरों के लिए क्रमशः 60750 करोड़ रुपये और 236805 करोड़ रुपये की राशि की सिफारिश की है।
- जिला स्तरीय योजना: ग्राम और वार्ड सभाओं में लोगों की भागीदारी के माध्यम से गांव, मध्यवर्ती और जिला स्तर से प्राप्त जमीनी स्तर के इनपुट के आधार पर जिला योजना।
- लेखापरीक्षा समितियां: वित्तीय आंकड़ों की सटीकता, आंतरिक नियंत्रण की प्रभावशीलता, प्रासंगिक कानून के अनुपालन और स्थानीय निकायों के प्रत्येक सदस्य के नैतिक चरित्र की निगरानी के लिए राज्य सरकारों द्वारा जिला स्तर पर इनकी स्थापना की जा सकती है।
- वित्तीय सशक्तिकरण: पंचायतों को अपने राजस्व के स्रोत को बढ़ाने के लिए अन्य गतिविधियों के साथ-साथ कर, टोल, उपयोगकर्ता शुल्क, फीस आदि लगाने और एकत्र करने के लिए सशक्त बनाने की आवश्यकता है।

- पृथक कैडर: पंचायत अधिकारियों का एक पृथक कैडर स्थापित किया जाएगा जो निर्वाचित प्राधिकारी के अधीन होगा, न कि उन पर प्रभुत्व जमाएगा।

डिजिटल पंचायतें: ईग्रामस्वराज पीएफएमएस इंटरफ़ेस

- पंचायती राज संस्थाओं (पीआरआई) में ई-गवर्नेंस को मजबूत करने के लिए, ई-ग्राम स्वराज विकसित किया गया है। यह पंचायती राज के लिए एक सरलीकृत कार्य-आधारित लेखा अनुप्रयोग है।
- ईग्राम स्वराज-पीएफएमएस इंटरफेस (ईजीएसपीआई) - पारदर्शिता और जवाबदेही बढ़ाने के लिए इसे 2018 में लॉन्च किया गया था। केंद्रीय वित्त आयोग द्वारा किए गए खर्चों के लिए पंचायतों द्वारा ऑनलाइन भुगतान की सुविधा के लिए, ईजीएस और सार्वजनिक वित्तीय प्रबंधन प्रणाली के लेखा मॉड्यूल को एकीकृत किया गया।

पंचायती राज संस्था में महिलाओं की भूमिका

- महिलाओं के लिए, लगभग एक तिहाई निर्वाचन क्षेत्र अलग रखे गए हैं। इसके अतिरिक्त, यह सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देता है और इसकी गारंटी देता है। इसका उद्देश्य महिलाओं के लिए एक मौलिक रूप से ठोस राष्ट्रीय नीति विकसित करना है।

सकारात्मक परिणाम और सशक्तिकरण:

- पंचायती राज संस्थाओं में आरक्षण प्रणाली के कार्यान्वयन से महिलाएं अधिक सशक्त होंगी तथा समाज में उनकी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति बेहतर होगी।
- यह पारंपरिक रूप से पुरुष-प्रधान संस्कृति के भीतर उदारीकरण की अनुमति देता है और सुदृढ़ शासन पर एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।
- आरक्षण प्रणाली के कारण महिलाओं को राजनीति में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।
- इससे स्वास्थ्य, शिक्षा, पारिवारिक आय तथा अन्य क्षेत्रों में परिणामों में सुधार हुआ है।
- इस संशोधन के पारित होने के परिणामस्वरूप पंचायती राज प्रणाली ने अब महिलाओं के अधिकारों को मान्यता दे दी है, जो सरकार में योगदान देने के लिए महिलाओं की क्षमता को साकार करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।
- इससे ग्रामीण पंचायतों में योजना बनाने, निर्णय लेने और आवश्यकता क्रियान्वयन में महिलाओं की भागीदारी संभव हो जाती है।

चुनौतियाँ और मुद्दे:

- पंचायत पति राज व्यवस्था: छद्म राजनीति और लिंग आधारित भेदभाव
- अत्यधिक हिंसा एक बाधा थी जिसे महिला सरपंचों को अपने समुदायों में स्थापित सत्ता संरचनाओं को चुनौती देने के लिए पार करना पड़ा।
- इसके अतिरिक्त, यह भी देखा गया है कि परिवार के पुरुष सदस्य चुनाव लड़ते समय अपने परिवार की महिलाओं की स्थिति का लाभ उठाते हैं, जिससे पुरुषों को पीआरआई पर हावी होने के लिए महिलाओं का उपयोग करने का मौका मिल जाता है।
- दलित महिला पंचायत नेताओं के लिए ग्राम पंचायत कार्यालय जाना और ग्राम सभा का प्रबंधन और नियंत्रण करना प्रतिबंधित था। प्रतिनिधि के रूप में उनके पति कार्यालय के प्रभारी थे।

नगर पालिकाएं

- हाल ही में, क्षमता निर्माण आयोग (सीबीसी) ने आवास एवं शहरी कार्य मंत्रालय के सहयोग से भारत भर में शहरी स्थानीय निकायों की क्षमता निर्माण के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण को बढ़ावा देने के लिए शहरी स्थानीय निकायों की क्षमता निर्माण पर एक राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन किया। कार्यशाला में प्रमुख पहलों की शुरुआत की गई।
- आवास एवं शहरी कार्य मंत्रालय की क्षमताओं को बढ़ाने के लिए वार्षिक क्षमता निर्माण योजना (एसीबीपी)।
- 6 पायलट यूएलबी ले के लिए एसीबीपी। अहमदाबाद, भुवनेश्वर, मैसूरु, राजकोट, नागपुर और पुणे

शहरी स्थानीय निकायों के लिए क्षमता निर्माण की आवश्यकता

- भारत की बढ़ती शहरी आबादी की जरूरतों को पूरा करना, जिसके 2050 तक 460 मिलियन (2018) से लगभग दोगुना होकर 876 मिलियन हो जाने की उम्मीद है।
- नीचे से ऊपर की ओर योजना के माध्यम से सामाजिक और आर्थिक विकास सुनिश्चित करके क्षेत्रीय आकांक्षाओं से निपटना।
- स्मार्ट सिटी मिशन, अमृत मिशन आदि योजनाओं के सफल एवं प्रभावी क्रियान्वयन हेतु।

स्थानीय स्वशासन का प्रभाव

- सत्ता का विकेंद्रीकरण: स्थानीय स्वशासन ने स्थानीय समुदायों को निर्णय लेने और नीतियों को लागू करने का अधिकार दिया है जो सीधे उनके क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं।
- सामुदायिक भागीदारी: उदाहरण के लिए, शहरी क्षेत्रों में वार्ड समितियां निवासियों को अपनी चिंताओं को व्यक्त करने तथा सुधार सुझाने के लिए एक मंच प्रदान करती हैं।
- प्रभावी सेवा वितरण: उदाहरण के लिए, जल आपूर्ति, स्वच्छता आदि जैसी आवश्यक सेवाएं प्रदान करने के लिए जिम्मेदार ग्राम पंचायतें स्थानीय आवश्यकताओं के प्रति बेहतर जवाबदेही सुनिश्चित करती हैं।
- जमीनी स्तर पर विकास: उदाहरण के लिए, जिला योजना समितियां जिला स्तरीय विकास योजनाएं तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जो स्थानीय आबादी की विशिष्ट आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं को संबोधित करती हैं।
- हाशिए पर पड़े समुदायों का सशक्तिकरण: उदाहरण के लिए, स्थानीय निकायों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण उनकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करता है।

नगर पालिकाओं में मुद्दे

- शहरी स्थानीय निकायों की कम कार्यात्मक स्वायत्तता: 74वें सीएए की 12वीं अनुसूची में 18 कार्य सूचीबद्ध हैं जिन्हें शहरी स्थानीय निकायों द्वारा निष्पादित किया जाना आवश्यक है, लेकिन कई राज्यों ने शहरी स्थानीय निकायों को सभी कार्य आवंटित नहीं किए हैं।
- कर्नाटक और केरल जैसे कई राज्यों में अभी भी पानी की आपूर्ति का प्रबंधन संबंधित मंत्रालयों द्वारा किया जाता है।
- राज्य सरकार।
- कम राजस्व: संपत्ति कर यूएलबी के लिए राजस्व का सबसे बड़ा स्रोत है। हालांकि, व्यापक छूट, संपत्ति के कम मूल्यांकन और अधूरे भूमि रजिस्टरों के कारण कर संग्रह कम है।
- सत्ता का संकेन्द्रण: शहरी निकायों में सत्ता एक ही नगर निकाय (चाहे वह नगर निगम, नगर परिषद या नगर पंचायत हो) में समेकित होती है।
- शहरी नागरिकों के साथ खराब संपर्क: शहरी क्षेत्रों में नागरिकों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में शायद ही कभी शामिल किया जाता है, विशेष रूप से समाज के हाशिए पर पड़े और कमजोर वर्गों को, जो वास्तव में शहरीकरण के उभरते संकट से सबसे अधिक प्रभावित हैं।
- शहरी स्थानीय निकायों की क्षमता निर्माण के लिए उठाए गए कदम।
- राष्ट्रीय शहरी डिजिटल मिशन: इसका उद्देश्य देश में डिजिटल शासन के लिए एक ढांचा प्रदान करने के लिए 'लोग, प्रक्रिया और प्लेटफॉर्म' के तीन स्तंभों पर काम करते हुए एक साझा डिजिटल बुनियादी ढांचे का निर्माण करना है।
- जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीकरण मिशन (जेएनएनयूआरएम): शहरी बुनियादी ढांचे में दक्षता पर ध्यान केंद्रित करता है
- और सेवा वितरण तंत्र, सामुदायिक भागीदारी, और नागरिकों के प्रति यूएलबी/पैरास्टेटल एजेंसियों की जवाबदेही।
- म्यूनिसिपल बांड: ये वित्तीय साधन हैं जो भारत में नगर निगम और अन्य संबद्ध निकाय धन जुटाने के लिए जारी करते हैं।

आगे बढ़ने का रास्ता

- शहरी अर्थव्यवस्था का लाभ उठाना: प्रत्येक शहर को अर्थव्यवस्था की एक अलग इकाई के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। बड़े शहरों में, सिटी इकोनॉमिक काउंसिल व्यवसायों और सरकारों के बीच क्लियरिंग हाउस के रूप में काम कर सकती है ताकि विशिष्ट परियोजनाओं की प्रगति में तेज़ी लाई जा सके, व्यवसाय करने में आसानी हो और शहर में निवेश को बढ़ावा मिले।
- एफएफएफ के हस्तांतरण को प्रोत्साहित करना: राज्य सरकारों को 12वीं अनुसूची के फंड, कार्यों और पदाधिकारियों को यूएलबी में स्थानांतरित करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।
- शहरी स्थानीय निकायों और नागरिक एजेंसियों की वित्तीय स्थिति को मजबूत करना: इसमें बाजार उन्मुख राजस्व मॉडल, मूल्य निर्धारण और अन्य शामिल हैं।
- कैप्चर तकनीक, राजकोषीय विकेंद्रीकरण, मध्यम अवधि की राजकोषीय योजनाएँ, शहरी बुनियादी ढाँचे और सेवाओं में पीपीपी, और ऑडिटेड बैलेंस शीट और प्रदर्शन एमआईएस रिपोर्ट के माध्यम से वित्तीय जवाबदेही। इसमें रिटर्न को ऑप्टिमाइज़ करना भी शामिल है
- परिसंपत्तियों, विशेषकर भूमि और भवनों पर।
- नागरिक भागीदारी: नागरिकों और सरकारों के बीच अधिक विश्वास, बेहतर स्थिरता, बेहतर सेवा वितरण और जवाबदेही के लिए नागरिक भागीदारी को बढ़ाने की आवश्यकता है।
- वार्ड समितियों और क्षेत्र सभाओं को प्रौद्योगिकी-सक्षम 'ओपन सिटीज फ्रेमवर्क' के साथ सक्रिय किया जाना चाहिए तथा फीडबैक और रिपोर्टिंग के लिए डिजिटल उपकरणों का उपयोग किया जाना चाहिए।
- भारत में नगर पालिकाएँ स्थानीय शासन की महत्वपूर्ण इकाइयों के रूप में काम करती हैं, जो शहरी क्षेत्रों के प्रशासन और विकास के लिए जिम्मेदार हैं। भारत में टिकाऊ और समावेशी शहरी विकास सुनिश्चित करने के लिए नगरपालिका शासन की प्रभावशीलता और दक्षता को बढ़ाने के लिए निरंतर प्रयासों की आवश्यकता है।
- **टिप्पणियाँ** : पंचायत राज प्रणाली, क्षमता निर्माण आयोग, राज्य वित्त आयोग, सत्ता का विकेन्द्रीकरण, सामुदायिक भागीदारी, वार्ड समितियां, जिला योजना समितियां, कार्यात्मक स्वायत्तता, नगर आर्थिक परिषदें, मूल्य अधिग्रहण तकनीक, मध्यम अवधि राजकोषीय योजनाएं, खुले शहरों की रूपरेखा।

नगरपालिका चुनाव

- सर्वोच्च न्यायालय ने चंडीगढ़ नगर निगम के लिए हुए महापौर चुनाव के परिणाम को अवैध एवं निरस्त कर दिया।
- निष्पक्ष एवं समय पर नगरपालिका चुनाव की आवश्यकता:
- 'प्रथम-मील' संपर्क: नगर पालिकाएं महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि पार्षद 'प्रथम-मील' निर्वाचित नागरिक प्रतिनिधियों के रूप में कार्य करते हैं।
- जमीनी स्तर के मुद्दों से निपटना: समय पर चुनाव कराने से स्थानीय स्तर पर कार्रवाई सुनिश्चित होगी, जो 21वीं सदी की मानव विकास प्राथमिकताओं से निपटने के लिए आवश्यक है, जिसमें पर्यावरणीय स्थिरता, प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल, लैंगिक समानता और नौकरियां और आजीविका शामिल हैं।

नगर निगम चुनावों में चुनौतियाँ

- असामयिक चुनाव: सुरेश महाजन बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2022) में सर्वोच्च न्यायालय के विशिष्ट निर्देश के बावजूद राज्य सरकारें शहरी स्थानीय सरकारों के लिए समय पर चुनाव नहीं कराती हैं।
- विभिन्न राज्यों में 2015 से 2021 तक 1,500 से अधिक नगर पालिकाओं में निर्वाचित परिषदें नहीं थीं।
- परिषद गठन में विलंब: चुनाव के बाद भी परिषदों का गठन नहीं हो पाता है तथा महापौर, उप महापौर और स्थायी समितियों के चुनाव में देरी हो जाती है।

- परिसीमन और आरक्षण: अधिकांशतः राज्य ने परिसीमन प्रक्रिया में देरी की, जिसके कारण परिषद चुनावों में देरी हुई।
- असंगत महापौर कार्यकाल: भारत में, आठ सबसे बड़े शहरों में से पांच सहित 17% शहरों में महापौर का कार्यकाल पांच वर्ष से कम है।
- महापौर, उप महापौर और स्थायी समितियों का कार्यकाल पांच वर्ष से कम होने के कारण बार-बार चुनाव कराने पड़ते हैं।
- राज्य विद्युत वितरण कंपनियों के पास शक्ति का अभाव है: क्योंकि वे वार्ड सीमाओं का परिसीमन पूरा करने तथा महिलाओं के साथ-साथ हाशिए पर पड़े समुदायों के लिए आरक्षण अधिसूचित करने के लिए राज्य सरकारों पर निर्भर हैं।

आगे बढ़ने का रास्ता

- परिसीमन की शक्ति: परिसीमन और आरक्षण प्रक्रिया के संचालन के लिए प्रत्येक राज्य में एसईसी या एक स्वतंत्र परिसीमन आयोग में निहित होनी चाहिए।
- एस.ई.सी.एस. को सशक्त बनाना: एस.ई.सी. को मजबूत बनाना तथा उन्हें सम्पूर्ण चुनाव प्रक्रिया में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करना, समय पर, स्वतंत्र तथा निष्पक्ष नगरपालिका चुनाव सुनिश्चित करने में मदद कर सकता है।
- एकल मतदाता सूची: एक साथ चुनाव संबंधी उच्च स्तरीय समिति द्वारा सुझाए गए अनुसार सरकार के सभी तीन स्तरों के लिए एकल मतदाता सूची से विभिन्न एजेंसियों में अनावश्यकता और दोहराव कम हो जाएगा।

पिछले वर्ष के प्रश्न
प्रश्न: आपकी राय में, भारत में सत्ता के विकेंद्रीकरण ने जमीनी स्तर पर शासन परिदृश्य को किस हद तक बदल दिया है? - 2020
प्रश्न: भारत में स्थानीय संस्थाओं की शक्ति-निर्वाह उनके 'कार्य, कार्यकर्ता और निधि' के प्रारंभिक चरण से 'कार्यक्षमता' के समकालीन चरण में स्थानांतरित हो गई है। हाल के समय में स्थानीय संस्थाओं द्वारा उनकी कार्यक्षमता के संदर्भ में सामना की जाने वाली महत्वपूर्ण चुनौतियों पर प्रकाश डालें। - 2020
प्रश्न: "स्थानीय स्वशासन की संस्था में महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण का भारतीय राजनीतिक प्रक्रिया के पितृसत्तात्मक चरित्र पर सीमित प्रभाव पड़ा है।" टिप्पणी करें - 2019
प्रश्न: भारत में स्थानीय सरकार के एक अंग के रूप में पंचायत प्रणाली के महत्व का आकलन करें। सरकारी अनुदान के अलावा, पंचायतें विकास परियोजनाओं के वित्तपोषण के लिए किन स्रोतों पर विचार कर सकती हैं? - 2018
प्रश्न: "भारत में स्थानीय स्वशासन प्रणाली शासन का प्रभावी साधन साबित नहीं हुई है।" इस कथन की आलोचनात्मक जांच करें और स्थिति को सुधारने के लिए अपने विचार दें। - 2017
प्रश्न: एक सुशिक्षित और संगठित स्थानीय स्तर की सरकार प्रणाली के अभाव में, "पंचायतें और समितियां" मुख्य रूप से राजनीतिक संस्थाएं बनी हुई हैं और शासन के प्रभावी साधन नहीं हैं। आलोचनात्मक चर्चा करें। - 2015

भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक

CAG को सार्वजनिक खजाने का संरक्षक माना जाता है और यह भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग का प्रमुख है। यह वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में भारत के संविधान और संसद के कानूनों को कायम रखता है। इन कारणों से, डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने CAG को भारत में "सरकार की लोकतांत्रिक प्रणाली के स्तंभों में से एक" कहा।

सीएजी के कर्तव्य और शक्तियां

इन्हें संसद द्वारा CAG (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1971 में निर्धारित किया गया है।

CAG निम्नलिखित सरकारी खातों का ऑडिट करता है

- भारत की संचित निधि, भारत की आकस्मिकता निधि और भारत के सार्वजनिक खाते से केन्द्र सरकार का व्यय।
- राज्य सरकार और संघ राज्य क्षेत्र (विधानसभा सहित) का राज्य की समेकित निधि, राज्य की आकस्मिकता निधि और राज्य के सार्वजनिक खाते से व्यय।
- केन्द्र एवं राज्य सरकार के विभाग: सभी व्यापार, विनिर्माण, लाभ एवं हानि खाते, बैलेंस शीट और अन्य सहायक खाते।
- वे निकाय जो मुख्यतः केन्द्रीय या राज्य राजस्व से वित्तपोषित होते हैं।
- सरकारी कम्पनियां।

सीएजी के लिए संवैधानिक प्रावधान

- **अनुच्छेद 148** : नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति, शपथ और सेवा की शर्तों से संबंधित प्रावधान।
- **अनुच्छेद 149** : नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक ऐसे कर्तव्यों का पालन करेगा तथा ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा जैसा कि संसद द्वारा या उसके कानून के अधीन निर्धारित किया जा सकता है।
- **अनुच्छेद 150** : यह राष्ट्रपति को संघ और राज्यों के लेखाओं के प्रारूप के बारे में सलाह देता है।
- **अनुच्छेद 151** : संघ के लेखाओं से संबंधित नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत की जाएगी, जो उन्हें संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा। इसी प्रकार, राज्यों से संबंधित नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट राज्य के राज्यपाल को प्रस्तुत की जाएगी, जो उन्हें राज्य विधानमंडल के समक्ष रखवाएगा।
- संसद की लोक लेखा समिति के **मार्गदर्शक, मित्र और दार्शनिक के रूप में कार्य करता है** ।

सीएजी और लोक लेखा समिति:

भारत सरकार अधिनियम, 1919 के तहत एक संसदीय स्थायी समिति बनाई गई।

यह केन्द्र और राज्य दोनों स्तरों पर CAG की लेखापरीक्षा रिपोर्ट प्राप्त करता है।

CAG कई भूमिकाएं निभाने में PAC की सहायता करता है। उदाहरण के लिए, यदि CAG द्वारा सुझाई गई सुधारात्मक कार्रवाई नहीं की जाती है, तो इसकी रिपोर्ट PAC को दी जाती है; जो इसे सरकार के समक्ष उठाती है।

भारत में CAG बनाम ब्रिटेन में CAG

पहलू	भारत में CAG	ब्रिटेन में CAG
आधिकारिक भूमिका	केवल नाम के लिए "महालेखा परीक्षक" कहा	**लेखा परीक्षक और नियंत्रक दोनों** भूमिकाएं

	जाता है; **केवल लेखापरीक्षा की भूमिका निभाता है**	निभाता है
लेखापरीक्षा की प्रकृति	लेखापरीक्षा **पूर्वव्यापी होती है** (व्यय हो जाने के बाद)	स्वीकृति **व्यय से पूर्व दी जाती है** ; CAG की अनुमति के बिना कोई धनराशि नहीं निकाली जा सकती
संसदीय सदस्यता	संसद का **सदस्य नहीं**	**हाउस ऑफ कॉमन्स के सदस्य**

सीएजी की स्वतंत्रता

- कार्यकाल की सुरक्षा: राष्ट्रपति द्वारा अपने हस्ताक्षर और मुहर सहित वारंट द्वारा नियुक्त किया जाता है। उसका कार्यकाल 65 वर्ष या 6 वर्ष जो भी पहले हो, होता है।
- निष्कासन: राष्ट्रपति द्वारा उसी प्रक्रिया के तहत हटाया जा सकता है जिस प्रक्रिया के तहत सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता है।
- सेवानिवृत्ति के बाद का पद: केंद्र या राज्य सरकार के अधीन किसी भी अन्य पद के लिए पात्र नहीं। वेतन और अन्य
- सेवा शर्तें: संसद द्वारा निर्धारित की जाएंगी तथा नियुक्ति के बाद इनमें नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के अहित में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकेगा।
- व्यय: कार्यालय के प्रशासनिक व्यय, वेतन, भत्ते और पेंशन का भार सीएफआई पर डाला जाता है।
- प्रशासनिक शक्तियाँ: भारतीय लेखापरीक्षा एवं लेखा विभाग (जिसका प्रमुख CAG है) में सेवारत लोगों की सेवा की शर्तें तथा CAG की प्रशासनिक शक्तियाँ CAG के परामर्श के बाद राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित की जाती हैं।
- कोई भी मंत्री संसद (दोनों सदनों) में CAG का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता है और किसी भी मंत्री को उसके द्वारा किए गए किसी भी कार्य के लिए जिम्मेदारी लेने के लिए नहीं कहा जा सकता है।

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यालय की सीमाएं

- नियुक्ति: CAG की नियुक्ति पूर्णतः कार्यपालिका के विवेक पर निर्भर है, जो कार्यपालिका को जवाबदेह ठहराने की उसकी भूमिका को सीमित करती है।
- महालेखा परीक्षक, नियंत्रक नहीं: इसकी रिपोर्ट कार्योत्तर होती है, अर्थात् यह व्यय का लेखा परीक्षण तभी कर सकता है जब व्यय पूरा हो चुका हो।
- सीमित उपयोगिता: लेखा परीक्षकों को पता है कि लेखापरीक्षा क्या है, प्रशासन क्या है; यह एक अत्यंत साधारण कार्य है, जिसका दृष्टिकोण संकीर्ण है तथा उपयोगिता भी बहुत सीमित है।
- कम कार्यकाल: 65 वर्ष की आयु सीमा संस्था के समुचित कामकाज को प्रभावित करती है।
- जनादेश का अतिक्रमण: कभी-कभी जनादेश का अतिक्रमण करने के लिए इसकी आलोचना की जाती है। उदाहरण के लिए 2जी और कोयला ब्लॉक आवंटन पर रिपोर्ट में घाटे या भ्रष्टाचार के अजीबोगरीब या सनसनीखेज आंकड़े थे।
- सीमित संसाधन: जनशक्ति की कमी और उत्तरदायित्व में वृद्धि के परिणामस्वरूप बहुत कम खातों की वार्षिक लेखापरीक्षा हो पाती है।
- जोखिम लेने को हतोत्साहित करना: CAG नीति की 'बुद्धिमत्ता, विश्वसनीयता, मितव्ययिता' पर विचार करते समय, प्रशासन की व्यावहारिक समस्याओं पर विचार नहीं कर सकता है।
- स्वतंत्रता: हितों का टकराव उत्पन्न होता है क्योंकि पूर्व सचिवों (आमतौर पर आईएएस) को सीएजी के रूप में नियुक्त किया जाता है, जो संस्था की स्वतंत्रता से समझौता करता है।
- गुप्त व्यय: CAG कुछ मामलों में व्यय का विवरण नहीं मांग सकता तथा उसे सक्षम प्रशासनिक प्राधिकारी से प्रमाण पत्र स्वीकार करना होता है।

- लेखापरीक्षा में जानबूझकर बाधा डालना: लेखापरीक्षकों को महत्वपूर्ण दस्तावेजों की आपूर्ति में देरी करना तथा कभी-कभी तो उन्हें देने से भी मना कर दिया जाता है।
- नियुक्ति के लिए कोई मानदंड नहीं: संविधान या किसी भी कानून में; सीएजी की नियुक्ति के लिए कोई मानदंड प्रदान नहीं किया गया है।
- वैधानिक मान्यता का अभाव: भारतीय लेखापरीक्षा एवं लेखा विभाग के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिए।

सीएजी के पास सार्वजनिक जवाबदेही, पारदर्शिता, प्रभावी सेवा वितरण और सुशासन सुनिश्चित करने का संवैधानिक और वैधानिक दायित्व है। इसने हाल ही में संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय का ऑडिट किया जो संस्था की विश्वसनीयता को दर्शाता है।

टिप्पणियाँ : प्रथम मील का कनेक्शन, परिसीमन आयोग, सरकार की लोकतांत्रिक प्रणाली की दीवारें, भारत की आकस्मिकता निधि, लोक लेखा समिति के दार्शनिक, उनके हस्ताक्षर और मुहर सहित वारंट, भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग, बुद्धिमत्ता, निष्ठा, नीति की अर्थव्यवस्था।

पिछले वर्ष के प्रश्न
प्रश्न: "नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (सीएजी) की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है।" बताएं कि यह उनकी नियुक्ति की विधि और शर्तों के साथ-साथ उनके द्वारा प्रयोग की जा सकने वाली शक्तियों की सीमा में कैसे परिलक्षित होता है। (2018)
प्रश्न: संघ और राज्यों के खातों के संबंध में CAG की शक्तियों का प्रयोग भारतीय संविधान के अनुच्छेद 149 से लिया गया है। चर्चा करें कि क्या सरकार की नीति कार्यान्वयन की लेखापरीक्षा उसके अपने (CAG) अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करने के समान होगी। - 2016

COACH UPSC
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

आयोगों की संरचना (एनसीएससी / एनसीएसटी / एनसीबीसी)

प्रत्येक आयोग में निम्नलिखित सदस्य होते हैं:

- **अध्यक्ष**
- **उपाध्यक्ष**
- **तीन अन्य सदस्य**

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष सहित सभी सदस्यों की **नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है** ।

आयोगों के मुख्य कार्य

ये आयोग (राष्ट्रीय अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़ा वर्ग आयोग) संबंधित समुदायों की सुरक्षा और उत्थान सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न कर्तव्यों का पालन करते हैं।

1. निगरानी और समीक्षा

- अनुसूचित जातियों (एससी), अनुसूचित जनजातियों (एसटी) और अन्य पिछड़ा वर्गों (ओबीसी) को उपलब्ध **संवैधानिक सुरक्षा उपायों और अन्य कानूनी संरक्षण** की स्थिति की जांच करें ।
- समीक्षा करें कि क्या ये सुरक्षा उपाय केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा प्रभावी ढंग से क्रियान्वित किए जा रहे हैं।

2. शिकायतों का निपटारा

- अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों या अन्य पिछड़े वर्गों के **अधिकारों के हनन या हनन** से संबंधित **विशिष्ट शिकायतों की जांच करना ।**
- अत्याचार या अन्याय से जुड़ी बड़ी घटनाओं का **स्वतः संज्ञान** लें ।

3. विकास में नीति की भूमिका

- इन समुदायों की सामाजिक-आर्थिक उन्नति को लक्षित करते हुए **विकास कार्यक्रमों की योजना बनाने और उन्हें क्रियान्वित करने के** संबंध में केंद्र और राज्य सरकारों को सलाह देना ।
- मौजूदा योजनाओं की **प्रभावशीलता** का मूल्यांकन करें और फीडबैक दें ।

4. राष्ट्रपति को रिपोर्ट करना

- **भारत के राष्ट्रपति** को **वार्षिक रिपोर्ट** प्रस्तुत करें जिसमें विस्तृत जानकारी हो:
  - संवैधानिक प्रावधानों और कानूनों के **कार्यान्वयन की स्थिति** ।
  - **कल्याण और अधिकार संरक्षण** में सुधार के लिए सुझाव ।

5. उपाय सुझाएँ

- इन समुदायों के लिए **बेहतर कल्याण और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए नई नीतियों** या मौजूदा कानूनों में **संशोधन का** सुझाव दें ।

विशेष जिम्मेदारियाँ और उपकरण

न्याय तक डिजिटल पहुंच

- **ऑनलाइन शिकायत पोर्टल** : एनसीएससी पीड़ितों को अपनी आधिकारिक वेबसाइट के माध्यम से जाति-आधारित अत्याचारों से संबंधित शिकायत सीधे दर्ज करने की अनुमति देता है।

न्यायिक निरीक्षण

- निम्नलिखित मामलों के त्वरित निपटान के लिए **विशेष न्यायालयों** की **स्थापना और कार्यप्रणाली की** निगरानी करना :

- **नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955**
- **अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989**

डेटा मॉनिटरिंग

- एससी/एसटी समुदायों द्वारा सामना किए जाने वाले अपराधों और अन्याय पर **सांख्यिकीय डेटा** एकत्र करें और उसका आकलन करें तथा सुधारात्मक कार्रवाई के लिए फीडबैक प्रदान करें।

कानून कार्यान्वयन निगरानी संस्था

- यह सुनिश्चित करना कि केंद्र और राज्य सरकारें अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के संरक्षण, सशक्तिकरण और कल्याण से संबंधित **कानूनी प्रावधानों को प्रभावी ढंग से लागू कर रही हैं ।**

एनसीएसटी के विशिष्ट कार्य:

- वन क्षेत्रों में रहने वाले अनुसूचित जनजातियों को लघु वन उपज (एमएफपी) का स्वामित्व अधिकार प्रदान करना।
- आदिवासियों के विकास के लिए उपाय करना तथा अधिक व्यवहार्य आजीविका रणनीतियों पर काम करना।
- वनों के संरक्षण और सामाजिक वनरोपण में आदिवासियों का सहयोग और भागीदारी प्राप्त करना।
- पेसा के पूर्ण कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाना,
- कानून के अनुसार विभिन्न संसाधनों जैसे- जल संसाधन, खनिज संसाधन आदि पर जनजातीय समुदायों के अधिकारों की रक्षा करना।
- विकास परियोजनाओं से विस्थापित आदिवासियों के लिए किए गए पुनर्वास उपायों की प्रभावकारिता में सुधार करना।
- आदिवासियों द्वारा की जाने वाली स्थानान्तरित खेती की प्रथा को कम करने तथा अंततः समाप्त करने के लिए उपाय करना।

कमजोर वर्गों की सुरक्षा के लिए संवैधानिक निकायों की सीमाएँ:

- बुनियादी ढांचे, जनशक्ति और संसाधनों की कमी।
- इन समुदायों के प्रति संस्थाओं की क्षमता की कमी और असंवेदनशीलता।
- आयोग की सिफारिशें बाध्यकारी नहीं हैं।
- इन समुदायों के पिछड़ेपन को देखते हुए नियुक्ति की शर्तें बहुत ऊंची होने के कारण इनकी कार्यप्रणाली अकुशल है।
- अस्पष्ट चयन एवं नियुक्ति प्रक्रिया, अत्यधिक बजट।

102वां संविधान संशोधन अधिनियम 2018

- इसमें एक नया अनुच्छेद 338-बी जोड़ा गया, जिसने एनसीबीसी को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया।
- इसने सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के हितों की अधिक प्रभावी ढंग से रक्षा करने के लिए एनसीबीसी के कार्यों का विस्तार किया।

एनसीबीसी को संवैधानिक दर्जा देने के सकारात्मक पहलू

- अधिक अधिकार देना: संवैधानिक दर्जा मिलने से एनसीबीसी का कद बढ़ जाएगा क्योंकि संवैधानिक निकाय के रूप में वह पिछड़े वर्गों के कल्याण को सुनिश्चित करने में बेहतर स्थिति में होगा।
- अधिक वस्तुनिष्ठता: अनुच्छेद 342ए के अनुसार पिछड़ी सूची में किसी भी समुदाय को जोड़ने या हटाने के लिए संसद की सहमति लेना अनिवार्य है।
- कुछ वर्गों द्वारा क्रीमी मानदण्डों के दुरुपयोग को कम किया जाएगा।
- वार्षिक रिपोर्ट: संविधान के अनुसार केंद्र और राज्य सरकारों को समिति की रिपोर्ट पर कार्रवाई न करने के लिए वैध कारण बताना आवश्यक है।
- शिकायत निवारण: एनसीबीसी के पास सिविल न्यायालयों की सभी शक्तियां होंगी, जिससे वह पिछड़े वर्गों के लिए न्याय सुनिश्चित करने में सक्षम होगा।
- व्यापक जिम्मेदारी: अतिरिक्त कार्यक्षेत्र के साथ एनसीबीसी समग्र विकास और उन्नति सुनिश्चित करने के लिए आरक्षण से परे देख सकता है।

चिंताएं जो बनी हुई हैं

- गैर-बाध्यकारी सिफारिश: इससे एनसीबीसी की रिपोर्ट और उसके बजट आवंटन के प्रति प्राथमिकता कम हो सकती है।
- परिभाषित करने का अधिकार नहीं: एनसीबीसी के पास "पिछड़ेपन" को परिभाषित करने का कोई अधिकार नहीं है। इसलिए, यह पिछड़े वर्गों के रूप में शामिल किए जाने की विभिन्न जातियों की मांगों को संबोधित नहीं कर सकता।
- संरचना: निकाय में विशेषज्ञों की नियुक्ति के लिए कोई विशेष प्रावधान नहीं है तथा योग्यता का कोई उल्लेख किए बिना इसे कार्यपालिका के विवेक पर छोड़ दिया गया है।
- बी.सी. सूची का संशोधन: अनुच्छेद 338बी (5) बी.सी. सूची के आवधिक संशोधन और एन.बी.सी. द्वारा निभाई गई भूमिका पर मौन है।
- बहुआयामी चुनौतियाँ: केवल संवैधानिक दर्जा देने से विभिन्न मुद्दों का समाधान नहीं हो सकता, जैसे कि विषम प्रतिनिधित्व और कुछ पिछड़ी जातियों द्वारा लाभों पर कब्ज़ा करना आदि।
- अनुच्छेद 340 से कोई संबंध नहीं: अनुच्छेद 340 पिछड़ी जातियों के कल्याण और संरक्षण को सुनिश्चित करता है, लेकिन इसे अनुच्छेद 338बी से नहीं जोड़ा गया है।

कदम उठाए जाने की जरूरत है

- संरचना: लिंग संवेदनशीलता सुनिश्चित करने के लिए इसमें अनिवार्य रूप से विशेषज्ञ और महिलाएं शामिल हैं।
- पिछड़े वर्ग के सदस्यों के प्रति उचित और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार तथा समय पर शिकायत निवारण सुनिश्चित करने के लिए वकीलों,

न्यायाधीशों और पुलिसकर्मियों की क्षमता निर्माण और संवेदनशीलता बढ़ाना।

- मौजूदा सरकारी नीतियों का प्रभावी कार्यान्वयन और समय पर सुधार के लिए उनके प्रभाव का मूल्यांकन।
- शिकायत दर्ज करने में आसानी: एनसीएससी की तरह ऑनलाइन पोर्टल के माध्यम से शिकायत दर्ज करने जैसे कदम उठाएं।
- क्षेत्रीय स्तर पर बैठकें आयोजित करना: एनसीबीसी, एनसीएससी की तरह ही आयोग तक पहुंच बढ़ाने के लिए क्षेत्रीय स्तर पर बैठकें आयोजित करेगा।
- समय पर चर्चा: वार्षिक रिपोर्ट के महत्व को आमतौर पर नजरअंदाज कर दिया जाता है। राष्ट्रपति को संसद में रिपोर्ट पर चर्चा के लिए समय तय करने का अधिकार होना चाहिए।

<u>समुदायों के समक्ष आने वाली समस्याएं</u>

- अत्याचारों में वृद्धि: एनसीएससी को प्राप्त 16000 शिकायतों में से 60% सार्वजनिक स्थानों पर अत्याचारों से संबंधित थीं। (एनसीआरबी डेटा)। उदाहरण के लिए हरियाणा में जाति-संबंधी सम्मान हत्याएं।
- जनजातीय बेदखली: विकास परियोजनाओं के कारण अनुसूचित जनजातियों की बेदखली को रोकने में एनसीएसटी अप्रभावी रही है।
- उदाहरणार्थ 5 लाख से अधिक आदिवासियों के दावे को खारिज कर दिया गया।
- आर्थिक वंचना: वन अधिकार अधिनियम, 2006 की भावना को कायम रखने में विफलता तथा "संरक्षित वनों" के नाम पर लघु वन उपज तक पहुंच से वंचित करना स्पष्ट है।
- लुप्त होती सांस्कृतिक पहचान: लगभग 250 जनजातीय भाषाएं लुप्त हो गई हैं (भारतीय जन भाषा सर्वेक्षण की रिपोर्ट)।
- एनसीएससी, एनसीएसटी और एनसीबीसी समाज के कमजोर वर्ग के अधिकारों और उनके उत्थान के लिए महत्वपूर्ण हैं। उनके पास बड़ी जिम्मेदारी है और इसे निभाने के लिए उन्हें और मजबूत करने की जरूरत है।

COACH UPSC
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

यूपीएससी और एसपीएससी

संवैधानिक प्रावधान

अनुच्छेद 312 – अखिल भारतीय सेवाओं का सृजन

- संसद को **एक या एक से अधिक अखिल भारतीय सेवाएं (अखिल भारतीय न्यायिक सेवा** सहित) बनाने का **अधिकार है** जो **संघ और राज्यों दोनों के लिए समान हैं** ।
- ऐसा तब किया जा सकता है जब **राज्य सभा दो-तिहाई बहुमत से एक प्रस्ताव पारित कर** यह घोषित करे कि ऐसी सेवा राष्ट्रीय हित में आवश्यक है।

अनुच्छेद 315 से 323 – लोक सेवा आयोग

संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) और **राज्य लोक सेवा आयोगों (एसपीएससी)** की संरचना, अधिकार और संचालन से संबंधित हैं ।

प्रमुख प्रावधानों में शामिल हैं :

- संघ के लिए यूपीएससी और अलग-अलग राज्यों के लिए एसपीएससी की **स्थापना ।**
- **संरचना : अध्यक्ष** सहित सदस्यों की संख्या राष्ट्रपति (यूपीएससी के लिए) या राज्यपाल (एसपीएससी के लिए) द्वारा निर्धारित की जाती है।
- **नियुक्ति** : यूपीएससी के मामले में सदस्यों की नियुक्ति **राष्ट्रपति द्वारा की जाती है तथा** राज्य लोक सेवा आयोग के मामले में सदस्यों की नियुक्ति **राज्यपाल द्वारा की जाती है।**
- **निष्कासन** : स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए सदस्यों को हटाने की शर्तें और प्रक्रियाएं परिभाषित की जाती हैं।
- **कार्य** :
  - सिविल सेवाओं में नियुक्तियों के लिए **भर्ती परीक्षा** आयोजित करना ।
  - निम्नलिखित से संबंधित मामलों पर सरकार को सलाह देना:
    - कार्मिक नीतियां
    - पदोन्नति और स्थानांतरण
    - अनुशासनात्मक कार्रवाई

यूपीएससी विज़-ए-विज़ एसपीएससी

यूपीएससी

- संरचना: इसमें एक अध्यक्ष और भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त अन्य सदस्य शामिल होते हैं।
- संख्या: राष्ट्रपति का विवेक। आमतौर पर 9 से 11।
- सदस्यता के लिए कोई योग्यता निर्धारित नहीं है, सिवाय इसके कि 50% सदस्य भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन कम से कम दस वर्षों तक पद पर रहे हों।
- अवधि: छह वर्ष/ 65 वर्ष की आयु; जो भी पहले हो।
- पदच्युति: राष्ट्रपति द्वारा किसी व्यक्ति को दिवालिया घोषित करने, उसके कर्तव्यों से इतर वेतनभोगी रोजगार, मानसिक या शारीरिक दुर्बलता के कारण अयोग्य ठहराने के आधार पर। दुर्व्यवहार के लिए - सर्वोच्च न्यायालय की जांच के आधार पर राष्ट्रपति द्वारा।

एसपीएससी

- संरचना: इसमें एक अध्यक्ष और राज्य के राज्यपाल द्वारा नियुक्त अन्य सदस्य होते हैं।

- शक्ति: संबंधित राज्य के राज्यपाल का विवेक।
- सदस्यता के लिए कोई योग्यता निर्धारित नहीं है, सिवाय इसके कि 50% सदस्यों ने भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन कम से कम दस वर्षों तक पद संभाला हो।
- अवधि: छह वर्ष/62 वर्ष की आयु; जो भी पहले हो।
- निष्कासन: राष्ट्रपति सदस्यों और अध्यक्ष को उन्हीं आधारों और उसी तरीके से हटा सकते हैं जिस तरह से वह यूपीएससी के अध्यक्ष या सदस्य को हटा सकते हैं।

आयोग की स्वतंत्रता

- सेवा की शर्तें: राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित (एस.पी.एस.सी. के लिए राज्यपाल द्वारा) तथा नियुक्ति के बाद सदस्यों के लिए अहितकर नहीं बदली जा सकतीं।
- व्यय: वेतन, भत्ते और पेंशन भारत की संचित निधि द्वारा वसूले जाते हैं और संसद के मतदान के अधीन नहीं होते हैं।
- कार्यकाल की सुरक्षा: अध्यक्ष और सदस्यों को केवल संविधान में निर्दिष्ट आधारों पर राष्ट्रपति के आदेश द्वारा हटाया जा सकता है।
- सेवानिवृत्ति के बाद: यूपीएससी के अध्यक्ष किसी भी क्षमता में संघ या राज्य सरकार के साथ आगे रोजगार के लिए पात्र नहीं हैं।
- एस.पी.एस.सी. के अध्यक्ष को यू.पी.एस.सी. का अध्यक्ष/सदस्य या यू.पी.एस.सी. का सदस्य नियुक्त किया जा सकता है। लेकिन वह किसी अन्य रोजगार के लिए पात्र नहीं है।
- यूपीएससी का सदस्य (अध्यक्ष के अलावा) किसी भी एसपीएससी या यूपीएससी का अध्यक्ष नियुक्त होने के लिए पात्र है।
- एस.पी.एस.सी. का सदस्य एस.पी.एस.सी. या यू.एस.पी.एस.सी. का अध्यक्ष या यू.एस.पी.एस.सी. का सदस्य नियुक्त होने के लिए पात्र है।

कार्य और सीमाएँ

यूपीएससी के कार्य:- योग्यता प्रणाली का प्रहरी: यह अखिल भारतीय सेवाओं और केंद्रीय सेवाओं में नियुक्तियों के लिए परीक्षा आयोजित करता है।

- किसी भी सेवा के लिए संयुक्त भर्ती की योजना तैयार करने और संचालन में राज्यों की सहायता करना, जिसके लिए विशेष योग्यता रखने वाले उम्मीदवारों की आवश्यकता होती है।
- राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति: राज्यपाल के अनुरोध पर तथा राष्ट्रपति के अनुमोदन से।
- कार्मिक प्रबंधन के निम्नलिखित मामलों के लिए परामर्श किया गया:
- सिविल सेवा और सिविल पदों पर भर्ती, पदोन्नति और स्थानांतरण के तरीके।
- भारत सरकार के अधीन सिविल क्षमता में सेवारत किसी व्यक्ति को प्रभावित करने वाले सभी अनुशासनात्मक मामले।
- किसी सिविल सेवक द्वारा अपने कर्तव्यों के निष्पादन में किए गए कार्यों के संबंध में उसके विरुद्ध संस्थित कानूनी कार्यवाहियों का बचाव करने में किए गए कानूनी व्ययों की प्रतिपूर्ति का दावा।
- एक वर्ष से अधिक की अस्थायी नियुक्तियां और नियुक्तियों का नियमितीकरण।
- कुछ सेवानिवृत्त सिविल सेवकों को सेवा विस्तार और पुनर्नियुक्ति प्रदान करना।
- राज्य की न्यायिक सेवा (जिला न्यायाधीशों के पदों को छोड़कर) में नियुक्ति के लिए नियम बनाते समय

राज्यपाल द्वारा एस.पी.एस.सी. से परामर्श किया जाता है।

सीमाएं:- सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय: चूंकि उनमें कानून का बल होता है; वे यूपीएससी या एसपीएससी को सीमित कर सकते हैं।

- गैर-बाध्यकारी प्रावधान: सरकार यूपीएससी के परामर्श के बिना कार्य कर सकती है और पीड़ित लोक सेवक के पास अदालत में कोई उपाय नहीं है।
- यूपीएससी द्वारा चयन से उम्मीदवार को पद पर कोई अधिकार नहीं मिलता। अनुशंसित नाम केवल एक सिफारिश है।
- निम्नलिखित मामलों पर यूपीएससी से परामर्श नहीं किया जाता है:
  - नियुक्तियों में किसी भी पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण करना।
  - सेवाओं और पदों पर नियुक्तियों में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के दावों पर विचार करें।
  - आयोगों या न्यायाधिकरणों की अध्यक्षता या सदस्यता, उच्चतम राजनयिक प्रकृति के पदों तथा ग्रुप सी और ग्रुप डी सेवाओं के थोक के लिए चयन हेतु।
  - अस्थायी नियुक्ति के लिए, यदि किसी व्यक्ति के एक वर्ष से अधिक समय तक पद पर बने रहने की संभावना नहीं है।
- सेवाओं का वर्गीकरण, वेतन एवं सेवा शर्तें, संवर्ग प्रबंधन, प्रशिक्षण आदि।

अब तक SPSC और UPSC ने उल्लेखनीय ईमानदारी के साथ अपने कर्तव्यों का पालन किया है और हर साल लाखों उम्मीदवारों का विश्वास उन्हें प्राप्त होता है। लेकिन बदलते समय के अनुसार, UPSC और SPSC को साइकोमेट्रिक टेस्ट जैसे नए तरीकों को शामिल करने की आवश्यकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उच्चतम ईमानदारी वाले लोगों की नियुक्ति की जाए।

टिप्पणियाँ : अखिल भारतीय सेवाएँ, मानसिक या शारीरिक दुर्बलता, भारत की समेकित निधि, योग्यता प्रणाली का प्रहरी, संवर्ग प्रबंधन।

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

भारत का चुनाव आयोग

परिचय

भारतीय चुनाव आयोग (ईसीआई) संविधान के अनुच्छेद 324 के तहत स्थापित एक स्थायी और स्वतंत्र संवैधानिक निकाय है। ईसीआई को लोकसभा, राज्यसभा, राज्य विधानसभाओं, राज्य विधान परिषदों और देश के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के कार्यालयों के चुनावों के अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण की शक्ति प्रदान की गई है। इसका राज्यों में पंचायतों और नगर पालिकाओं के चुनावों से कोई लेना-देना नहीं है। इसके लिए, भारत के संविधान में एक अलग राज्य चुनाव आयोग का प्रावधान है।

भारत निर्वाचन आयोग की नियुक्ति प्रक्रिया पर प्रश्न:

- चुनाव आयोग: नियुक्ति प्रक्रिया में विकास और इसकी स्वायत्तता को मजबूत करने की आवश्यकता।
- फैसले की पृष्ठभूमि: 2015 में, अनूप बरनवाल द्वारा दायर एक जनहित याचिका में चुनाव आयोग के सदस्यों की नियुक्ति केंद्र द्वारा करने की प्रथा की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी गई थी। चुनौती का सार यह है कि चूंकि इस मुद्दे पर संसद द्वारा कोई कानून नहीं बनाया गया है, इसलिए न्यायालय को "संवैधानिक शून्यता" को भरने के लिए कदम उठाना चाहिए।
- चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति पर सर्वोच्च न्यायालय (एससी) का निर्णय:
- निर्णय: मार्च 2023 में सर्वोच्च न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की पीठ ने सर्वसम्मति से फैसला सुनाया कि ईसीआई के सदस्यों का चुनाव एक उच्च-शक्ति समिति द्वारा किया जाना चाहिए, जिसमें निम्नलिखित शामिल हों:
    - प्रधानमंत्री,
    - लोक सभा में विपक्ष के नेता, तथा
    - भारत के मुख्य न्यायाधीश.
    - मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्त (नियुक्ति, सेवा की शर्तें और पदावधि) अधिनियम, 2023: यह चुनाव आयोग (चुनाव आयुक्तों की सेवा की शर्तें और कार्य-संचालन) अधिनियम, 1991 का स्थान लेता है।

अधिनियम की नवीन विशेषताएं:

- सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा, चयन समिति की सिफारिश पर की जाएगी, जिसमें प्रधानमंत्री, कैबिनेट मंत्री और लोकसभा में विपक्ष के नेता (या सबसे बड़े विपक्षी दल के नेता) शामिल होंगे।
- कैबिनेट सचिव की अध्यक्षता वाली एक खोज समिति चयन समिति को पांच नाम सुझाएगी। चयन समिति सुझाए गए नामों के अलावा अन्य नामों पर भी विचार कर सकती है।
- पात्रता मानदंड: मुख्य चुनाव आयुक्त और चुनाव आयुक्तों को: (i) ईमानदार व्यक्ति होना चाहिए, (ii) चुनाव के प्रबंधन और संचालन में ज्ञान और अनुभव होना चाहिए, और (iii) सरकार का सचिव (या समकक्ष) होना चाहिए या रह चुका होना चाहिए।
- वेतन और पेंशन: यह कैबिनेट सचिव के बराबर होगा।

अधिनियम से संबंधित प्रमुख मुद्दे और चुनौतियाँ:

- चयन मानदंड: इसमें कार्यपालिका का प्रभुत्व हो सकता है, जिसका इसकी स्वतंत्रता पर प्रभाव पड़ता है।
- संविधान में रिक्त स्थान या दोष के बावजूद चयन समिति की सिफारिशें वैध होंगी: इससे उम्मीदवारों के चयन में सरकारी सदस्यों का एकाधिकार हो सकता है, विशेष रूप से तब जब लोकसभा भंग हो।
- कमतर दर्जा: सीईसी और ईसी का वेतन कैबिनेट सचिव के बराबर करने से सरकार का प्रभाव बढ़ सकता है क्योंकि यह सरकार द्वारा तय किया जाता है। इसके अलावा, सीईसी और ईसी अर्ध-न्यायिक कार्य भी करते हैं और इन पदों को सीमित करने से वरिष्ठ नौकरशाह अन्य उपयुक्त उम्मीदवारों को बाहर कर सकते हैं।

शक्तियां और कार्य

प्रशासनिक:

- परिसीमन: संसद के परिसीमन आयोग अधिनियम के आधार पर पूरे देश में प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण करना।
- मतदाता सूचियाँ: सभी पात्र मतदाताओं की मतदाता सूचियाँ तैयार करें तथा समय-समय पर उनमें संशोधन करें।
- चुनावों का संचालन: चुनावों की तारीखों और कार्यक्रमों की अधिसूचना जारी करना तथा नामांकन पत्रों की जांच करना।
- पंजीकरण: राजनीतिक दलों का पंजीकरण तथा उन्हें राष्ट्रीय या राज्य स्तरीय दल का दर्जा प्रदान करना तथा उन्हें चुनाव चिन्ह आवंटित करना।
- आचार संहिता: चुनाव के समय पार्टियों और उम्मीदवारों द्वारा इसका पालन किया जाना चाहिए।
- सलाहकार: संसद और राज्य विधानमंडल के सदस्यों की अयोग्यता से संबंधित मामलों पर क्रमशः राष्ट्रपति और राज्यपाल को सलाह देना।
- अर्ध-न्यायिक: राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान करने और उन्हें चुनाव चिन्ह आवंटित करने से संबंधित विवादों को निपटाने के लिए न्यायालय के रूप में कार्य करना।

स्वतंत्रता

- कार्यकाल की सुरक्षा: मुख्य चुनाव आयुक्त को उसके पद से उसी तरीके और उन्हीं आधारों पर हटाया जा सकता है, जिस तरीके से सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है।
- अन्य चुनाव आयुक्तों को मुख्य चुनाव आयुक्त की सिफारिश के बिना हटाया नहीं जा सकता।
- सेवा की शर्तें: मुख्य चुनाव आयुक्त की सेवा शर्तों में उनकी नियुक्ति के बाद उनके लिए अहितकर परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

चुनाव आयुक्तों की चिंताएं

- निश्चित कार्यकाल का अभाव: निर्दिष्ट कार्यकाल के अभाव से राजनीतिक हस्तक्षेप और अस्थिरता की चिंता उत्पन्न हो सकती है।
- सेवानिवृत्ति के बाद नियुक्तियों की संभावना: सेवानिवृत्त चुनाव आयुक्तों को अन्य सरकारी पदों पर नियुक्त किए जाने से हितों के टकराव और निष्पक्षता के बारे में चिंताएं पैदा होती हैं।
- जवाबदेही और पारदर्शिता: चुनाव आयुक्तों की निर्णय लेने की प्रक्रिया की पारदर्शिता और जवाबदेही के संबंध में चिंताएं मौजूद हैं।
- हितों का टकराव: चुनाव आयुक्तों के बीच हितों का टकराव या संभावित टकराव उनकी निष्पक्षता में जनता के विश्वास को कमजोर कर सकता है।
- निर्धारित योग्यताओं का अभाव: विशिष्ट योग्यताओं का अभाव, भूमिका के लिए आवश्यक विशेषज्ञता और अनुभव पर प्रश्न उठाता है।
- अपर्याप्त प्रवर्तन शक्तियां: चर्चाओं में निर्देशों को प्रभावी ढंग से लागू करने और चुनावी कदाचारों से निपटने के लिए प्रवर्तन शक्तियों को बढ़ाने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया।

नियुक्ति में समस्याओं के समाधान हेतु कदम:

- दूसरा एआरसी: मुख्य चुनाव आयुक्त और चुनाव आयुक्तों की पारदर्शी नियुक्ति के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक कॉलेजियम की स्थापना की जाएगी, जिसमें लोकसभा अध्यक्ष, विपक्ष के नेता, कानून मंत्री और राज्यसभा के उपसभापति शामिल होंगे।
- सर्वोच्च न्यायालय: चुनाव आयुक्तों के लिए निष्पक्ष और पारदर्शी चयन प्रक्रिया सुनिश्चित करने के लिए कानूनी शून्यता को भरें।
- संवैधानिक संरक्षण: चुनाव आयोग के केवल एक सदस्य के बजाय सभी तीन सदस्यों को संवैधानिक संरक्षण प्रदान करने के लिए संविधान में संशोधन किया जाए, ताकि उनकी स्वतंत्रता और सुरक्षा सुनिश्चित हो सके।
- निष्पक्ष पदोन्नति: कानून में ऐसे प्रावधान शामिल किए जाएं, जहां वरिष्ठतम चुनाव आयुक्त स्वतः ही मुख्य चुनाव आयुक्त बन जाए, जिससे नियुक्ति को कार्यकारी हस्तक्षेप से बचाया जा सके।

चुनाव आयोग के समक्ष मुद्दे

- पक्षपातपूर्ण भूमिका का आरोप: निष्पक्षता पर चिंता उत्पन्न करने वाली कार्रवाइयां, जैसे कि उच्च-प्रोफ़ाइल व्यक्तियों द्वारा आदर्श आचार संहिता (एमसीसी) के उल्लंघन के लिए क्लीन चिट देना।
- शक्तियों का अभाव: अनुच्छेद 324 के तहत पूर्ण शक्तियां प्राप्त होने के बावजूद, भारत के निर्वाचन आयोग के पास राजनीतिक दलों का पंजीकरण रद्द करने और अवमानना शक्तियों का प्रयोग करने जैसे क्षेत्रों में अधिकारों का अभाव है।
- प्राधिकार के सक्रिय उपयोग का अभाव: जाति या धर्म के आधार पर वोट मांगने वाले राजनेताओं के खिलाफ कार्रवाई करने की सीमित शक्ति, प्रभावी प्रवर्तन में बाधा डालती है।
- राजनीतिकरण: चुनाव आयुक्तों के लिए सेवानिवृत्ति के बाद रोजगार संबंधी प्रतिबंधों का अभाव स्वतंत्र कार्यप्रणाली में बाधा उत्पन्न करता है।
- गैर-पारदर्शिता: मुख्य चुनाव आयुक्त और आयुक्तों की चयन प्रक्रिया में पारदर्शिता का अभाव, सत्तारूढ़ सरकार से प्रभावित।
- राजनीति का अपराधीकरण: राजनीति में धन के बढ़ते उपयोग और आपराधिक तत्वों की भागीदारी को प्रभावी ढंग से संबोधित करने में असमर्थता।

ईसीआई के समक्ष अन्य चुनौतियाँ:

- ईवीएम और वीवीपैट का उपयोग, पारदर्शिता का मुद्दा: इन प्रौद्योगिकियों का उपयोग चिंता का विषय बन गया है
- भारतीय चुनाव आयोग (ईसीआई) में विश्वास के बारे में। हालांकि, ईसीआई ने बार-बार इस पर ध्यान दिया है, लेकिन उसे नियमित जांच और परीक्षण करके त्रुटि रहित और संदेह मुक्त प्रक्रिया बनाने की जरूरत है।
- अंतर-पार्टी लोकतंत्र सुनिश्चित करने में चुनौतियाँ: जन प्रतिनिधि अधिनियम की धारा 29ए के तहत राजनीतिक दलों को यह प्रस्तुत करना आवश्यक है
- संगठनात्मक संरचना, पदाधिकारियों और उनकी नियुक्ति, पदाधिकारियों की शर्तें और शक्तियां एवं कर्तव्य, संगठनात्मक चुनाव आदि पर दस्तावेज। हालांकि, राजनीतिक दलों के आंतरिक लोकतांत्रिक कामकाज को लागू करने के लिए स्पष्ट प्रावधान की कमी और दलों को रद्द करने की शक्ति की कमी के कारण, राजनीति, धन और बाहुबल के अपराधीकरण का मुद्दा उठता है।
- ईसी और सीईसी को हटाने में समानता का अभाव: केवल सीईसी को हटाने की प्रक्रिया में समान दर्जा प्राप्त है।
- सुप्रीम कोर्ट (SC) के न्यायाधीशों के। मुख्य चुनाव आयुक्त की सिफारिश पर चुनाव आयुक्तों को हटाया जा सकता है। चुनाव आयुक्तों को भी समान कार्यकाल सुरक्षा प्रदान करने का एक अच्छा मामला है।

आगे की राह

- स्वतंत्रता और निष्पक्षता में वृद्धि: चुनाव आयुक्तों के लिए पारदर्शी और निष्पक्ष चयन प्रक्रिया सुनिश्चित करना, जिससे सरकारी प्रभाव कम हो।
- शक्तियों को मजबूत करना: चुनाव आयोग को अतिरिक्त अधिकार प्रदान करना, जिसमें पंजीकरण रद्द करने की शक्तियां और आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन के खिलाफ सक्रिय कार्रवाई शामिल है।
- सक्रिय प्रवर्तन: जाति और धर्म आधारित प्रचार के विरुद्ध सक्रिय कार्रवाई करने के लिए चुनाव आयोग को सशक्त बनाना।
- आंतरिक-पार्टी लोकतंत्र और वित्तीय विनियमन: राजनीतिक दलों के भीतर पारदर्शिता और जवाबदेही लागू करने के लिए सुधारों को बढ़ावा देना।
- सेवानिवृत्ति के बाद रोजगार पर प्रतिबंध: हितों के टकराव को रोकने के लिए सेवानिवृत्ति के बाद रोजगार पर प्रतिबंध लागू करें।
- ईवीएम सुरक्षा और विश्वास निर्माण: ईवीएम सुरक्षा उपायों में सुधार करें और विश्वास निर्माण के लिए हितधारकों को शामिल करें।

टिप्पणियाँ : विवाद समाधान, कानूनी जटिलताएँ, स्वतंत्रता और निष्पक्षता, अंतर-पार्टी लोकतंत्र, अर्ध-न्यायिक, मतदाता जागरूकता, राजनीतिक हस्तक्षेप।

राजनीतिक दल और भारत का चुनाव आयोग

- भारतीय चुनाव आयोग (ECI) लोकतंत्र के संरक्षक के रूप में कार्य करता है और देश में राजनीतिक दलों को विनियमित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह एक निगरानी संस्था के रूप में कार्य करता है, पार्टी के वित्त की निगरानी करता है, चुनावों की देखरेख करता है और सभी राजनीतिक संस्थाओं के लिए समान अवसर बनाए रखने के उपाय करता है।

राजनीतिक दलों को विनियमित करने में भारत के चुनाव आयोग की भूमिका:

- पंजीकरण और मान्यता: राजनीतिक दलों को पंजीकृत करने का ईसीआई का अधिकार चुनाव आचरण नियमों के समान अनुपालन को सुनिश्चित करता है।
- प्रतीकों का आबंटन: ईसीआई मान्यता प्राप्त दलों को विशिष्ट प्रतीकों की अनुमति देता है तथा गैर-मान्यता प्राप्त दलों के लिए मुफ्त प्रतीकों की सूची प्रदान करता है।
- आदर्श आचार संहिता: यह आचार संहिता सत्तारूढ़ पार्टी को चुनाव के दौरान अनुचित लाभ प्राप्त करने से रोकती है, तथा चुनाव तिथि की घोषणा से लागू हो जाती है।
- चुनाव व्यय की अधिकतम सीमा: चुनाव आयोग ने अनुचित प्रभाव को रोकने के लिए व्यय की सीमा तय की, अलग से चुनाव खर्च की सीमा तय की
- खातों की जानकारी न देने पर अयोग्यता हो सकती है।
- वित्तीय पारदर्शिता: पंजीकृत दलों को कर-मुक्त दान के दुरुपयोग को रोकने के लिए आरपीए, 1951 की धारा 29सी के तहत लेखापरीक्षित रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होगी।
- पर्यवेक्षकों की नियुक्ति: स्वतंत्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन प्रक्रिया सुनिश्चित करने के लिए भारत निर्वाचन आयोग सामान्य एवं व्यय पर्यवेक्षकों की नियुक्ति करता है।

प्रभावशीलता में सुधार के लिए आवश्यक कदम:

- राजनीतिक दलों का पंजीकरण रद्द करने की शक्ति: निर्वाचन आयोग को जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के तहत दलों का पंजीकरण रद्द करने का अधिकार देने से निवारक प्रभाव पैदा हो सकता है।
- राजनीतिक वित्तपोषण में पारदर्शिता: चुनावी बांड जैसे साधनों की प्रभावशीलता, जिसके परिणामस्वरूप दान में असमानता आती है, का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है।
- वरीयता का सिद्धांत: समान चुनावी अपराधों के लिए भारत निर्वाचन आयोग द्वारा सुसंगत कार्रवाई सुनिश्चित करना, चाहे इसमें कोई भी पक्ष शामिल हो।
- एआरसी की दूसरी सिफारिश: मुख्य चुनाव आयुक्त और चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति संबंधी सिफारिशों के लिए प्रमुख हितधारकों को शामिल करते हुए एक कॉलेजियम की स्थापना करना।
- ईसीआई की स्वतंत्रता: ईसीआई में कार्यकारी हस्तक्षेप को कम करने के लिए तीनों चुनाव आयुक्तों के कार्यकाल की संवैधानिक सुरक्षा सुनिश्चित करना और सेवानिवृत्ति के बाद के पदों पर नियुक्ति पर प्रतिबन्ध लगाना।
- भारत के बहुदलीय लोकतंत्र में, निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा सुनिश्चित करने, रियायतों के दुरुपयोग को रोकने और चुनावी अखंडता को बनाए रखने के लिए चुनाव आयोग द्वारा राजनीतिक दलों का प्रभावी विनियमन आवश्यक है।

एक साथ चुनाव - एक राष्ट्र, एक चुनाव

- भारत के पूर्व राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद की अध्यक्षता में सितंबर 2023 में एक उच्च स्तरीय समिति (एचएलसी) का गठन किया गया था, जिसका उद्देश्य सभी राज्यों की लोकसभा, राज्य विधानसभाओं और स्थानीय निकायों के लिए एक साथ चुनाव कराने के मुद्दे की जांच करना था। एचएलसी ने एक साथ चुनाव कराने के प्रस्ताव पर राजनीतिक दलों, विधि आयोग और अन्य समूहों से प्रतिक्रियाएँ आमंत्रित की हैं।

एक साथ चुनाव के पक्ष में

- व्यय: व्यय सीमा का अभाव चुनावों में अत्यधिक व्यय का कारण बनता है।
- नीतिगत पक्षाघात: आदर्श आचार संहिता के बार-बार लागू होने से सरकारी कार्य और नागरिक जीवन बाधित होता है।
- संसाधन की बचत: दोनों चुनावों के लिए एक ही मतदाता और बूथ का उपयोग करने के संभावित लाभ।
- सामाजिक सद्भाव: चुनाव के दौरान सांप्रदायिकता और जातिवाद में वृद्धि।
- सतत विकास: चुनावों की आवृत्ति के कारण अल्पकालिक सुधारों पर ध्यान केन्द्रित करना।
- वैश्विक अनुभव: दक्षिण अफ्रीका और स्वीडन जैसे देशों में एक साथ चुनावों का कार्यान्वयन।
- अदृश्य सामाजिक-आर्थिक लागत: चुनाव कर्तव्यों के दौरान शिक्षा, कल्याणकारी योजनाओं और संसाधन आवंटन पर अनिर्धारित प्रभाव।
- सुरक्षा बलों की नियुक्ति: सशस्त्र पुलिस बलों को अन्य आंतरिक सुरक्षा जिम्मेदारियों से हटाना।

एक साथ चुनाव के खिलाफ

- व्यावहारिक कठिनाइयाँ: विधानसभा की शर्तों में समायोजन के कारण राजनीतिक दलों का प्रतिरोध।
- संवैधानिक बाधाएँ: लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के लिए निश्चित कार्यकाल का अभाव।
- संघवाद-विरोध: राष्ट्रीय मुद्दों का राज्य चुनावों पर प्रभाव और इसके विपरीत।
- जवाबदेही कम होती है: बार-बार चुनाव होने से राजनेता मतदाताओं से जुड़े रहते हैं।
- जमीनी स्तर की अर्थव्यवस्था: चुनाव के दौरान रोजगार सृजन और आर्थिक वृद्धि।
- एमसीसी से संबंधित झूठे तर्क: नई योजनाओं पर प्रतिबंधों के बारे में गलत धारणाएं।
- बहुदलीय लोकतंत्र के विरुद्ध: राज्य और राष्ट्रीय चुनावों के बीच धुंधला अंतर।
- वेस्टमिंस्टर लोकतंत्र और संघवाद के साथ असंगत: सरकारों के विघटन और राजनीतिक बदलावों पर प्रभाव।
- क्षेत्रीय दलों को नुकसान: राष्ट्रीय दलों का प्रभुत्व और क्षेत्रीय दलों को नुकसान।
- वैकल्पिक सुधार: व्यय सीमा, राज्य वित्त पोषण, मतदान की छोटी अवधि, तथा सुरक्षा उपाय बढ़ाना।

समिति की रिपोर्ट की सिफारिशें:

- रामनाथ कोविंद समिति ने सुझाव दिया है कि राष्ट्रपति आम चुनावों के बाद लोकसभा की पहली बैठक पर अधिसूचना जारी करके एक 'नियत तिथि' निर्धारित करें। यह तिथि नए चुनावी चक्र की शुरुआत का प्रतीक होगी।
- नियत तिथि के बाद और लोकसभा का कार्यकाल पूरा होने से पहले गठित होने वाली राज्य विधानसभाएं आगामी आम चुनावों से पहले संपन्न हो जाएंगी। इसके बाद लोकसभा और सभी राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराए जाएंगे।
- पैनल ने सिफारिश की कि सदन में बहुमत न होने या अविश्वास प्रस्ताव आने या ऐसी किसी अन्य घटना की स्थिति में नई लोकसभा के गठन के लिए नए चुनाव कराए जा सकते हैं, लेकिन सदन का कार्यकाल "केवल सदन के तत्काल पूर्ववर्ती पूर्ण कार्यकाल की शेष अवधि के लिए होगा"।
- जब विधान सभाओं के लिए नए चुनाव आयोजित किए जाते हैं, तो ऐसी नई विधानसभाएं लोक सभा के पूर्ण कार्यकाल के अंत तक जारी रहेंगी, जब तक कि उन्हें पहले ही भंग न कर दिया जाए।
- इन बदलावों को लागू करने के लिए, पैनल ने संविधान के अनुच्छेद 83 (संसद के सदनों की अवधि) और अनुच्छेद 172 (राज्य विधानसभाओं की अवधि) में संशोधन की सिफारिश की है। समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा, "इस संवैधानिक संशोधन को राज्यों द्वारा अनुसमर्थन की आवश्यकता नहीं होगी।"
- पैनल ने संविधान के अनुच्छेद 324A में उपयुक्त संशोधन की सिफारिश की है ताकि पंचायतों और नगर पालिकाओं में एक साथ चुनाव कराए जा सकें; अनुच्छेद 325 में भारतीय चुनाव आयोग (ECI) को राज्य चुनाव

अधिकारियों के परामर्श से एक समान मतदाता सूची और मतदाता पहचान पत्र तैयार करने की अनुमति दी गई है। रिपोर्ट में कहा गया है कि इन दोनों संवैधानिक संशोधनों को राज्यों द्वारा अनुसमर्थन की आवश्यकता होगी। वर्तमान में, ECI लोकसभा और विधानसभा चुनावों के लिए जिम्मेदार है, जबकि नगर पालिकाओं और पंचायतों के लिए स्थानीय निकाय चुनाव राज्य चुनाव आयोगों द्वारा प्रबंधित किए जाते हैं।

आगे की राह

- बाधाओं को दूर करने के लिए विधि आयोग की सिफारिशें:
- संविधान और जन प्रतिनिधि अधिनियम, 1951 में संशोधन करें: मध्यावधि चुनावों के बाद शेष कार्यकाल के लिए नई लोकसभा और विधानसभा का गठन करें तथा अविश्वास प्रस्ताव के स्थान पर रचनात्मक अविश्वास प्रस्ताव पारित करें।
- प्रधानमंत्री/मुख्यमंत्री का पूर्ण सदन चुनाव: लोकसभा अध्यक्ष के समान उनका चुनाव करके स्थिरता प्रदान करें।
- दलबदल विरोधी कानून को कमजोर किया जाएगा: संसद में अस्थिरता के दौरान विधानसभा में गतिरोध को रोकने के लिए अपवाद बनाए जाएंगे।
- दो-चरणीय चुनाव: लोकसभा चुनाव और मध्यावधि अंतराल के साथ तालमेल बिठाते हुए दो चरणों में समकालिक चुनाव आयोजित करना।
- अनुसूचित उप-चुनाव: पूर्व निर्धारित समयावधि के दौरान सभी रिक्त सीटों पर चुनाव कराना।
- चुनाव आयोग की सिफारिशें:

लोकसभा के लिए:

- अविश्वास प्रस्ताव में भावी प्रधानमंत्री के रूप में नामित व्यक्ति के लिए विश्वास प्रस्ताव शामिल होना चाहिए।
- अपरिहार्य विघटन की स्थिति में, राष्ट्रपति अगले सदन के गठन होने तक नियुक्त मंत्रिपरिषद के साथ देश का प्रशासन चला सकते हैं, या शेष कार्यकाल के लिए नए चुनाव करा सकते हैं।

विधान सभा के लिए:

- वैकल्पिक सरकार बनाने के लिए अविश्वास प्रस्ताव के साथ-साथ विश्वास प्रस्ताव को अनिवार्य बनाना, जिससे समय से पूर्व विघटन को रोका जा सके।
- राज्यपाल द्वारा नियुक्त मंत्रिपरिषद के साथ राज्य का प्रशासन चलाने का प्रावधान, या यदि विधानसभा को समय से पहले भंग करना पड़े तो कार्यकाल समाप्त होने तक राष्ट्रपति शासन लागू करना।
- एक साथ चुनाव कराने पर बहस, जिसे 'एक राष्ट्र एक चुनाव' के नाम से जाना जाता है, सावधानीपूर्वक विचार और आम सहमति की मांग करती है। क्षेत्रीय गतिशीलता और लोकतांत्रिक सिद्धांतों के साथ शासन दक्षता जैसे लाभों को संतुलित करना महत्वपूर्ण है। विचारशील सुधारों के साथ, एक साथ चुनाव कराने से चुनावी प्रक्रिया और नागरिक सहभागिता बढ़ सकती है।
- **टिप्पणियाँ** : एक राष्ट्र एक चुनाव, अविश्वास प्रस्ताव, दलबदल विरोधी कानून, अनुसूचित उपचुनाव, अपरिहार्य विघटन, संसाधन बचत, नीतिगत पक्षाघात, सतत विकास।

ईवीएम और संबंधित मुद्दे

- कानूनी प्रावधान: जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 61ए के तहत आयोग को वोटिंग मशीन के इस्तेमाल का अधिकार दिया गया। (यह संशोधन 1988 में किया गया था)।

ईवीएम के लाभ

- सटीकता: ईवीएम सटीक और त्रुटिरहित मतगणना सुनिश्चित करती है, जिससे मैनुअल गणना में त्रुटियों और विसंगतियों की संभावना कम हो जाती है।
- दक्षता: ईवीएम वोट डालने और गिनती के लिए आवश्यक समय को कम करके मतदान प्रक्रिया को तेज करती है, जिससे परिणामों की शीघ्र घोषणा संभव हो पाती है।
- पारदर्शिता: ईवीएम चुनाव प्रक्रिया में पारदर्शिता प्रदान करते हैं क्योंकि वे कुल डाले गए वोटों और व्यक्तिगत पार्टी-वार वोटों की गिनती प्रदर्शित करते हैं, जिससे चुनाव प्रणाली की अखंडता सुनिश्चित होती है।

- चुनाव की अखंडता: ईवीएम मतदाता की पसंद की गोपनीयता बनाए रखती है, क्योंकि मतदान एक निजी कक्ष में किया जाता है, जिससे किसी भी प्रकार का प्रभाव या दबाव नहीं पड़ता।
- लागत प्रभावी: ई.वी.एम. बड़ी मात्रा में कागजी मतपत्रों की आवश्यकता को समाप्त कर देता है, जिससे मुद्रण और परिवहन से जुड़ी लागत और पर्यावरणीय प्रभाव कम हो जाता है।
- बूथ कैप्चरिंग पर रोक: ईवीएम अपने छेड़छाड़-रोधी डिजाइन और तकनीकी सुरक्षा उपायों के कारण बूथ कैप्चरिंग और फर्जी मतदान को अधिक कठिन बना देते हैं।
- मानवीय भूल में कमी: ई.वी.एम. के कारण मानवीय भूलों, जैसे कि अमान्य या गलत तरीके से चिह्नित मतपत्र, की संभावना काफी कम हो जाती है, जिससे अधिक सटीक निर्वाचन प्रक्रिया सुनिश्चित होती है।

ईवीएम से संबंधित चिंताएं

- वैश्विक मिसाल: जर्मनी, नीदरलैंड और आयरलैंड ने चिंताओं और कानूनी फैसलों के बाद ईवीएम को छोड़ दिया है और पेपर बैलेट सिस्टम को अपना लिया है। एडीआर ने सुझाव दिया (और बाद में सुझाव वापस ले लिया) कि भारत को जर्मनी जैसे देशों का उदाहरण देते हुए पेपर बैलेट सिस्टम को अपनाना चाहिए।
- गोपनीयता का अभाव: ईवीएम से मतदाता को खतरा हो सकता है
- गोपनीयता बनाए रखना आवश्यक है, क्योंकि उम्मीदवार यह निर्धारित कर सकते हैं कि प्रत्येक बूथ पर किस प्रकार मतदान हुआ है, जिससे इस जानकारी का दुरुपयोग होने की संभावना बढ़ जाती है।
- भंडारण और गिनती की चिंताएँ: ईवीएम को कहाँ संग्रहीत किया जाता है?
- विकेन्द्रीकृत स्थानों पर, तथा विशेषज्ञ उनकी अखंडता सुनिश्चित करने के लिए उनके पूरे जीवन चक्र में सुरक्षित भंडारण की आवश्यकता पर बल देते हैं।
- सत्यापन की कमी: आलोचकों का तर्क है कि ईवीएम में सत्यापन की कमी है।
- पेपर ट्रेल के कारण मतदान प्रक्रिया की सटीकता की पुष्टि करना मुश्किल हो जाता है। भौतिक रिकॉर्ड के बिना, विश्वसनीय पुनर्गणना या ऑडिट करना चुनौतीपूर्ण हो जाता है।
- तकनीकी विफलताएँ: ईवीएम इलेक्ट्रॉनिक उपकरण हैं
- तकनीकी खराबी, जैसे कि सॉफ्टवेयर में गड़बड़ी या हार्डवेयर में त्रुटियाँ, की संभावना अधिक होती है। ये विफलताएँ संभावित रूप से मतदान प्रक्रिया को बाधित कर सकती हैं और परिणामों की अखंडता पर संदेह पैदा कर सकती हैं।
- परिवहन के दौरान छेड़छाड़: ई.वी.एम.एस. को भंडारण स्थानों से मतदान केंद्रों तक ले जाया जाता है, जिससे छेड़छाड़ या अनधिकृत पहुँच के अवसर पैदा होते हैं। परिवहन के दौरान ई.वी.एम. की सुरक्षा चिंता का विषय रही है, खासकर उन क्षेत्रों में जहाँ राजनीतिक तनाव या अपर्याप्त रसद व्यवस्था है।

चिंताओं का समाधान करने के लिए ईसीआईएस की पहल:

- ईवीएम के साथ वीवीपीएटी: सभी मतदान केंद्रों में वीवीपीएटी मशीनों को लागू करने से चुनावी प्रक्रिया की पारदर्शिता और विश्वसनीयता बढ़ती है।
- वी.वी.पी.ए.टी. पर्चियों की गणना: भारत का निर्वाचन आयोग राजनीतिक दलों से प्राप्त सुझावों पर विचार करता है तथा निर्दिष्ट प्रतिशत तक वी.वी.पी.ए.टी. पर्चियों की गणना करता है, जिससे आगे का सत्यापन सुनिश्चित होता है।
- ईवीएम चुनौती: ईसीआई ने एक चुनौती आयोजित की, जिसमें राजनीतिक दलों को ईवीएम के साथ किसी भी प्रकार की छेड़छाड़ को प्रदर्शित करने का अवसर दिया गया, जिससे चिंताओं को दूर करने के प्रति उनकी प्रतिबद्धता प्रदर्शित हुई।
- समावेशी भागीदारी: चुनाव आयोग प्रथम स्तरीय जांच, ईवीएम/वीवीपीएटी का यादृच्छिकीकरण, मॉक पोल, तथा

ईवीएम सीलिंग एवं भंडारण जैसे महत्वपूर्ण चरणों में सभी राजनीतिक दलों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करता है, जिससे संपूर्ण चुनाव प्रक्रिया में पारदर्शिता को बढ़ावा मिलता है।

- प्रवासियों के लिए ईवीएम प्रोटोटाइप: ईसीआई ने घरेलू प्रवासियों के लिए एक रिमोट इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (आरवीएम) विकसित की है, जिससे उन्हें अपने गृह जिलों की यात्रा किए बिना मतदान करने में सक्षम बनाया जा सके, जिससे मतदाता भागीदारी को बढ़ावा मिलेगा।
- मतदाता शिक्षा: निर्वाचन आयोग मतदाताओं को ईवीएम के उपयोग और मतदान के महत्व के बारे में शिक्षित करने के लिए व्यवस्थित मतदाता शिक्षा और निर्वाचन भागीदारी (एसवीईईपी) के माध्यम से मतदाता शिक्षा कार्यक्रम आयोजित करता है, जिसका उद्देश्य मजबूत लोकतंत्र के लिए मतदाता भागीदारी को बढ़ाना है।

सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णय:

- सुब्रमण्यम स्वामी बनाम भारत के चुनाव आयोग के मामले में अपने 2013 के फैसले में, न्यायालय ने माना कि "स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों के लिए पेपर ट्रेल एक अनिवार्य आवश्यकता है।" बाद में, 2019 में, प्रत्येक विधानसभा क्षेत्र में ईवीएम वोटों का वीवीपीएटी पर्चियों के साथ 50% क्रॉस-सत्यापन करने की मांग करने वाली याचिका पर विचार करते हुए, न्यायालय ने उन मतदान केंद्रों की संख्या में वृद्धि का समर्थन किया, जिनमें वीवीपीएटी सत्यापन प्रत्येक विधानसभा क्षेत्र या खंड में एक से बढ़ाकर पाँच किया जाएगा।

वीवीपैट पर सुप्रीम कोर्ट का हालिया फैसला:

- पेपर बैलेट को फिर से शुरू करने से इनकार करते हुए, 26 अप्रैल, 2024 को सुप्रीम कोर्ट ने इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) मतदान प्रणाली को बरकरार रखा और चुनावी प्रक्रिया की अखंडता पर सवाल उठाते समय "सावधानी और सतर्कता बरतने" की आवश्यकता पर जोर दिया। इसने याचिकाकर्ताओं की उस मांग को भी अस्वीकार कर दिया जिसमें ईवीएम पर डाले गए वोटों का वोटर वेरिफ़िएबल पेपर ऑडिट ट्रेल (वीवीपीएटी) पेपर स्लिप के साथ 100% क्रॉस-सत्यापन करने का निर्देश देने की मांग की गई थी। वर्तमान में किसी भी विधानसभा क्षेत्र में केवल 5% ईवीएम-वीवीपीएटी गणना को यादृच्छिक रूप से सत्यापित किया जाता है।

आगे की राह

- प्रक्रियागत परिवर्तन: ऐसी प्रणाली लागू करें जिसमें मतदाता एक मुद्रित पत्र प्राप्त करें और उसे मतपेटी में डालें।
- मैनुअल गणना: यदि जीत का अंतर 10% से कम है तो अदालती मामलों का सहारा लेने के बजाय मैनुअल सत्यापन अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए।
- सर्वोच्च न्यायालय: प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में यादृच्छिक ईवीएम की वीवीपैट सत्यापन दर को एक से बढ़ाकर पांच किया जाए।
- टोटलाइजर मशीनें: बूथ-वार परिणामों के बजाय कई मतदान केंद्रों के मतों की एक साथ गणना करके मतदान की गोपनीयता में सुधार करती हैं।
- सुरक्षा प्रदर्शन: 2017 की तरह एक हैकथॉन का आयोजन करें, जिसमें व्यक्तियों को ईवीएम की हैकिंग का प्रदर्शन करने के लिए चुनौती दी जाए।
- मानव संसाधन: मतदान केंद्रों पर ईवीएम से संबंधित किसी भी समस्या से निपटने के लिए सभी ईसीआई कर्मचारियों को व्यापक प्रशिक्षण प्रदान करना।

निष्कर्ष:

- लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में, स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों के माध्यम से मतदाताओं की प्राथमिकताओं को राजनीतिक जनादेश में बदलना प्रभावी नीति-निर्माण के लिए महत्वपूर्ण है। मतदान प्रक्रियाओं की सटीकता और दक्षता को बढ़ाने से लोकतांत्रिक संस्थाएँ मज़बूत होती हैं। चुनाव आयोग को विभिन्न हितधारकों द्वारा उठाई गई चिंताओं को सक्रिय रूप से स्वीकार करना चाहिए और उनका समाधान करना चाहिए, पारदर्शिता को बढ़ावा देना चाहिए और निष्पक्ष और पारदर्शी चुनाव कराने में इलेक्ट्रॉनिक

वोटिंग मशीनों (ईवीएम) की विश्वसनीयता सुनिश्चित करनी चाहिए।

नोट्स : मानव संसाधन, प्रक्रियागत परिवर्तन, समावेशी भागीदारी, तकनीकी विफलताएं, लागत प्रभावी, बूथ कैप्चरिंग पर रोक।

नोटा

पृष्ठभूमि:

- भारत में 2013 में उपरोक्त में से कोई नहीं (नोटा) विकल्प की शुरुआत पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पीयूसीएल) बनाम भारत संघ मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के परिणामस्वरूप हुई। सुप्रीम कोर्ट ने लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के प्रत्यक्ष चुनावों में नोटा के इस्तेमाल को अनिवार्य बना दिया।
- इसके कार्यान्वयन के बाद से, नोटा ने भारतीय मतदाताओं के बीच काफी लोकप्रियता हासिल की है और कुछ चुनावों में तो इसे जीत के अंतर से भी अधिक वोट मिले हैं।

महत्व

- असंतोष की अभिव्यक्ति: नोटा मतदाताओं को अपने असंतोष को व्यक्त करने की अनुमति देता है, यदि वे किसी उम्मीदवार को पद के लिए अनुपयुक्त पाते हैं तो वे सभी उम्मीदवारों को अस्वीकार कर देते हैं।
- बेहतर उम्मीदवारों को प्रोत्साहित करना: नोटा राजनीतिक दलों के लिए बेहतर उम्मीदवारों को मैदान में उतारने के लिए उत्प्रेरक का काम करता है, जो अधिक सक्षम और स्वच्छ छवि वाले होते हैं, क्योंकि पार्टियों का उद्देश्य असंतुष्ट मतदाताओं के वोट खोने से बचना होता है।
- मतदाता भागीदारी में वृद्धि: NOTA उन मतदाताओं को एक विकल्प प्रदान करके मतदाता भागीदारी को बढ़ावा दे सकता है, जो पहले मतदान में रुचि नहीं रखते थे या अयोग्य उम्मीदवारों को वोट देने के लिए बाध्य महसूस करते थे।

मौलिक अधिकार: नोटा लोगों को उम्मीदवारों के प्रति सहमति या असंतोष व्यक्त करके अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग करने की अनुमति देता है।

नैतिक दबाव: NOTA मतदाताओं को अनुपयुक्त उम्मीदवारों के प्रति अपना असंतोष व्यक्त करने का अवसर देता है।

विपक्ष में तर्क

- चुनावी प्रभाव के बिना प्रतीकात्मक इशारा: नोटा को चुनावी मूल्य के बिना एक प्रतीकात्मक इशारा माना जाता है, क्योंकि सबसे अधिक वोट पाने वाले उम्मीदवार को नोटा वोटों की परवाह किए बिना विजेता घोषित किया जाता है।
- मतदाता असंतोष का सीमित समाधान: नोटा मतदाता असंतोष के मूल कारण को संबोधित करने में विफल रहता है, जो अच्छे उम्मीदवारों की कमी में निहित है, समस्या का समाधान किए बिना केवल अस्वीकृति का विकल्प प्रदान करता है।
- मतदाता उदासीनता की संभावना: NOTA मतदाताओं की उदासीनता को बढ़ा सकता है, क्योंकि यह मतदाताओं को उपयुक्त उम्मीदवार न मिलने पर मतदान से दूर रहने का अवसर देता है, जिससे मतदाता भागीदारी कम हो सकती है और लोकतंत्र कमजोर हो सकता है।
- दुरुपयोग की संभावना: राजनीतिक दल चुनाव परिणामों को प्रभावित करने के लिए नोटा का दुरुपयोग कर सकते हैं। इसके लिए वे कमजोर उम्मीदवार उतार सकते हैं और अपने समर्थकों को नोटा के पक्ष में मतदान करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं, जिससे विपक्षी वोटों में विभाजन हो सकता है।
- संसाधनों की बर्बादी: नोटा के कारण मतपत्रों और मतगणना प्रक्रियाओं के लिए अतिरिक्त संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है, जिससे चुनावों के लिए आवश्यक लागत और समय में वृद्धि हो सकती है।

- नोटा विकल्प को 2013 में सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर मतदाताओं को अपनी पसंद व्यक्त करने में सशक्त बनाने के लिए पेश किया गया था। हालाँकि इसे अस्वीकृति के प्रतीकात्मक संकेत और नकारात्मक वोट के रूप में देखा गया है, लेकिन यह चुनाव प्रक्रिया को प्रभावित करने के लिए एक उपयोगी उपकरण के बजाय एक शक्तिहीन सुविधा रही है।

आदर्श आचार संहिता (एमसीसी)

- आदर्श आचार संहिता (MCC) भारत के चुनाव आयोग (ECI) द्वारा चुनावों के दौरान राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों के व्यवहार को विनियमित करने के लिए जारी दिशा-निर्देशों का एक समूह है। आदर्श आचार संहिता को पहली बार चुनाव आयोग ने 1960 में केरल में विधानसभा चुनाव में पेश किया था। 1962 में, चुनाव आयोग ने आम चुनावों के लिए आदर्श आचार संहिता पेश की। राजनीतिक दलों द्वारा मानदंडों का बार-बार उल्लंघन करने के बाद 1991 में चुनाव आयोग द्वारा आदर्श आचार संहिता के दिशा-निर्देशों को और सख्त बना दिया गया था।

विकास:

- 1960: केरल में राज्य विधान सभा के आम चुनाव के दौरान पहली बार आदर्श आचार संहिता लागू की गई।
- 1962: लोकसभा चुनावों और राज्य विधानसभा चुनावों के दौरान संहिता को राष्ट्रीय स्तर पर संज्ञान में लिया गया।
- 1991: भारतीय चुनाव आयोग (ईसीआई) ने राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों के लिए आदर्श आचार संहिता हेतु दिशानिर्देश जारी किये।
- 1993: भारत निर्वाचन आयोग ने आदर्श आचार संहिता के लिए संशोधित दिशानिर्देश जारी किये।
- 2013: भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने चुनाव आयोग को इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों (ईवीएम) और मतपत्रों में "इनमें से कोई नहीं" (नोटा) का विकल्प शामिल करने का निर्देश दिया।
- 2019: भारत के निर्वाचन आयोग ने लोकसभा चुनाव के दौरान राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों के लिए आदर्श आचार संहिता के संबंध में नए दिशानिर्देश जारी किए।

चुनौतियाँ:

- डिजिटल युग की चुनौतियाँ: आदर्श आचार संहिता डिजिटल प्लेटफार्मों द्वारा उत्पन्न चुनौतियों का पर्याप्त रूप से समाधान करने में विफल रहती है, जिससे फर्जी समाचार और अभद्र भाषा को फैलने का मौका मिलता है।
- सीमित प्रवर्तन शक्ति: आदर्श आचार संहिता में कानूनी प्रवर्तनीयता का अभाव है, जिसके कारण राजनीतिक दल और उम्मीदवार बिना किसी महत्वपूर्ण परिणाम का सामना किए इसका उल्लंघन कर सकते हैं।
- स्पष्टता का अभाव: आदर्श आचार संहिता में सरकारी संसाधनों के उपयोग जैसे मुद्दों पर स्पष्टता का अभाव है, जिसके कारण भ्रम और असंगत प्रवर्तन की स्थिति पैदा होती है।
- समयबद्ध प्रभावशीलता: आदर्श आचार संहिता समयबद्ध है, चुनाव समाप्त होने के बाद इसकी प्रभावशीलता समाप्त हो जाती है, तथा चुनाव पूर्व और चुनाव पश्चात इसके उल्लंघन की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती।
- सीमित दायरा: आदर्श आचार संहिता केवल चुनाव के दौरान राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों के आचरण को कवर करती है, तथा अभियान वित्त विनियमन जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों को नजरअंदाज कर देती है।
- खामियाँ: आदर्श आचार संहिता में कई खामियाँ हैं जिनका राजनीतिक दल और उम्मीदवार फायदा उठा सकते हैं। उदाहरण के लिए, आचार संहिता चुनाव प्रचार में धर्म या जाति के इस्तेमाल पर रोक नहीं लगाती है, जिससे सांप्रदायिक और विभाजनकारी राजनीति को बढ़ावा मिल सकता है।

आदर्श आचार संहिता को कानूनी रूप से लागू करना

- कार्मिक, लोक शिकायत, विधि एवं न्याय संबंधी स्थायी समिति ने एमसीसी को कानूनी रूप से बाध्यकारी बनाने

की सिफारिश की तथा सिफारिश की कि एमसीसी को आरपीए 1951 का हिस्सा बनाया जाए।

- जवाबदेही सुनिश्चित करना: आदर्श आचार संहिता की कानूनी प्रवर्तनीयता जवाबदेही स्थापित करेगी तथा राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों के बीच अनैतिक प्रथाओं को हतोत्साहित करेगी।
- लोकतंत्र को मजबूत बनाना: संहिता को कानूनी रूप से लागू करने योग्य बनाने से निष्पक्ष और पारदर्शी चुनाव सुनिश्चित करके लोकतंत्र को मजबूती मिलेगी।
- कानून के शासन को कायम रखना: संहिता को कानूनी रूप से लागू करने योग्य बनाने से कानून के शासन को कायम रखा जा सकेगा तथा राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों द्वारा सत्ता के दुरुपयोग को रोका जा सकेगा।
- व्यवहार्यता: चुनाव आयोग ने इसका विरोध इस कारण किया है कि चुनाव कम समय में पूरे होने चाहिए और न्यायिक कार्यवाही में अधिक समय लगता है, इसलिए इसे कानून द्वारा लागू करना व्यवहार्य नहीं है।
- सुसंगतता: कानूनी प्रवर्तनीयता संहिता के सुसंगत प्रवर्तन को बढ़ावा देगी, तथा इसके अनुप्रयोग में असमानताओं को दूर करेगी।
- स्पष्टता: कानूनी प्रवर्तनीयता से यह स्पष्टता आएगी कि संहिता का उल्लंघन क्या है, जिससे उसका प्रवर्तन आसान हो जाएगा।

आगे बढ़ने का रास्ता:

- दंड को मजबूत करना: भारतीय चुनाव आयोग (ईसीआई) आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन के लिए दंड को मजबूत करने पर विचार कर सकता है। उदाहरण के लिए, 2019 के लोकसभा चुनावों में, ईसीआई ने धर्म के नाम पर वोट मांगकर आचार संहिता का उल्लंघन करने के लिए एक उम्मीदवार को तीन साल के लिए अयोग्य घोषित कर दिया था।
- बेहतर निगरानी: चुनाव आयोग आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन का पता लगाने के लिए अपने निगरानी तंत्र में सुधार कर सकता है। उदाहरण के लिए, 2019 के लोकसभा चुनावों में चुनाव आयोग ने चुनाव अभियानों की निगरानी और आचार संहिता के उल्लंघन का पता लगाने के लिए मोबाइल ऐप का इस्तेमाल किया था।
- खामियों को दूर करना: चुनाव आयोग आदर्श आचार संहिता में खामियों को दूर करने के लिए इसके प्रावधानों को अपडेट कर सकता है, जिसमें चुनाव प्रचार में धर्म या जाति के इस्तेमाल पर प्रतिबंध शामिल है। उदाहरण के लिए, 2019 के लोकसभा चुनावों में, चुनाव आयोग ने राजनीतिक दलों को राजनीतिक प्रचार के लिए सशस्त्र बलों का उपयोग करने से परहेज करने के लिए दिशा-निर्देश जारी किए।
- जागरूकता अभियान: चुनाव आयोग मतदाताओं और राजनीतिक दलों को आदर्श आचार संहिता और उसके प्रावधानों के बारे में शिक्षित करने के लिए जागरूकता अभियान चला सकता है। उदाहरण के लिए, 2019 के लोकसभा चुनावों में, चुनाव आयोग ने मतदाता भागीदारी को प्रोत्साहित करने और नैतिक मतदान को बढ़ावा देने के लिए "SVEEP" नामक मतदाता जागरूकता अभियान चलाया।
- आदर्श आचार संहिता स्वाभाविक रूप से एक अनिवार्य दिशानिर्देश है और इसे न्यायालय के समक्ष एक संपूर्ण नियम पुस्तिका के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन के मामले में चुनाव आयोग द्वारा दी गई चेतावनियाँ सामान्य कार्यवाही हैं। हालाँकि, यदि उल्लंघन भारतीय दंड संहिता, 1860 और जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अंतर्गत आते हैं, तो इसके कई गंभीर परिणाम हो सकते हैं और उल्लंघनकर्ता को जेल भी जाना पड़ सकता है।

टिप्पणियाँ : खामियों को दूर करना, कानून का शासन, समयबद्ध प्रभावशीलता, डिजिटल युग, सीमित प्रवर्तन शक्ति, प्रतीकात्मक इशारा।

चुनाव वित्तपोषण

- वह प्रक्रिया जिसके द्वारा राजनीतिक दल अपने अभियान और गतिविधियों के लिए धन जुटाते हैं, जिसमें

मतदाताओं तक पहुंचना भी शामिल है, उसे चुनावी फंडिंग के रूप में जाना जाता है। सुप्रीम कोर्ट ने चुनावी बॉन्ड के माध्यम से प्राप्त धन के आतंकवाद का समर्थन करने या हिंसक विरोध प्रदर्शन भड़काने जैसे उद्देश्यों के लिए संभावित दुरुपयोग के बारे में चिंता जताई है।

चुनाव वित्तपोषण से संबंधित चुनौतियाँ:

- चुनावी बांडों से जुड़ी गुमनामी की चिंताएं: 2017 में चुनावी बांडों की शुरुआत से राजनीतिक दान की गुमनामी के बारे में चिंताएं बढ़ गई हैं, जिससे कंपनियों से असीमित गुमनाम योगदान की अनुमति मिल गई है और चुनावों को प्रभावित करने वाले अवैध वित्तपोषण का जोखिम बढ़ गया है।
- फंडिंग स्रोतों में अस्पष्टता: एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (एडीआर) की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में राजनीतिक दलों को अपनी आय का एक बड़ा हिस्सा अज्ञात स्रोतों से प्राप्त होता है, जो चुनावी फंडिंग के मुद्दों को दर्शाता है। पारदर्शिता की इस कमी के कारण धन के प्रवाह को ट्रैक करना और भ्रष्टाचार के संभावित स्रोतों की पहचान करना मुश्किल हो जाता है।
- चुनाव प्रचार का खर्च बढ़ना: भारत में चुनाव बहुत महंगे होते हैं, जिसके लिए राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों को चुनाव प्रचार के लिए पर्याप्त धन इकट्ठा करना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप धनी दानदाताओं का प्रभाव बढ़ सकता है और राजनीतिक गतिविधियों को वित्तपोषित करने के लिए गैरकानूनी तरीके अपनाए जा सकते हैं।
- पारदर्शिता की चुनौतियाँ: भारतीय राजनीतिक फंडिंग प्रणाली में पारदर्शिता का अभाव है, जिससे पार्टियों और उम्मीदवारों को जवाबदेह ठहराना चुनौतीपूर्ण हो जाता है। दान की उत्पत्ति के बारे में अनिश्चितता बनी रहती है, क्योंकि कई योगदान गुमनाम रूप से किए जाते हैं।
- सीमित सार्वजनिक निधि: हालांकि सरकार चुनाव-संबंधी खर्चों के लिए कुछ निधि उपलब्ध कराती है, लेकिन उपलब्ध सार्वजनिक निधि की मात्रा सीमित है। नतीजतन, राजनीतिक दल और उम्मीदवार निजी दान पर निर्भर रहते हैं, जिससे संभावित रूप से धनी दाताओं का प्रभाव बढ़ जाता है।
- चुनावी बांड मुद्दा:
- 15 फरवरी, 2024 को एक ऐतिहासिक फैसले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की पीठ ने चुनावी बॉन्ड योजना को असंवैधानिक घोषित कर दिया। यह एक ऐसी योजना थी जिसने राजनीतिक दलों के लिए असीमित गुमनाम फंडिंग के द्वार खोल दिए और भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में बड़े धन की भूमिका को मजबूत किया।

चिंताएं

- सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि गुमनाम चुनावी बांड सूचना के अधिकार और धारा 19(1)(ए) का उल्लंघन करते हैं।
- चयनात्मक गुमनामी और गोपनीयता: न्यायालय ने कहा कि यह योजना "चयनात्मक गुमनामी" और "चयनात्मक गोपनीयता" का प्रावधान करती है, क्योंकि चुनावी बांड का विवरण भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआई) के पास उपलब्ध है और कानून प्रवर्तन एजेंसियों द्वारा भी इसे प्राप्त किया जा सकता है।
- धन के स्रोत जानने का अधिकार: न्यायालय ने सरकार के इस तर्क की आलोचना की कि मतदाताओं को राजनीतिक दलों के धन के स्रोत जानने का अधिकार नहीं है।
- एक नई संतुलित प्रणाली की आवश्यकता: न्यायालय ने कहा कि केंद्र सरकार को एक नई प्रणाली तैयार करने पर विचार करना चाहिए जो आनुपातिकता को संतुलित करे और समान अवसर का मार्ग प्रशस्त करे।

फायदे

- बढ़ी हुई पारदर्शिता: चुनाव अधिकारियों और जनता के साथ सहभागिता के माध्यम से पारदर्शिता को बढ़ावा देता है।
- दानकर्ता की गुमनामी का संरक्षण: व्यक्तियों और संगठनों द्वारा गोपनीय दान की अनुमति देता है।

- उत्तरदायित्व आश्वासन: दान को पार्टी के घोषित बैंक खातों में जमा किया जाता है, जिससे निधि के उपयोग का स्पष्टीकरण सुनिश्चित होता है।
- नकद लेनदेन को हतोत्साहित करना: निर्दिष्ट बैंकों के माध्यम से भुगतान की आवश्यकता होती है, जिससे नकदी का उपयोग कम हो जाता है।

आगे बढ़ने का रास्ता:

- संविधान के कार्यकरण की समीक्षा के लिए राष्ट्रीय आयोग (2001): यदि पारदर्शिता की कुछ शर्तें पूरी होती हैं तो भ्रष्टाचार विरोधी उपाय के रूप में चुनावों के लिए राज्य द्वारा वित्त पोषण की सिफारिश की गई।
- चुनावों के लिए राज्य वित्त पोषण का तात्पर्य राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों के चुनावी खर्चों को समर्थन देने के लिए सार्वजनिक धन का उपयोग करना है।
- चिली प्रयोग - आरक्षित अंशदान: इसके तहत, दानकर्ता पार्टियों को दान देने के लिए इच्छित धन को चिली की चुनाव सेवा को हस्तांतरित कर सकते थे। चुनाव सेवा तब दानकर्ता की पहचान बताए बिना उस राशि को पार्टी को भेज देती थी।
- चुनावों का राज्य वित्तपोषण: चुनावों के राज्य वित्तपोषण में, पार्टियों और उम्मीदवारों को स्वयं से पूरी तरह धन जुटाने के बजाय, सार्वजनिक खजाने/राज्य बजट से धन प्राप्त होता है।

जरूरत

- राजनीतिक वित्तपोषण में पारदर्शिता का अभाव: राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों के लिए अभियान व्यय या धन के स्रोतों के अनिवार्य प्रकटीकरण पर कोई सीमा नहीं है।
- भ्रष्टाचार की संभावना: निजी वित्तपोषण से धनी व्यक्तियों, व्यवसायों या हित समूहों का राजनीतिक निर्णयों पर प्रभाव पड़ सकता है।
- नीति पर कब्ज़ा: दानकर्ता और निगम उन पार्टियों की नीतियों को प्रभावित कर सकते हैं जिन्हें वे धन देते हैं। इससे भाई-भतीजावाद और नीति पर कब्ज़ा हो सकता है।
- असमान खेल मैदान: जिनके पास अधिक वित्तीय संसाधनों तक पहुंच होती है, उनके पास प्रतिस्पर्धात्मक लाभ होता है, जो दूसरों (कम वित्तीय संसाधनों वाले) की भागीदारी में बाधा उत्पन्न कर सकता है।
- काला धन और अवैध वित्तपोषण: यह चुनावी प्रक्रिया की अखंडता से समझौता कर सकता है और राजनीतिक प्रणाली में जनता का विश्वास खत्म कर सकता है।
- फिजूलखर्ची: खर्च की सीमा के अभाव में, पार्टियां रैलियों, विज्ञापन आदि पर खर्च की होड़ में शामिल हो जाती हैं, जो फिजूलखर्ची हो सकती है।
- मतदाता हेरफेर: मतदाता उपहार, वोट के लिए नकदी आदि पर अनियंत्रित खर्च, धन शक्ति के माध्यम से चुनावी परिणामों में हेरफेर करता है।
- आपराधिक गठजोड़: बेहिसाब धनराशि अपराधियों, धनी व्यापारियों और राजनेताओं के बीच गठजोड़ को सुगम बनाती है।

चुनौतियां

- करदाताओं पर बोझ: राजनीतिक अभियानों के लिए सार्वजनिक धन का उपयोग करने से अतिरिक्त बोझ पड़ता है।
- सार्वजनिक धन का संभावित दुरुपयोग: उचित निगरानी और जवाबदेही तंत्र के बिना, यह जोखिम बना रहता है कि सार्वजनिक धन बर्बाद हो सकता है या उसका उपयोग अनपेक्षित उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है।
- गैर-राजनीतिक कारणों के प्रति अनुचित: राज्य वित्त पोषण अन्य आवश्यक सार्वजनिक सेवाओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी ढांचे से संसाधनों को हटा सकता है, जिन पर ध्यान देने और वित्त पोषण की आवश्यकता होती है।
- निष्पक्षता की कोई गारंटी नहीं: आवंटन मानदंडों और वितरण तंत्रों में हेरफेर किया जा सकता है या उन्हें पक्षपातपूर्ण बनाया जा सकता है, जिससे संभावित रूप से कुछ राजनीतिक दलों या उम्मीदवारों को लाभ हो सकता है।

- अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से संबंधित चिंताएं: निजी वित्तपोषण पर प्रतिबंध व्यक्तियों और संगठनों की क्षमता को सीमित कर सकते हैं तथा उनकी राजनीतिक प्राथमिकताओं को व्यक्त करने के अधिकार का उल्लंघन कर सकते हैं।
- सरकारी प्रभाव: राजनीतिक दल वित्त पोषण के लिए सरकार पर अत्यधिक निर्भर हो सकते हैं, जिससे उनकी स्वतंत्रता और सरकार पर नियंत्रण रखने की क्षमता पर असर पड़ सकता है।
- सभी के लिए एक जैसा दृष्टिकोण: विभिन्न क्षेत्रों, पार्टियों और उम्मीदवारों की आवश्यकताएं अलग-अलग हो सकती हैं, और सभी के लिए एक जैसा दृष्टिकोण इन मतभेदों को प्रभावी ढंग से संबोधित नहीं कर सकता है।

समितियां:

- चुनावों के राज्य वित्तपोषण पर इंद्रजीत गुप्ता समिति (1998): उम्मीदवारों और मान्यता प्राप्त दलों के लिए सीमित अप्रत्यक्ष सब्सिडी के रूप में आंशिक राज्य वित्तपोषण की सिफारिश की गई थी।
- चुनाव सुधारों पर विधि आयोग की रिपोर्ट (1999): भ्रष्टाचार को कम करने के लिए मान्यता प्राप्त दलों और उम्मीदवारों को चुनाव व्यय की आंशिक राज्य प्रतिपूर्ति की वकालत की गई।
- द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट (2008): राजनीति में भ्रष्टाचार और अपराधीकरण से निपटने के लिए सुधारों के एक पैकेज के हिस्से के रूप में चुनावों के लिए राज्य द्वारा वित्त पोषण का समर्थन किया गया।
- संविधान के कार्यकरण की समीक्षा के लिए राष्ट्रीय आयोग (2001): यदि पारदर्शिता की कुछ शर्तें पूरी होती हैं तो भ्रष्टाचार विरोधी उपाय के रूप में चुनावों के लिए राज्य द्वारा वित्त पोषण की सिफारिश की गई।

आगे बढ़ने का रास्ता:

- डिजिटल लेनदेन: पारदर्शिता बढ़ाने और अवैध वित्तपोषण के प्रभाव को कम करने के लिए राजनीतिक दान के लिए डिजिटल लेनदेन को पूर्ण रूप से अपनाना।

गुमनाम दान को सीमित करना: संभावित कॉर्पोरेट-राजनीतिक गठजोड़ पर अंकुश लगाने के लिए गुमनाम दान को अधिकतम 20% तक सीमित करना।

- आरटीआई के माध्यम से पारदर्शिता: राजनीतिक दलों को सूचना के अधिकार (आरटीआई) अधिनियम के दायरे में लाना, जैसा कि भूटान और जर्मनी में किया जाता है, ताकि उनके कामकाज में पारदर्शिता सुनिश्चित हो सके।
- राष्ट्रीय चुनावी कोष: एक राष्ट्रीय चुनावी कोष की स्थापना करना, जिसमें दानकर्ता योगदान करते हैं, तथा पिछले चुनावों में उनके प्रदर्शन के आधार पर दलों के बीच कोष वितरित किया जाता है।
- चुनावों का राज्य द्वारा वित्तपोषण: उच्च लागत को ध्यान में रखते हुए, चुनावों के राज्य द्वारा वित्तपोषण के लिए द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (द्वितीय एआरसी) की सिफारिश की जांच करना।
- राजनीतिक दलों पर व्यय की सीमा: राजनीतिक दलों के व्यय पर सीमा लगाना, जिसकी गणना व्यक्तिगत उम्मीदवारों के लिए निर्धारित अधिकतम सीमा और मैदान में उतारे गए कुल उम्मीदवारों की संख्या के आधे के गुणनफल के रूप में की जाएगी।

टिप्पणियाँ : व्यय सीमा, चुनावों का राज्य वित्त पोषण, डिजिटल लेनदेन, गुमनाम दान, नीति पर कब्जा, फिजूलखर्ची, आपराधिक गठजोड़, एक ही नीति सभी के लिए उपयुक्त, असमान खेल मैदान।

राजनीति का अपराधीकरण

- सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में आपराधिक मामलों के शीघ्र निपटान की निगरानी के लिए दिशानिर्देश जारी किए हैं, जिसमें संसद सदस्यों (एमपी) और विधानसभा सदस्यों (एमएलए) के खिलाफ राजनीति के अपराधीकरण के चिंताजनक मुद्दे पर ध्यान दिया गया है।
- 2019 के लोकसभा चुनावों के बाद, 43% नव-निर्वाचित सांसदों के खिलाफ आपराधिक मामले लंबित थे, जो राजनीति के अपराधीकरण के मुद्दे को उजागर करता है।

एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (ADR) चुनावी सुधारों पर केंद्रित एक वकालत समूह है।

- फरवरी 2022 की मीडिया रिपोर्टों के अनुसार, दिसंबर 2021 के अंत तक मौजूदा और पूर्व विधायकों और सांसदों के खिलाफ लंबित आपराधिक मामलों की संख्या बढ़कर 5,000 के करीब पहुंच गई थी।

परिभाषा

- राजनीति के अपराधीकरण से तात्पर्य आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों की राजनीतिक क्षेत्र में घुसपैठ से है, जिसमें चुनावों में उनकी भागीदारी और तत्पश्चात संसद सदस्य (एमपी) या विधान सभा सदस्य (एमएलए) के रूप में उनका निर्वाचन शामिल है।

राजनीति के अपराधीकरण का कारण

राजनीतिक

- राजनेताओं और नौकरशाही के बीच गठजोड़: यह अवांछनीय और खतरनाक रिश्ता अपराधियों, कानून तोड़ने वालों और भ्रष्ट व्यक्तियों को राजनीतिक व्यवस्था में घुसपैठ करने के लिए प्रेरित करता है। उदाहरण के लिए, 2जी स्पेक्ट्रम घोटाला, जिसमें राजनेता और नौकरशाह शामिल थे, भारत के इतिहास में सबसे बड़े भ्रष्टाचार घोटालों में से एक था।
- भ्रष्टाचार: हर चुनाव में राजनीतिक दल आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को खड़ा करते हैं, और आपराधिकता और जीतने की संभावना के बीच एक स्पष्ट संबंध है। उदाहरण के लिए, 2019 के लोकसभा चुनाव में जीतने वाले 43% उम्मीदवारों के खिलाफ आपराधिक मामले थे।

कानूनी एवं मतदाता संबंधी

- दोषसिद्धि के बाद अयोग्यता: जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 दोषसिद्धि के बाद किसी व्यक्ति को सांसद/विधायक बनने से अयोग्य ठहराता है, लेकिन यह उसे पार्टी के भीतर पद धारण करने से नहीं रोकता है। उदाहरण: किसी आपराधिक अपराध के लिए दोषी ठहराए गए राजनेता को निर्वाचित प्रतिनिधि बनने से अयोग्य ठहराया जा सकता है, लेकिन फिर भी वह प्रभावशाली पार्टी पदों पर रह सकता है या पार्टी के मामलों पर महत्वपूर्ण नियंत्रण रख सकता है।
- संकीर्ण हित: उम्मीदवारों के आपराधिक इतिहास के बारे में जानकारी होने के बावजूद, मतदाता अक्सर वोट डालते समय जाति या धर्म जैसे संकीर्ण हितों को प्राथमिकता देते हैं।
- वोट खरीदना: मतदाताओं के साथ छेड़छाड़ और वोट खरीदने की प्रथा लोकतांत्रिक प्रक्रिया को कमजोर करती है। उदाहरण: ऐसे उदाहरण सामने आए हैं जहाँ राजनेता मतदाताओं की पसंद को प्रभावित करने के लिए पैसे, उपहार या अन्य प्रोत्साहन वितरित करते हैं, जिससे चुनावों की अखंडता से समझौता होता है।

ईसीआई

- विश्वास की कमी: सत्तारूढ़ पार्टी के उम्मीदवारों के खिलाफ देरी से कार्रवाई और आदर्श आचार संहिता का खुला उल्लंघन, ईसीआई में जनता के विश्वास को खत्म करता है।
- बुनियादी ढांचे का अभाव: उदाहरण: सीमित जनशक्ति, तकनीकी संसाधन और तार्किक चुनौतियों के कारण चुनाव आयोग के लिए अभियान गतिविधियों की व्यापक निगरानी करना और चुनाव नियमों को लागू करना कठिन हो सकता है।
- सीमित शक्तियां: जनप्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 8 के अंतर्गत भारत निर्वाचन आयोग के पास दोषसिद्धि से पहले उम्मीदवारों को अयोग्य घोषित करने की शक्ति नहीं है।
- उदाहरण: जब तक दोषसिद्धि सुनिश्चित नहीं हो जाती, तब तक चुनाव आयोग के पास उन्हें चुनाव लड़ने से अयोग्य घोषित करने का अधिकार नहीं हो सकता।
- कम सजा दर: सांसदों और विधायकों के खिलाफ आपराधिक मामलों में कम सजा दर दंड से मुक्ति की धारणा बनाती है और आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों को राजनीति में प्रवेश करने के लिए प्रोत्साहित

करती है। उदाहरण: सांसदों और विधायकों के खिलाफ आपराधिक मामलों में सजा दर केवल 6% है, जो भारतीय दंड संहिता के तहत राष्ट्रीय औसत सजा दर 46% से काफी कम है।

राजनीति के अपराधीकरण के परिणाम:

- संसद की विश्वसनीयता कमज़ोर हुई: आपराधिक कानून निर्माता विधायी गुणवत्ता को कमजोर करते हैं और संस्थाओं में जनता का विश्वास खत्म करते हैं।
- भ्रष्टाचार का आधार: धन का प्रवाह वित्तीय और बाहुबल द्वारा संचालित एक कलंकित लोकतंत्र को बढ़ावा देता है।
- मतदाताओं के सीमित विकल्प: आपराधिक उम्मीदवार विकल्पों को सीमित कर देते हैं, जिससे स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव बाधित होते हैं।
- खराब शासन प्रभाव: घटिया कानून, बहिष्कारकारी नीतियां और भ्रष्टाचार सार्वजनिक सेवा वितरण में बाधा डालते हैं।
- न्यायिक आस्था पर प्रश्नचिह्न: राजनीतिक हेरफेर से निष्पक्ष न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर संदेह उत्पन्न होता है।
- सामाजिक सद्भाव को बाधित करना: अपराधी राजनेता नकारात्मक रोल मॉडल स्थापित करते हैं, हिंसा की संस्कृति को बढ़ावा देते हैं।

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उठाए गए कदम

महत्वपूर्ण न्यायिक निर्णय और उनका महत्व

निर्णय	महत्व
1997 का फैसला	PoCA, 1988 के तहत दोषसिद्धि और सजा पाए व्यक्ति की अपील पर दोषसिद्धि निलंबित न करने का निर्देश।
ADR बनाम भारत संघ, 2002	चुनावी प्रत्याशी को लंबित आपराधिक दोषसिद्धियों का खुलासा करना अनिवार्य।
लिली थॉमस बनाम भारत संघ, 2013	2 वर्ष की जेल सजा मिलने पर सांसद/विधायक की स्वतः अयोग्यता।
People's Union for Civil Liberties बनाम भारत संघ, 2014	नकारात्मक वोट (NOTA) का अधिकार—राजनीतिक दलों पर नैतिक दबाव डालने हेतु विकल्प।
Public Interest Foundation बनाम भारत संघ, 2014	सांसद/विधायकों के मामलों की लंबित सुनवाई 1 वर्ष के भीतर पूरी करने का निर्देश।

चुनावी पारदर्शिता एवं जवाबदेही से जुड़े प्रमुख न्यायिक निर्णय

निर्णय	निर्देश/महत्व (हिंदी में)
लोक प्रहरि बनाम भारत संघ, 2018	राजनीतिक प्रत्याशियों तथा उनके आश्रितों व सहयोगियों की आय के स्रोत का अनिवार्य खुलासा।
Public Interest Foundation बनाम भारत संघ, 2018	निर्वाचन आयोग एवं राजनीतिक पार्टियों द्वारा प्रत्याशियों के लंबित आपराधिक मामलों का खुलासा एवं विभिन्न माध्यमों से प्रचारित करने का निर्देश।
Public Interest Foundation & Ors. बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2020	राजनीतिक पार्टियों के लिए प्रत्याशियों के लंबित आपराधिक मामलों का विवरण और उन्हें चुने जाने के कारण प्रकाशित करना अनिवार्य।

ब्राइब के लिए वोट संबंधी हालिया सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय	सांसद/विधायकों को वोटिंग या सदन में प्रश्न पूछने के लिए रिश्वत लेने के मामलों में अनुच्छेद 105 एवं 194 के तहत कोई संरक्षण नहीं; 1998 के पी.वी. नरसिम्हा रूलिंग (MP/MLA को मिले अभेद्य अधिकार) रद्द।

चुनाव आयोग द्वारा उठाए गए कदम:

- 1997: निर्वाचन अधिकारी उन उम्मीदवारों का नामांकन खारिज कर देंगे जो नामांकन पत्र दाखिल करने के दिन ही दोषी पाए गए हों, भले ही उनकी सजा निलंबित हो।
- चुनाव के दौरान काला धन जब्त करने के लिए उड़न दस्ते गठित
- उम्मीदवारों को आपराधिक पृष्ठभूमि, उनकी संपत्ति, देनदारियों और शैक्षिक योग्यता के बारे में जानकारी वाला एक हलफनामा प्रस्तुत करना होगा
- मतदाता जागरूकता अभियान में SVEEP जैसे साधनों का उपयोग किया जाता है तथा सेलिब्रिटीज के माध्यम से यह संदेश फैलाया जाता है कि वे अपना वोट न बेचें।

आगे बढ़ने का रास्ता:

- कानूनी ढांचे को मजबूत करना: जिन उम्मीदवारों के खिलाफ अदालत में गंभीर आरोपों के तहत आरोप तय किए गए हैं
- जनप्रतिनिधित्व कानून, 1951 में संशोधन करके, ऐसे व्यक्तियों को चुनाव में भाग लेने से रोका जाना चाहिए जो अपराध के लिए दोषी हैं। 244वें विधि आयोग ने आरोप तय करने के चरण में ही अयोग्य ठहराने की सिफारिश की है, साथ ही अन्य कानूनी सुरक्षा उपाय भी किए हैं।
- राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र: दोषी ठहराए गए राजनेता पार्टी को नियंत्रित करके और विधायिका में प्रॉक्सी उम्मीदवार उतारकर कानून बनाने को प्रभावित करना जारी रख सकते हैं। हालाँकि RPA 1951 किसी मौजूदा विधायक या उम्मीदवार को कुछ आधारों पर अयोग्य ठहराता है, लेकिन पार्टी के भीतर पदों पर नियुक्तियों पर कोई विनियमन नहीं है।
- राज्य वित्तपोषण: दिनेश गोस्वामी और इंद्रजीत समिति की सिफारिश के अनुसार चुनावों के लिए राज्य वित्तपोषण का कार्यान्वयन।
- वापस बुलाने का अधिकार: मतदाताओं को काम न करने वाले निर्वाचित प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार प्रदान करना।
- चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध: पांच वर्ष से अधिक की सजा वाले अपराधों के आरोपी व्यक्तियों को चुनाव लड़ने से प्रतिबंधित किया जाता है।
- समय पर परीक्षण और अयोग्यता: एक वर्ष के भीतर परीक्षण पूरा करना और एक वर्ष के बाद स्वतः अयोग्यता।
- विधि आयोग: जन प्रतिनिधि अधिनियम, 1951 की निम्नलिखित धाराओं में संशोधन: अयोग्यता का आधार: धारा 125 ए - धारा 8(1) के तहत अयोग्यता के लिए दोषसिद्धि एक आधार है। झूठे हलफनामे: धारा 125 ए - झूठे हलफनामे दाखिल करने के लिए न्यूनतम दो साल की सजा। भ्रष्ट आचरण: धारा 123 - झूठे हलफनामे दाखिल करना भ्रष्ट आचरण के रूप में शामिल करें।

नोट : विधि आयोग, मतदाता के विकल्प सीमित, सामाजिक सद्भाव में बाधा, विश्वसनीयता कमज़ोर, संकीर्ण हित, वोट खरीदना।

आंतरिक पार्टी लोकतंत्र

- भारतीय राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र आंतरिक जवाबदेही, समावेशी निर्णय लेने और राजनीतिक संगठनों के भीतर लोकतांत्रिक प्रक्रिया के समग्र स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है। आंतरिक पार्टी लोकतंत्र का अर्थ है पार्टी के अधिकांश सदस्यों के निर्णय को उनके संबंधित संविधान के अनुसार बनाए रखना।
- पार्टियों में लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली का अभाव मुख्यतः दो मूलभूत पहलुओं में प्रकट होता है:
- खुली और समावेशी प्रक्रिया नहीं: पार्टियों के नेतृत्व और संरचना को निर्धारित करने की प्रक्रिया पूरी तरह से खुली और समावेशी नहीं है। यह सभी नागरिकों के राजनीति में

भाग लेने और चुनाव लड़ने के समान राजनीतिक अवसर के संवैधानिक अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

- कार्य करने का केन्द्रीकृत तरीका: राजनीतिक दलों के कार्य करने का केन्द्रीकृत तरीका और 1985 का कठोर दलबदल विरोधी कानून, पार्टी विधायकों को राष्ट्रीय और राज्य विधानसभाओं में अपनी व्यक्तिगत प्राथमिकताओं के अनुसार मतदान करने से रोकता है।

मुफ्तखोरी की राजनीति

- एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (एडीआर) द्वारा मुफ्त उपहारों को चुनौती देने वाली एक जनहित याचिका (पीआईएल) के मद्देनजर 'मुफ्त उपहार संस्कृति और भारतीय राजनीति और लोकतंत्र पर इसका प्रभाव' शीर्षक से एक वेबिनार का आयोजन किया गया।
- मुफ्त उपहार:
- भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) ने जून 2022 में एक बुलेटिन में 'मुफ़्त चीज़ों' को "एक सार्वजनिक कल्याणकारी उपाय के रूप में परिभाषित किया है जो निःशुल्क प्रदान किया जाता है। इसमें मुफ़्त बिजली, पानी, सार्वजनिक परिवहन, बकाया उपयोगिता बिलों की माफ़ी और कृषि ऋण माफ़ी जैसे प्रावधान शामिल हैं।

मुफ्त चीजों के अत्यधिक उपयोग से जुड़ी चिंताएं:

- राज्यों पर भारी कर बोझ: कई राज्य भारी कर्ज के बोझ तले दबे हुए हैं, जिससे अधिक महत्वपूर्ण कल्याणकारी कार्यक्रमों में निवेश करने की उनकी क्षमता सीमित हो गई है। पंजाब की बिजली सब्सिडी उसके कुल राजस्व का 16 प्रतिशत से अधिक है।
- संवैधानिक सिद्धांतों के विरुद्ध: जब राज्यों के पास मौलिक अधिकारों की गारंटी देने और नीति निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए धन की कमी हो, तो वादे करना संवैधानिक सिद्धांतों के विरुद्ध है।
- राजकोषीय स्थान का सिकुड़ना: सब्सिडी के बोझ को ऋण के माध्यम से वित्तपोषित करने की आवश्यकता है, जिसके परिणामस्वरूप घाटा बढ़ेगा। इससे राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन (FRBM) नियमों का उल्लंघन होगा और राज्य कर्ज के जाल में फंस जाएंगे।
- समान अवसर के सिद्धांत का उल्लंघन: मुफ्त उपहारों से राजनीतिक दलों को अनुचित लाभ मिलता है।
- मतदाताओं के एक वर्ग को ही निजी वस्तुएँ प्रदान करने का वादा किया गया है। उदाहरण के लिए, छात्राओं को साइकिल या कॉलेज के छात्रों को लैपटॉप या गृहणियों को ग्राइंडर आदि देने का वादा किया गया है।
- सामाजिक प्रभाव: अधिक संसाधन प्राप्त करने के बावजूद, आरबीआई के अध्ययन से पता चलता है कि राज्यों द्वारा सामाजिक क्षेत्र में व्यय में गिरावट आई है, विशेष रूप से स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में।
- पर्यावरण संबंधी चिंताएँ: राज्य किसानों को मुफ़्त बिजली देते हैं, जिससे भूजल का अत्यधिक उपयोग होता है और पारंपरिक फ़सल पैटर्न जारी रहता है। पंजाब और हरियाणा में, अत्यधिक सब्सिडी वाली बिजली के कारण भूजल निष्कर्षण राष्ट्रीय औसत 61% के मुकाबले 161% और 134% है।
- **मुफ्तखोरी संस्कृति पर अंकुश लगाने में चुनौतियाँ:**
- भारत निर्वाचन आयोग के पास नियामक शक्तियों का अभाव: भारत निर्वाचन आयोग (ईसीआई) ने कहा है कि उसके पास नियामक शक्तियों का अभाव है।
- चुनावी वादे करने के लिए राजनीतिक दलों को विनियमित या दंडित करना। ईसीआई के अनुसार, चुनाव से पहले या बाद में मुफ्त उपहारों की पेशकश या वितरण संबंधित पार्टी के अधिकार क्षेत्र में आता है।
- लोकलुभावन नीतियों की वित्तीय व्यवहार्यता का कोई आकलन नहीं: राजनीतिक दल अक्सर मुफ्त उपहारों के रूप में किए गए वादों के लिए धन के स्रोतों को स्पष्ट करने में विफल रहते हैं।
- मतदाताओं को जानकारी का अभाव: वे मुफ्त सुविधाओं के वित्तीय पहलुओं पर ध्यान नहीं देते, जिससे राजनीतिक दलों को मुफ्त सुविधाएं देने के लिए प्रतिस्पर्धा करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

- मुफ़्त सुविधाओं पर सुप्रीम कोर्ट की प्रतिक्रिया:
- सर्वोच्च न्यायालय की पीठ ने हाल ही में एक फैसले में मुफ्त सुविधाओं और चुनावी वादों के मुद्दे से निपटने के लिए एक शीर्ष निकाय के गठन का प्रस्ताव रखा।
- इसमें नीति आयोग, विधि आयोग, वित्त आयोग, भारतीय रिजर्व बैंक जैसे कई हितधारक और सत्तारूढ़ दल और विपक्षी दलों के सदस्य शामिल होंगे।
- यह संदर्भ 2013 के एस. सुब्रमण्यम बालाजी बनाम तमिलनाडु निर्णय में न्यायालय के अपने रुख से बदलाव है।
- एस. सुब्रमण्यम बालाजी बनाम तमिलनाडु मामले में 2013 का निर्णय: न्यायालय ने माना था कि चुनाव घोषणापत्र में वादे करना जनप्रतिनिधित्व (आरपीए) अधिनियम, 1951 की धारा 123 के अंतर्गत 'भ्रष्ट आचरण' नहीं है।

आगे बढ़ने का रास्ता:

- मतदाताओं की जिम्मेदारी: मतदाताओं को सतर्क रहना चाहिए और लोकलुभावन नीतियों के वित्तीय प्रभावों के बारे में पूछताछ करनी चाहिए।
- ईसीआई को अधिक अधिकार देकर सशक्त बनाना: धन के उपयोग पर बैकअप या चेतावनी के रूप में वैधानिक प्रावधानों की आवश्यकता है।
- आदर्श घोषणापत्र: चुनाव आयोग आदर्श आचार संहिता के तहत कुछ उपाय ला सकता है, ताकि जनता से वादे करने का एक जिम्मेदार तरीका अपनाया जा सके। मतदाताओं को यह तय करना होगा कि चुनाव अभियान विश्वसनीय है या नहीं और क्या वादे और मुफ्त सुविधाएं उनके हित में हैं।
- कल्याणकारी योजनाओं की सीमा तय करना: जीएसडीपी का 1% या राज्य के स्वयं के कर संग्रह या राज्य राजस्व व्यय का 1% खर्च तय करने से कल्याणकारी योजनाओं को ठीक से लागू करने में मदद मिलेगी।
- सामाजिक क्षेत्र के बजटीय आवंटन पर नज़र रखना: कल्याणकारी योजनाओं के लिए उच्च संसाधन आवंटन को प्राथमिकता देना
- भारत स्वास्थ्य और शिक्षा पर 4.7% खर्च करता है, जो अन्य विकासशील देशों, जैसे उप-सहारा अफ्रीका, जो 7% खर्च करता है, से पीछे है।
- भारत के अर्थशास्त्री और पूर्व मुख्य सांख्यिकीविद् प्रणब सेन का कहना है कि अगर राजनीतिक दलों ने सत्ता में आने पर किए गए अपने सभी वादों को पूरा किया होता तो कुछ राज्यों की वित्तीय स्थिति और भी खराब हो जाती। "भारतीय अर्थव्यवस्था पर मुफ्त सुविधाओं का वास्तविक प्रभाव अभी भी सीमित है क्योंकि कुछ वादे पूरे नहीं हुए हैं," विरासत में मिली सब्सिडी ही असली समस्या है। "कभी-कभी मतदाताओं को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि कोई वादा पूरी तरह से लागू नहीं हुआ है। लेकिन एक बार मुफ्त सुविधा दिए जाने के बाद, कोई भी राजनीतिक दल इसे वापस लेने की हिम्मत नहीं करेगा, क्योंकि उसे इसके लिए विरोध का सामना करना पड़ सकता है," (इकोनॉमिक्स टाइम्स)

एआई और चुनाव

- आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) का मतलब है मशीनों में मानव बुद्धि का अनुकरण करना जिन्हें मनुष्यों की तरह सोचने और उनके कार्यों की नकल करने के लिए प्रोग्राम किया जाता है। इसमें मशीन लर्निंग, पैटर्न पहचान, बड़ा डेटा, सेल्फ-एल्गोरिदम आदि जैसी तकनीकें शामिल हैं।

चुनावों में एआई की महत्वपूर्ण क्षमता

- मतदाता सहभागिता में वृद्धि एवं प्रभावी वृद्धि: शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक मंचों के माध्यम से जागरूकता फैलाकर
- अभियान के दौरान, एआई मतदाताओं को मुद्दों और उम्मीदवारों को समझने में मदद कर सकता है, जिसके परिणामस्वरूप भागीदारी बढ़ेगी और मतदाताओं को अधिक प्रभावी ढंग से सूचित किया जा सकेगा।
- समावेशिता को बढ़ावा देना: भाषिनी जैसे एआई-आधारित ऐप की मदद से, जानकारी को कई भारतीय भाषाओं में

उपलब्ध कराया जा सकता है। यह समाज के वंचित वर्गों के लिए मददगार होगा। एआई तकनीकें विकलांग मतदाताओं, जैसे कि दृष्टिबाधित मतदाताओं की मदद कर सकती हैं, जिससे मतदान प्रक्रिया अधिक सुलभ और समावेशी बन सकती है।

- चुनाव पारदर्शिता और सुरक्षा: एआई पारदर्शी विज्ञापन नीतियों के कार्यान्वयन, सामग्री लेबल तैयार करने और गलत सूचना से निपटने के लिए चुनाव संबंधी प्रश्नों को प्रतिबंधित करने में मदद कर सकता है।
- शिकायतों के समाधान के लिए चुनाव आयोग की वेबसाइट पर एआई-आधारित चैटबॉट पेश किया जा सकता है। एआई उपकरण मतदान प्रक्रियाओं की निगरानी करेंगे, डेटा का विश्लेषण करेंगे और मशीन लर्निंग एल्गोरिदम और निवारक उपायों के माध्यम से चुनाव की अखंडता सुनिश्चित करेंगे।
- लोकतंत्र को मजबूती: चुनाव आयोग ऑनलाइन मतदाता पंजीकरण और वेबसाइट पर मतदाता सूची जारी करने जैसे विकल्पों के साथ प्रौद्योगिकी का अधिकतम उपयोग कर रहा है। वे जागरूकता और व्यापक पहुंच बनाने और शिकायतों का समाधान करने के लिए एआई और सोशल मीडिया का उपयोग कर सकते हैं।

चुनावों में एआई के उपयोग से जुड़ी चुनौतियाँ

- गलत सूचना और भ्रामक सूचना: डीपफेक और अन्य कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) द्वारा उत्पन्न सामग्री अति-यथार्थवादी डिजिटल मिथ्याकरण पैदा कर सकती है और इसका उपयोग प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचाने, साक्ष्य गढ़ने और लोकतांत्रिक संस्थानों में विश्वास को कम करने के लिए किया जा सकता है।
- सोशल मीडिया प्रवर्धन: फेसबुक और ट्विटर जैसी सोशल मीडिया कम्पनियां प्रभाव और गलत सूचना के जोखिम को बढ़ाती हैं, जिससे उनकी तथ्य-जांच और चुनाव निष्ठा टीमों में काफी कमी आती है।
- माइक्रोटार्गेटिंग: माइक्रोटार्गेटिंग तकनीकों के माध्यम से, एआई एल्गोरिदम का उपयोग मतदाता वरीयताओं में हेरफेर करने के लिए किया जा सकता है
- और मतदाताओं को प्रभावित करके चुनाव की निष्पक्षता को कमजोर करना।
- गोपनीयता संबंधी चिंताएँ: एआई से जुड़ी मुख्य गोपनीयता संबंधी चिंताएँ डेटा उल्लंघन और व्यक्तिगत जानकारी तक अनधिकृत पहुँच की संभावना है। इतना अधिक डेटा एकत्र और संसाधित किए जाने के कारण, यह जोखिम है कि यह हैकिंग या अन्य सुरक्षा उल्लंघनों के माध्यम से गलत हाथों में पड़ सकता है।
- विश्वास का क्षरण: अल-जनरेटेड सामग्री का अस्तित्व ही अविश्वास का एक सामान्य माहौल पैदा कर सकता है, जहाँ लोग सभी सूचनाओं की प्रामाणिकता पर सवाल उठाते हैं। इस घटना को झूठा लाभांश के रूप में जाना जाता है।
- कोई विशिष्ट कानून नहीं: भारत में डीपफेक और एआई-संबंधित अपराधों से निपटने के लिए विशिष्ट कानूनों का अभाव है, लेकिन कई कानूनों के तहत प्रावधान नागरिक और आपराधिक राहत प्रदान कर सकते हैं।
- उदाहरण: सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (आईटी एक्ट) की धारा 66ई डीपफेक अपराधों के मामलों में लागू होती है, जिसमें किसी व्यक्ति की छवियों को मास मीडिया में कैप्चर, प्रकाशित या प्रसारित करना शामिल होता है, जिससे उनकी गोपनीयता का उल्लंघन होता है।
- ऐसा अपराध करने पर 3 वर्ष तक की कैद या 2 लाख रुपए तक का जुर्माना हो सकता है।

भारत द्वारा की गई कार्रवाई

- डिजिटल प्लेटफॉर्म्स को परामर्श जारी करना: भारत सरकार ने डिजिटल प्लेटफॉर्म्स से समाज और लोकतंत्र को नुकसान पहुंचाने वाली गलत सूचनाओं को रोकने और उन्हें दूर करने के लिए तकनीकी और व्यावसायिक प्रक्रिया समाधान प्रदान करने को कहा है।

- सरकार ने कहा कि चुनावों के बाद डीपफेक और गलत सूचना के खिलाफ कानूनी ढांचे को अंतिम रूप दिया जाएगा।
- सरकार ने यह भी कहा कि कम्पनियों को भारतीय कानूनों के तहत अवैध प्रतिक्रियाएं उत्पन्न नहीं करनी चाहिए या "चुनावी प्रक्रिया की अखंडता को खतरा नहीं पहुंचाना चाहिए"।
- गूगल-ईसीआई साझेदारी: आम चुनावों के दौरान गलत सूचना के प्रसार को रोकने के लिए गूगल ने भारतीय चुनाव आयोग (ईसीआई) के साथ साझेदारी की है। गूगल विश्वसनीय जानकारी प्रदान करने और भ्रामक एआई-जनरेटेड सामग्री को रोकने के लिए प्रतिबद्ध है।

आगे बढ़ने का रास्ता

- विनियमन ढांचा: चुनावों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग के लिए एक सटीक कानूनी ढांचा तंत्र स्थापित करने की आवश्यकता है, जैसे डेटा संरक्षण पर विनियमन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता-संचालित विज्ञापन में पारदर्शिता और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के नैतिक उपयोग के लिए मानक।
- सहयोग: सरकारों और चुनावी निकायों को गलत सूचना से निपटने और चुनावी प्रक्रियाओं को सुरक्षित करने के लिए प्रौद्योगिकी कंपनियों के साथ सहयोग करना चाहिए।
- जन जागरूकता: एआई-जनित गलत सूचना की चुनौतियों के बारे में जनता को शिक्षित करने से मतदाताओं को सूचना का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने में सशक्त बनाया जा सकता है।
- तकनीकी समाधान: अब समय आ गया है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणाली विकसित की जाए जो गलत सूचनाओं और डीप फेक का पता लगाने और उन्हें चिन्हित करने में सक्षम हो।

निष्कर्ष

- यह एक ऐसा युग है जहाँ तकनीकी विकास अपरिहार्य है। प्रौद्योगिकी का उपयोग उन्नति के लिए करते हुए लोकतांत्रिक सिद्धांतों को बनाए रखना महत्वपूर्ण विचार और निरंतर नैतिक परीक्षण की मांग करता है। सोशल मीडिया और एआई का उचित एकीकरण आने वाले वर्षों में राजनीतिक विमर्श और निर्णय लेने को प्रभावित करेगा क्योंकि भारत अपने लोकतंत्र के अमृत काल की ओर बढ़ रहा है।

चुनावी साक्षरता: ईसीआई द्वारा पहल

- चुनावी साक्षरता क्लब स्कूली छात्रों को रोचक गतिविधियों और व्यावहारिक अनुभव के माध्यम से जोड़ने का एक मंच है, ताकि उन्हें उनके चुनावी अधिकारों के बारे में जागरूक किया जा सके और उन्हें पंजीकरण और मतदान की चुनावी प्रक्रिया से परिचित कराया जा सके। कॉलेजों और ग्रामीण समुदायों में भी ईएलसी मौजूद हैं। ईएलसी में, सीखना मजेदार है। गतिविधियों और खेलों को छात्रों को प्रेरित करने और उन्हें सोचने और सवाल पूछने के लिए प्रेरित करने के लिए डिज़ाइन किया गया है। ईएलसी के माध्यम से, भारत के चुनाव आयोग का उद्देश्य युवा और भावी मतदाताओं के बीच चुनावी भागीदारी की संस्कृति को मजबूत करना है। मतदाताओं को मतदाता सूची में नाम दर्ज करने, मतदाता सूची में उनके मौजूदा विवरणों को सही करने और स्थानांतरित और मृत परिवार के सदस्यों के नाम हटाने से संबंधित प्रक्रिया के बारे में शिक्षित करने के लिए व्यवस्थित मतदाता शिक्षा और चुनावी भागीदारी (एसवीईईपी) कार्यक्रम चलाया जाता है।

दोहराना:

भारतीय चुनाव आयोग (ईसीआई) ने 'एनकोर' (वास्तविक समय के माहौल पर संचार को सक्षम करना) का अनावरण किया है, जो उम्मीदवारों और चुनाव कार्यवाही के प्रबंधन को बेहतर बनाने के लिए डिज़ाइन किया गया एक सॉफ़्टवेयर समाधान है। यह अभिनव डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म उम्मीदवारों को ऑनलाइन फ़ॉर्म भरने की अनुमति देकर नामांकन प्रक्रिया को सरल बनाता है, जिसे बाद में प्रिंट किया जा सकता है और आवश्यक दस्तावेज़ों के साथ ऑफ़लाइन जमा किया जा सकता है। उम्मीदवारों को ईसीआई के ऑनलाइन पोर्टल पर खाते पंजीकृत करने, नामांकन फ़ॉर्म तक पहुँच प्रदान करने, सुरक्षा जमा जमा करने की क्षमता और रिटर्निंग अधिकारी के साथ

अपॉइंटमेंट की व्यवस्था करने का विकल्प प्रदान किया जाता है। एनकोर उम्मीदवारों के नामांकन और हलफनामों के प्रमाणीकरण की सहज प्रक्रिया की सुविधा देता है, जिससे रिटर्निंग अधिकारियों को नामांकन प्रस्तुतियाँ और हलफनामे के सत्यापन को कुशलतापूर्वक प्रबंधित करने में मदद मिलती है।

टिप्पणियाँ : विश्वास का क्षरण, मुफ्तखोरी, एनकोर, आंतरिक पार्टी लोकतंत्र, वंशवादी राजनीति, राजनीति का अपराधीकरण, एमसीसी, द्वितीय एआरसी, गलत सूचना, सूक्ष्म लक्ष्यीकरण, व्यवस्थित मतदाता शिक्षा और चुनावी भागीदारी (एसवीईईपी), गलत सूचना और भ्रामक सूचना।

पिछले वर्ष के प्रश्न

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) के उपयोग के संबंध में हाल के विवाद के मद्देनजर, भारत में चुनावों की विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए भारत के चुनाव आयोग के सामने क्या चुनौतियाँ हैं? - 2018
लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के लिए एक साथ चुनाव कराने से चुनाव प्रचार में लगने वाला समय और पैसा सीमित हो जाएगा, लेकिन इससे सरकार की जनता के प्रति जवाबदेही कम हो जाएगी। चर्चा - 2017
भारत में लोकतंत्र की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए भारतीय चुनाव आयोग ने 2016 में चुनाव सुधारों का प्रस्ताव रखा है। सुझाए गए सुधार क्या हैं और लोकतंत्र को सफल बनाने में वे किस हद तक महत्वपूर्ण हैं? - 2016

COACH UPSC IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

परिसीमन आयोग

पृष्ठभूमि

भारत में परिसीमन आयोग एक वैधानिक निकाय है जो चुनावों के उद्देश्य से देश में विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाओं का निर्धारण करने के लिए जिम्मेदार है।

संवैधानिक प्रावधान

- अनु. 81: प्रत्येक राज्य और केंद्र शासित प्रदेश को लोकसभा में सीटें इस प्रकार आवंटित की जाएंगी कि राज्यों में जनसंख्या और सीटों का अनुपात यथासंभव समान हो।
- अनु. 82: परिसीमन आयोग अधिनियम के तहत भारत सरकार द्वारा स्थापित परिसीमन आयोग द्वारा प्रत्येक जनगणना के बाद संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन।
- अनु. 170: प्रत्येक जनगणना के बाद परिसीमन अधिनियम के अनुसार राज्यों को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है।
- 84वां संविधान संशोधन अधिनियम: 2026 तक परिसीमन पर रोक।
- कारण: परिवार नियोजन एवं जनसंख्या स्थिरीकरण उद्देश्य।
- निहितार्थ: निर्वाचन क्षेत्रों में असमान प्रतिनिधित्व के कारण अनुच्छेद 81 का उल्लंघन।

परिसीमन आयोग

- नियुक्ति: भारत में परिसीमन आयोग की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और यह भारत के चुनाव आयोग (ईसीआई) के सहयोग से काम करता है।
- संरचना: इसमें सर्वोच्च न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश, मुख्य चुनाव आयुक्त और संबंधित राज्य चुनाव आयुक्त शामिल होते हैं।
- प्राधिकरण: यह एक उच्चस्तरीय निकाय है जिसके आदेश कानून के समान शक्तिशाली होते हैं तथा उन्हें न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।
- रिपोर्टिंग: आयोग के आदेश लोक सभा और राज्य विधान सभाओं के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं, लेकिन उनमें संशोधन की अनुमति नहीं होती।

परिसीमन आयोग के कार्य

सीमा निर्धारण: निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाओं और संख्या का निर्धारण करता है, तथा उनके बीच जनसंख्या समानता सुनिश्चित करता है।

- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए सीट आवंटन: अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (एसटी) के लिए महत्वपूर्ण एससी/एसटी आबादी वाले क्षेत्रों में सीटों के आवंटन पर निर्णय लेता है (अनु. 330 और 332 के अनुसार)।
- प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व को पुनः समायोजित करना: प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व को पुनः समायोजित करना
- नवीनतम जनगणना के आंकड़ों के आधार पर लोकसभा और विधानसभाओं में सभी निर्वाचन क्षेत्रों के लिए सीटों का निर्धारण किया जाएगा।
- सिफारिशें और सार्वजनिक भागीदारी: भारत के राजपत्र में मसौदा सिफारिशें प्रकाशित करता है, बताता है
- राजपत्रों और क्षेत्रीय मीडिया में प्रकाशित किया जाता है। जनता की राय पर विचार करने के लिए सार्वजनिक सुनवाई आयोजित करता है, और आवश्यकतानुसार संशोधन करता है।
- बहुमत निर्णय: आयोग के सदस्यों के बीच असहमति की स्थिति में बहुमत निर्णय को अपनाया जाता है।

84वां संविधान संशोधन अधिनियम (2002)

परिसीमन पर रोक: 84वें संशोधन ने 2026 के बाद पहली जनगणना तक लोकसभा और राज्य विधानसभा सीटों के परिसीमन पर रोक लगा दी।

उद्देश्य एवं कारण:

- जनसंख्या स्थिरीकरण हेतु: विभिन्न भागों में परिवार नियोजन कार्यक्रमों की प्रगति को ध्यान में रखते हुए

- देश की जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए, सरकार ने राष्ट्रीय जनसंख्या नीति रणनीति के भाग के रूप में, राज्य सरकारों को जनसंख्या स्थिरीकरण के एजेंडे को आगे बढ़ाने में सक्षम बनाने के लिए एक प्रेरक उपाय के रूप में, वर्ष 2026 तक नए परिसीमन पर रोक बढ़ाने का निर्णय लिया है।

अंतर्राष्ट्रीय प्रथाएँ:

- अमेरिका जैसे संघ में, प्रतिनिधि सभा (जो हमारी लोकसभा के बराबर है) में सीटों की संख्या 1913 से 435 तक सीमित है। प्रत्येक जनगणना के बाद राज्यों के बीच सीटों का बंटवारा 'समान अनुपात की विधि' के माध्यम से किया जाता है। इससे किसी भी राज्य को कोई खास लाभ या हानि नहीं होती है।
- 720 सदस्यों वाली यूरोपीय संघ (ईयू) संसद में सीटों की संख्या 27 सदस्य देशों के बीच 'अवक्रमित आनुपातिकता' के सिद्धांत के आधार पर विभाजित की जाती है। इस सिद्धांत के तहत, जनसंख्या बढ़ने के साथ सीटों की संख्या के अनुपात में जनसंख्या में वृद्धि होगी।

परिसीमन आयोग का महत्व

- सर्वोच्च प्राधिकारी: परिसीमन आयोग के निर्णय और निर्देश अंतिम हैं तथा कानून या अदालत द्वारा उन्हें चुनौती नहीं दी जा सकती।
- न्यायसंगत प्रतिनिधित्व के लिए जिम्मेदार: आयोग लगभग समान जनसंख्या वितरण सुनिश्चित करने के लिए निर्वाचन क्षेत्र की सीमाएँ और संख्याएँ निर्धारित करता है। यह निष्पक्ष प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करता है। यह "एक वोट, एक मूल्य" के सिद्धांत को कायम रखता है।
- निष्पक्ष क्षेत्रीय वितरण: यह निष्पक्ष क्षेत्रीय वितरण सुनिश्चित करता है ताकि एक राजनीतिक दल चुनाव में दूसरों से बेहतर प्रदर्शन न कर सके।
- आरक्षित सीटों की पहचान: परिसीमन आयोग उन सीटों की पहचान करता है जो अनुसूचित जातियों (एससी) और अनुसूचित जनजातियों (एसटी) के लिए आरक्षित हैं, जहाँ इन समुदायों की आबादी काफी ज़्यादा है। इससे उनका पर्याप्त राजनीतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित होता है।

चुनौतियां

- दक्षिणी राज्यों की चिंताएं: जनसंख्या नियंत्रण के सफल उपायों और प्रति व्यक्ति उच्च राजस्व सृजन वाले दक्षिणी राज्यों को उत्तरी राज्यों की तुलना में सार्थक राजनीतिक प्रतिनिधित्व खोने का डर था।
- मताधिकार से वंचित करना और आर्थिक योगदान: केवल जनसंख्या के आधार पर परिसीमन करने से आर्थिक रूप से विकसित दक्षिणी राज्य राजनीतिक रूप से वंचित हो जाते, जबकि केंद्र सरकार को उनके आर्थिक योगदान से लाभ मिलता रहता।
- संशोधन और स्थगन: इन चिंताओं को दूर करने के लिए, 1976 में आपातकालीन शासन के दौरान संविधान में संशोधन किया गया, जिसमें 2001 तक परिसीमन को निलंबित कर दिया गया। इसके बाद, एक और संशोधन ने इसे 2026 तक स्थगित कर दिया, इस आशा के साथ कि तब तक एक समान जनसंख्या वृद्धि दर हासिल कर ली जाएगी।

परिसीमन आयोग की आलोचना

- जनसंख्या नियंत्रण पूर्वाग्रह: परिवार नियोजन को बढ़ावा देने वाले राज्यों की सीटें कम होने का खतरा है, जबकि जनसंख्या नियंत्रण पर कम जोर देने वाले राज्यों को अधिक सीटें मिल सकती हैं।
- पुराना सीट आवंटन: 2008 में किया गया परिसीमन 2001 की जनगणना पर आधारित था, लेकिन सीटों की कुल संख्या 1971 से अपरिवर्तित रही, जिसके कारण जनसंख्या वृद्धि और प्रतिनिधित्व के बीच असमानता पैदा हो गई।
- संवैधानिक सीट सीमाएँ: क्योंकि कम सीटें उपलब्ध हैं (लोकसभा के लिए 550 और राज्यसभा के लिए 250), कम प्रतिनिधि प्रभावी रूप से बड़ी आबादी का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं।
- असमान प्रतिनिधित्व: निश्चित सीट आवंटन और जनसंख्या वृद्धि के कारण असमान प्रतिनिधित्व होता है, जिससे बढ़ती आबादी की आवाज और प्रभाव प्रभावित होता है।

भारत के अटॉर्नी जनरल

परिचय

- भारत के अटॉर्नी जनरल (एजीआई) भारत सरकार के सर्वोच्च कानूनी अधिकारी और मुख्य कानूनी सलाहकार हैं।
- भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त अटॉर्नी जनरल कानूनी मामलों में सरकार का प्रतिनिधित्व करता है, कानूनी सलाह देता है, तथा भारत के सर्वोच्च न्यायालय में सरकार का प्रतिनिधित्व करता है।

एजीआई कर्तव्यों के बारे में

- सरकार को सलाह देना: अटॉर्नी जनरल राष्ट्रपति द्वारा उन्हें भेजे गए मामलों पर भारत सरकार को कानूनी सलाह देते हैं। वे विभिन्न कानूनी मुद्दों पर अपनी विशेषज्ञता और मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।
- सौंपे गए कानूनी कर्तव्यों का पालन करना: अटॉर्नी जनरल राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए अन्य कानूनी कर्तव्यों का पालन करता है। ये कर्तव्य अलग-अलग हो सकते हैं और इनमें कानूनी राय देना, कानूनी दस्तावेजों का मसौदा तैयार करना और कानूनी मामलों में सरकार का प्रतिनिधित्व करना शामिल हो सकता है।
- संवैधानिक और कानूनी कार्यों का निर्वहन: अटॉर्नी जनरल संविधान या किसी अन्य कानून द्वारा उन्हें सौंपे गए कार्यों को पूरा करते हैं। इसमें देश के कानूनी ढांचे को बनाए रखना और उसकी सुरक्षा करना शामिल है।
- राष्ट्रपति के संदर्भ में प्रतिनिधित्व: अटॉर्नी जनरल राष्ट्रपति के किसी भी संदर्भ में भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करते हैं।
- संविधान के अनुच्छेद 143 के तहत राष्ट्रपति द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को भेजा गया मामला। यह उन मामलों को संदर्भित करता है जहां राष्ट्रपति कुछ संवैधानिक या कानूनी मामलों पर सर्वोच्च न्यायालय की राय मांगता है।
- सर्वोच्च न्यायालय में प्रतिनिधित्व: ए.जी. सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सभी मामलों में भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करता है।
- न्यायालय जहां सरकार एक पक्ष है। वे सरकार की स्थिति के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करते हैं और वकालत करते हैं।
- उच्च न्यायालयों में प्रतिनिधित्व: जब भारत सरकार द्वारा अपेक्षित हो, तो अटॉर्नी जनरल उन मामलों में सरकार का प्रतिनिधित्व करने के लिए उच्च न्यायालयों में उपस्थित होते हैं जिनमें सरकार शामिल होती है।

सीमाएँ

- भारत सरकार के विरुद्ध कोई सलाह या सूचना न देना।
- उन मामलों में सलाह न देना या संक्षिप्त विवरण न रखना जिनमें उसे सलाह देने या भारत सरकार के लिए उपस्थित होने के लिए कहा गया हो।
- भारत सरकार की अनुमति के बिना आपराधिक अभियोग में अभियुक्त व्यक्तियों का बचाव न करना।
- भारत सरकार की अनुमति के बिना किसी भी कंपनी में निदेशक के रूप में नियुक्ति स्वीकार नहीं करना।
- भारत सरकार के किसी भी मंत्रालय/विभाग/किसी भी वैधानिक संगठन/सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम को तब तक सलाह नहीं दी जाएगी जब तक कि इसके लिए प्रस्ताव या संदर्भ विधि कार्य विभाग के माध्यम से प्राप्त न हो जाए।
- **नोट** : कानूनी कर्तव्य, संवैधानिक और कानूनी कार्यों का निर्वहन, शिकायत निवारण, जागरूकता फैलाना, संवैधानिक सुरक्षा।

राष्ट्रीय एवं राज्य मानवाधिकार आयोग

परिचय

एनएचआरसी एक वैधानिक निकाय है जिसकी स्थापना 1993 में मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के तहत की गई थी। यह देश में मानवाधिकारों का प्रहरी है। इसकी स्थापना मानवाधिकारों के प्रचार और संरक्षण के लिए अपनाए गए पेरिस सिद्धांतों (1991) के अनुरूप की गई थी।

कार्य

- किसी लोक सेवक द्वारा मानव अधिकारों के उल्लंघन/लापरवाही की जांच करना, चाहे वह स्वप्रेरणा से हो या उसके समक्ष प्रस्तुत याचिका पर हो या न्यायालय के आदेश पर हो।
- किसी न्यायालय में लंबित मानवाधिकारों के उल्लंघन के आरोप से संबंधित किसी कार्यवाही में हस्तक्षेप करना
- मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए संवैधानिक और अन्य कानूनी सुरक्षा उपायों की समीक्षा करना तथा उनके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए उपायों की सिफारिश करना।
- मानवाधिकारों पर संधियों और अन्य अंतर्राष्ट्रीय साधनों का अध्ययन करें तथा उनके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए सिफारिशें करें।
- मानव अधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान को बढ़ावा देना और लोगों के बीच मानव अधिकार साक्षरता का प्रसार करना।
- कैदियों की जीवन स्थितियों का अध्ययन करने के लिए जेलों और हिरासत स्थलों का दौरा करें।
- आतंकवादी कृत्य सहित मानव अधिकारों के आनंद में बाधा डालने वाले कारकों की समीक्षा करें तथा उपचारात्मक उपायों की सिफारिश करें।
- मानव अधिकारों के क्षेत्र में काम करने वाले गैर सरकारी संगठनों के प्रयासों को प्रोत्साहित करें।

एनएचआरसी द्वारा निभाई गई भूमिका:

- इसने निम्नलिखित दिशा-निर्देश जारी किए हैं: जेल सुधार, हिरासत में मृत्यु की सूचना 48 घंटे के भीतर देना, तथा मैनुअल स्कैवेंजिंग से निपटने के लिए सार्वजनिक प्राधिकारियों को सिफारिश करना।
- पोटा और टाडा जैसे कानूनों की आलोचना की गई तथा कहा गया कि इनके मानव अधिकारों के उल्लंघन के लिए दुरुपयोग की संभावना है।
- ओडिशा के कालाहांडी में गरीबी और भुखमरी जैसे लोगों के सामाजिक-आर्थिक अधिकारों की रक्षा के लिए शारीरिक मानव अधिकार उल्लंघन से आगे बढ़ना।

चुनौतियां

- जांच तंत्र का अभाव: मानव अधिकार उल्लंघन के मामलों की जांच के लिए यह केंद्र और संबंधित राज्य सरकारों पर निर्भर है।
- गैर-बाध्यकारी आदेश: एनएचआरसी के पास अपने निर्णयों को लागू करने का कोई अधिकार नहीं है। सरकार अक्सर एनएचआरसी की सिफ़ारिशों को सीधे तौर पर खारिज कर देती है।
- बुनियादी ढांचे की कमी: 1995-2005 के बीच मामलों में 1450% की वृद्धि के बावजूद, इसकी संख्या में 16% की कमी आई है। इससे NHRC द्वारा संभाले जाने वाले मामलों की संख्या सीमित हो गई है।
- लंबित मामले और देरी: इस पर मामलों का अत्यधिक बोझ है जिसके कारण इसके पास 10,000 से अधिक मामले लंबित हैं।
- स्टाफ से संबंधित मुद्दे: इसका अधिकतम स्टाफ प्रतिनियुक्ति पर है। कई बार जांच अधिकारी आरोपी सेवा से संबंधित होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप हितों का टकराव होता है।
- संयुक्त राष्ट्र द्वारा मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाओं के वैश्विक गठबंधन (GANHRI) ने निम्नलिखित आपत्तियों का हवाला देते हुए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, भारत (NHRC-भारत) की मान्यता स्थगित कर दी:
    - नियुक्तियों में राजनीतिक हस्तक्षेप।
    - मानव अधिकार उल्लंघन की जांच में पुलिस को शामिल करना।
    - नागरिक समाज के साथ खराब सहयोग।
    - कर्मचारियों और नेतृत्व में विविधता का अभाव।
    - हाशिए पर पड़े समूहों की सुरक्षा के लिए अपर्याप्त कार्रवाई।

मामलों को संभालने की सीमाएँ:

- एनएचआरसी घटना के एक वर्ष बाद दर्ज शिकायतों की जांच नहीं कर सकता।
- सशस्त्र बलों और अर्धसैनिक बलों को इसके दायरे से बाहर रखा गया।
- एनएचआरसी केवल मीडिया रिपोर्टों के आधार पर मामलों को लेता है, न कि अपने फील्ड कार्य के आधार पर।
- वह पर्सनल लॉ को चुनौती नहीं दे सकता: सुप्रीम कोर्ट ने मुस्लिम पर्सनल लॉ मामले में एनएचआरसी, एनसीडब्ल्यू को पक्षकार बनाया।

- सोली सोराबजी की टिप्पणी: "पीड़ित पक्ष को कोई भी व्यावहारिक राहत प्रदान करने में असमर्थता के कारण भारत का चिढ़ाने वाला भ्रम"।
- सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणी: यह एक "दंतविहीन बाघ" है।

मानव अधिकार संरक्षण (संशोधन) अधिनियम, 2019

संघटन:

- सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी अध्यक्ष नियुक्त किया जा सकता है।
- मानवाधिकारों के बारे में जानकारी रखने वाले लोगों की संख्या बढ़ाकर तीन कर दी गई, जिनमें कम से कम एक महिला भी शामिल है।
- एनसीबीसी के अध्यक्ष, राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग, तथा विकलांग व्यक्तियों के लिए मुख्य आयुक्त को पदेन सदस्य के रूप में शामिल किया गया है।
- कार्यकाल: कार्यकाल 5 वर्ष से घटाकर 3 वर्ष किया गया।
- केंद्र शासित प्रदेश: केंद्र सरकार केंद्र शासित प्रदेश के मानवाधिकार मामलों से संबंधित कार्यों को निकटवर्ती एसएचआरसी को सौंप सकती है।

महत्व:

- मानव अधिकारों की प्रभावी सुरक्षा और संवर्धन के लिए पेरिस सिद्धांतों अर्थात स्वायत्तता, स्वतंत्रता और बहुलवाद का प्रभावी अनुपालन।
- नागरिक समाज में प्रतिनिधित्व बढ़ाने में सहायता की गई।
- केंद्र शासित प्रदेशों के नागरिकों के लिए मानवाधिकार न्यायालयों तक पहुंच में वृद्धि।
- आयु सीमा कम करने से रिक्तियों पर समय पर नियुक्ति सुनिश्चित हो सकेगी।

ताज़ा समाचार:

- हाल ही में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एनएचआरसी) ने बालासोर रेल दुर्घटना के संबंध में ओडिशा सरकार से कार्रवाई रिपोर्ट मांगी है।
- GANHRI की मान्यता संबंधी उप-समिति (SCA) NHRC की मान्यता स्थिति का मूल्यांकन कर रही है, जो यह तय करेगी कि संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार निकायों में भागीदारी के लिए इसकी "A स्थिति" बरकरार रहेगी या नहीं।

आगे बढ़ने का रास्ता

- प्रवर्तनीय शक्तियाँ: एनएचआरसी के निर्णयों को प्रवर्तनीय बनाया जाना चाहिए।
- आयोग की संरचना: भूतपूर्व नौकरशाहों के बजाय नागरिक समाज, मानवाधिकार कार्यकर्ताओं आदि को अधिक प्रतिनिधित्व। इससे निकाय का स्वतंत्र कामकाज सुनिश्चित होगा।
- अहमदिया आयोग की सिफारिशें: एनएचआरसी द्वारा मामलों की सुनवाई के लिए एक वर्ष की सीमा हटाई जाए। साथ ही, सशस्त्र बल के कार्यकाल में अर्धसैनिक बल शामिल नहीं होंगे।
- स्वतंत्र कर्मचारी: और मामलों का समय पर निपटान सुनिश्चित करने के लिए समर्पित जांच दल।
- समन्वय तंत्र: एनएचआरसी और एसएचआरसी के बीच समन्वय तंत्र स्थापित करने की आवश्यकता है।
- एनएचआरसी की भूमिका में विविधता लाना: एलजीबीटी के अधिकार, उद्योग और मानव अधिकार, मानव अधिकारों पर पर्यावरणीय प्रभाव आदि जैसी नई उभरती चिंताओं के प्रति।

निष्कर्ष

- एनएचआरसी ने अपनी स्थापना के बाद से ही कई मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 15 लाख से अधिक मामलों का निपटारा और पीड़ितों को मुआवजे के रूप में 100 करोड़ से अधिक की राशि प्रदान करना इसकी सफलता को दर्शाता है।
- कमजोर वर्गों के खिलाफ बढ़ते मामलों को देखते हुए यह समय सभी क्षेत्रों में आयोग को मजबूत बनाने का है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि भारतीय संविधान में निहित मौलिक अधिकारों का सभी को लाभ मिले।

केंद्रीय एवं राज्य सूचना आयोग

परिचय

सीआईसी एक उच्चस्तरीय स्वतंत्र एवं वैधानिक निकाय है, जो केन्द्र सरकार और संघ शासित प्रदेशों के कार्यालयों, वित्तीय संस्थानों, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों आदि के बारे में की गई शिकायतों की जांच करता है।

कार्य

- सूचना अधिकारियों के विरुद्ध शिकायतों की जांच और अनुशासनात्मक कार्रवाई:
- लोक सूचना अधिकारी की नियुक्ति न होने के कारण सूचना अनुरोध प्रस्तुत करने में असमर्थ
- निर्दिष्ट समय सीमा के भीतर सूचना अनुरोध का उत्तर न मिलने पर अनुरोधित सूचना अस्वीकृत कर दी गई।
- ऐसा महसूस होता है कि दी गई जानकारी अधूरी, भ्रामक या झूठी है।
- स्वप्रेरणा शक्ति: यदि उचित आधार हों तो यह किसी भी मामले में जांच का आदेश दे सकता है
- पूछताछ करते समय सिविल न्यायालय की शक्तियाँ.
- किसी भी रिकॉर्ड की जांच करें: जांच के दौरान सभी सार्वजनिक रिकॉर्ड को जांच के लिए सीआईसी को सौंप दिया जाना चाहिए।
- सार्वजनिक प्राधिकरण से अपने निर्णयों का अनुपालन सुनिश्चित करना।
- सुशासन को बढ़ावा देना: सीआईसी शासन में नागरिक भागीदारी को बढ़ावा देता है तथा शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ावा देता है।

चुनौतियां

- निश्चित कार्यकाल की बाध्यता को समाप्त करना: पहले के 5 वर्षों के स्थान पर अब सीआईसी, आईसी और एसआईसी का कार्यकाल केंद्र सरकार द्वारा तय किया जाएगा।
- मुख्य चुनाव आयुक्त (सीआईसी के मामले में) और चुनाव आयुक्त (आईसी के मामले में) के साथ समानता की पूर्व स्थिति के स्थान पर केंद्र सरकार द्वारा वेतन का निर्धारण।
- विलंबित नियुक्तियां: आरटीआई के अनुसार, 2014 से सीआईसी 400 दिनों से अधिक समय तक मुख्य सूचना आयुक्त के बिना काम कर रहा था और 4 वर्षों से अधिक समय से पूरी क्षमता के साथ काम नहीं कर रहा है।
- लंबित मामले: सतर्क नागरिक संगठन की रिपोर्ट के अनुसार देश भर में 27 सूचना आयोगों के समक्ष 3.2 लाख से अधिक याचिकाएं लंबित हैं।
- विलंबित मामला निपटान: सतर्क की रिपोर्ट के अनुसार
- नागरिक संगठन (सीआईसी) को किसी मामले को आयोग के समक्ष दायर किये जाने की तिथि से निपटाने में औसतन 388 दिन लगते हैं।
- खराब निर्णय: केवल 2.2% मामलों में ही सरकारी अधिकारियों को कानून का उल्लंघन करने के लिए सजा का सामना करना पड़ता है, जबकि विभिन्न विश्लेषणों से पता चलता है कि उल्लंघन की दर लगभग 59% है।

सतर्क नागरिक संगठन की रिपोर्ट में उजागर किये गये मुद्दे:

- कोविड-19 महामारी के दौरान गायब: अध्ययन किए गए कुल 29 आईसी में से 21 ने कोई सुनवाई नहीं की
- केंद्रीय या राज्य स्तर पर आरटीआई आवेदकों का केंद्रीकृत डाटाबेस न होने के कारण वार्षिक आरटीआई रिपोर्ट और विश्लेषण गलत हो जाते हैं।
- पर्याप्त प्राधिकार नहीं: अधिनियम ने I.C. को अपने निर्णयों को लागू करने के लिए पर्याप्त प्राधिकार नहीं दिया।
- अपर्याप्त प्रशिक्षित पीआईओ और प्रथम अपीलीय प्राधिकारी: इसके परिणामस्वरूप 30 दिनों की समय-सीमा टूट जाती है
- सूचना प्रदान करने में कठिनाई हो रही है, क्योंकि उचित प्रशिक्षण के अभाव में पीआईओ समयबद्ध तरीके से सूचना प्रदान करने में सक्षम नहीं हैं।
- कोई दंड नहीं: सरकारी अधिकारियों को अपने कर्तव्य का पालन न करने या अनुचित आचरण के लिए किसी दंड का सामना नहीं करना पड़ता।

निष्कर्ष

- आरटीआई को भारत के लोकतांत्रिक इतिहास में ऐतिहासिक कानून कहा गया है। आरटीआई को और मजबूत बनाने के लिए हमें मजबूत सीआईसी और एसआईसी की जरूरत है। इसलिए सरकार के कामकाज में पारदर्शिता और खुलापन सुनिश्चित करने के लिए सभी सुधार किए जाने चाहिए।
- **टिप्पणियाँ** : अपर्याप्त प्रशिक्षित, सुशासन, स्वप्रेरणा शक्ति, नौकरशाहीकरण, लंबितता।

केंद्रीय सतर्कता आयोग (सीवीसी)

केंद्रीय सतर्कता आयोग (CVC) भारत में एक शीर्ष सरकारी निकाय है जो भ्रष्टाचार से संबंधित मुद्दों को संबोधित करने और सार्वजनिक प्रशासन में पारदर्शिता और अखंडता को बढ़ावा देने के लिए जिम्मेदार है। CVC की स्थापना 1964 में संथानम समिति की सिफारिश पर एक कार्यकारी प्रस्ताव द्वारा की गई थी। 2003 में, संसद ने CVC को एक वैधानिक दर्जा दिया। यह केंद्र सरकार में भ्रष्टाचार को रोकने के लिए मुख्य एजेंसी है।

सीवीसी की स्वतंत्रता

- नियुक्ति: तीन सदस्यीय समिति (प्रधानमंत्री+गृह मंत्री+लोकसभा में विपक्ष के नेता) की सिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा।
- हटाया जाना: राष्ट्रपति द्वारा केवल कानून में उल्लिखित आधार पर।
- संरचना: केंद्रीय सतर्कता आयुक्त + अधिकतम दो सतर्कता आयुक्त।
- निश्चित कार्यकाल: 4 वर्ष/65 वर्ष जो भी पहले हो तथा केन्द्र या राज्य सरकार के अधीन किसी अन्य रोजगार के लिए अपात्र।
- निश्चित वेतन, भत्ते और सेवा शर्तें: यह यूपीएससी के अध्यक्ष (मुख्य सतर्कता आयुक्त के मामले में) के समान है और यूपीएससी के सदस्य (सतर्कता आयुक्त के मामले में) के समान है।
- स्वतंत्र कर्मचारी: सीवीसी का अपना सचिवालय, मुख्य तकनीकी परीक्षक विंग और विभागीय जांच आयुक्तों का एक विंग है।

कार्य

- भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (पीओसीए) के तहत अपराध के लिए केंद्र सरकार के कथित कर्मचारी के खिलाफ पूछताछ या जांच।
- सीबीआई के कामकाज का अधीक्षण करना तथा पी.ओ.सी.ए. के अंतर्गत अपराधों की जांच से संबंधित सीबीआई को निर्देश देना।
- केन्द्रीय सरकार के मंत्रालयों में सतर्कता प्रशासन का अधीक्षण।
- समूह ए, बी, सी और डी के अधिकारियों के संबंध में लोकपाल द्वारा भेजी गई शिकायतों की प्रारंभिक जांच करना।
- सक्षम प्राधिकारी के रूप में कार्य करना: भ्रष्टाचार पर सार्वजनिक हित प्रकटीकरण करने के लिए व्हिसलब्लोअर संरक्षण अधिनियम, 2014 के तहत सक्षम प्राधिकारी।
- नागरिकों को संवेदनशील बनाना: सतर्कता सप्ताह और सत्यनिष्ठा शपथ जैसे कदम भ्रष्टाचार के दुष्प्रभावों के बारे में जागरूकता पैदा करने में मदद करते हैं।

चुनौतियां

- कार्यपालिका पर निर्भरता: मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति अप्रत्यक्ष रूप से कार्यपालिका के अधीन ही होती है, जिससे इसके स्वतंत्र कामकाज में बाधा उत्पन्न होती है।
- मंत्रालयों और सरकारी संगठनों के लिए सलाहकारी और गैर-बाध्यकारी सिफारिशें।
- मामले के निपटारे में देरी: मामले के निपटारे में भारी देरी हो रही है।
- सीवीसी द्वारा संभाले जाने वाले मामले, इसलिए यह एक प्रभावी निवारक के रूप में कार्य नहीं करता है।
- प्रयासों का दोहराव: सीबीआई, सीवीसी और लोकपाल के अधिकार क्षेत्र में अतिव्यापन के कारण।
- सीवीसी पर सीमाएं: उपरोक्त संयुक्त सचिव स्तर के अधिकारियों के लिए मंत्रालयों की पूर्व सहमति की आवश्यकता, तथा निजी व्यक्तियों को छूट, भ्रष्टाचार की चुनौती से समग्र रूप से निपटने में इसकी भूमिका को सीमित करती है।
- लंबित मामले: धन और मानव संसाधनों की कमी के कारण लंबित मामलों की संख्या बहुत अधिक है।

आगे बढ़ने का रास्ता

- आयोग की स्वतंत्रता सुनिश्चित करें।
- सीवीसी और वीसीएस की समय पर नियुक्ति तथा आयोग की संरचना में विविधता सुनिश्चित करना।
- पर्याप्त वित्तपोषण: कुशल कार्यप्रणाली के लिए आधुनिक बुनियादी ढांचे को सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त वित्तपोषण उपलब्ध होगा।
- एआई, बिग डेटा जैसी आधुनिक तकनीक को अपनाना और कामकाज का डिजिटलीकरण करना।
- भूमिका स्पष्टता सुनिश्चित करके लोकपाल और सीबीआई जैसी विभिन्न एजेंसियों के अधिकार क्षेत्र के ओवरलैपिंग से बचें।

निष्कर्ष

- भ्रष्टाचार समावेशी विकास के लिए सबसे बड़ा खतरा है, इसलिए सीवीसी, सीबीआई और लोकपाल जैसी संस्थाओं को मजबूत बनाने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि पीओसीए का सही मायने में क्रियान्वयन हो।
- इन निकायों को संवैधानिक दर्जा दिए जाने का अर्थ है कि देश की लोकतांत्रिक स्थिति में उनकी भूमिका और जिम्मेदारी अधिक बड़ी है, तथा संवैधानिक संरक्षण यह सुनिश्चित करता है कि वे सरकार की दया पर निर्भर न हों।
- **टिप्पणियाँ:** स्वतंत्रता, पर्याप्त वित्तपोषण, अतिव्यापी अधिकार क्षेत्र, नागरिकों का संवेदीकरण।

संघ कार्यकारिणी एवं राज्य कार्यकारिणी

परिचय

- सरकार का वह अंग जो मुख्य रूप से कार्यान्वयन और प्रशासन के कार्य को देखता है, उसे कार्यपालिका कहा जाता है। जबकि सरकार के प्रमुख और उनके मंत्री, जो सरकारी नीति की समग्र जिम्मेदारी से जुड़े होते हैं, उन्हें सामूहिक रूप से राजनीतिक कार्यपालिका के रूप में जाना जाता है, दिन-प्रतिदिन के प्रशासन के लिए जिम्मेदार लोगों को स्थायी कार्यपालिका कहा जाता है।
- संघ कार्यकारिणी और राज्य कार्यकारिणी की तुलना:

संघ कार्यकारिणी

- संविधान के भाग-V में अनुच्छेद 52 से 78 संघीय कार्यपालिका से संबंधित हैं।
- संघीय कार्यपालिका में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधान मंत्री, मंत्रिपरिषद और भारत के अटॉर्नी जनरल शामिल होते हैं।
- राष्ट्रपति नाममात्र का कार्यकारी प्रमुख होता है जबकि प्रधानमंत्री वास्तविक कार्यकारी प्रमुख होता है।
- संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है और संविधान के अनुसार वह इसका प्रयोग सीधे या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से करता है (अनुच्छेद 53)।
- राष्ट्रपति को प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह के अनुसार कार्य करना होता है (अनुच्छेद 74)।

राज्य कार्यकारिणी

- संविधान के भाग VI में अनुच्छेद 153 से 167 राज्य कार्यपालिका से संबंधित हैं।
- राज्य कार्यपालिका में राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मंत्रिपरिषद और राज्य के महाधिवक्ता शामिल होते हैं।
- राज्यपाल राज्य का मुख्य कार्यकारी प्रमुख होता है। लेकिन, राष्ट्रपति की तरह, वह नाममात्र का कार्यकारी प्रमुख (नाममात्र या संवैधानिक प्रमुख) होता है। मुख्यमंत्री वास्तविक कार्यकारी प्रमुख होता है।
- राज्य की कार्यकारी शक्ति राज्यपाल में निहित है, और इसका प्रयोग वह स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से इस संविधान के अनुसार करता है (अनुच्छेद 154)।
- राज्यपाल को अपने विवेकाधीन कार्यों को छोड़कर, मुख्यमंत्री की अध्यक्षता वाली मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह के अनुसार कार्य करना होता है (अनुच्छेद 163)।

भारत के राष्ट्रपति

- राष्ट्रपति भारतीय राज्य का मुखिया होता है। वह भारत का प्रथम नागरिक होता है और राष्ट्र की एकजुटता, एकता और अखंडता का प्रतीक होता है।

महाभियोग

- महाभियोग का कारण: राष्ट्रपति को 'संविधान के उल्लंघन' के लिए हटाया जा सकता है।
- महाभियोग प्रस्ताव: इसे संसद के किसी भी सदन द्वारा शुरू किया जा सकता है। इन आरोपों पर सदन (जिसने आरोप तय किए हैं) के एक-चौथाई सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर किए जाने चाहिए, और राष्ट्रपति को 14 दिनों का नोटिस दिया जाना चाहिए।
- प्रथम सदन (जहां प्रक्रिया आरंभ की गई है) में कुल सदस्यता के 2/3 बहुमत से: उस सदन की कुल

सदस्यता के दो-तिहाई बहुमत से महाभियोग प्रस्ताव पारित होने के बाद, इसे दूसरे सदन में भेजा जाता है, जिसे आरोपों की जांच करनी चाहिए।

- दूसरे सदन में कुल सदस्यता का 2/3 बहुमत: यदि दूसरा सदन भी आरोपों को सही मानता है तथा अपने दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से इसके पक्ष में मतदान करता है, तो महाभियोग प्रस्ताव पारित होने की तिथि से ही राष्ट्रपति को पद से हटा दिया जाता है।

महाभियोग से संबंधित मुद्दे

- 'संविधान का उल्लंघन' शब्द बहुत अस्पष्ट है और संविधान में कहीं भी इसकी परिभाषा नहीं दी गई है।
- विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों की महाभियोग कार्यवाही में कोई भूमिका नहीं होती, जबकि राष्ट्रपति के चुनाव में उनकी भूमिका होती है।
- संसद के मनोनीत सदस्यों को महाभियोग के मामले में वोट देने का अधिकार है, जबकि राष्ट्रपति के चुनाव में उन्हें वोट देने का अधिकार नहीं है।
- राष्ट्रपति के विरुद्ध आरोपों की जांच करने की प्रक्रिया एवं प्राधिकार निर्दिष्ट नहीं किया गया है, न ही कोई निश्चित समयावधि निर्दिष्ट की गई है।

संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत में महाभियोग प्रक्रिया की तुलनात्मक सारणी

पैरामीटर	संयुक्त राज्य अमेरिका	भारत
आधार	देशद्रोह, रिश्वतखोरी या अन्य उच्च अपराध एवं कदाचार (high crimes and misdemeanors)।	संविधान का उल्लंघन।
मतदान	प्रतिनिधि सभा में साधारण बहुमत; सीनेट में विशेष बहुमत आवश्यक।	प्रत्येक सदन की कुल सदस्यता का दो-तिहाई बहुमत आवश्यक।
शामिल सदन	प्रतिनिधि सभा एवं सीनेट।	लोक सभा एवं राज्य सभा।
आरंभ	प्रतिनिधि सभा का कोई भी सदस्य महाभियोग प्रस्ताव पेश कर सकता है।	महाभियोग आरोप संसद के किसी भी सदन द्वारा प्रारंभ किए जा सकते हैं।
उदाहरण	एंड्रयू जॉनसन (1868), बिल क्लिंटन (1998) एवं डोनाल्ड ट्रम्प (2019) को प्रतिनिधि सभा ने महाभियोगित किया; सीनेट ने बरी किया।	भारत में अभी तक महाभियोग नहीं हुआ।

राष्ट्रपति कार्यालय की आलोचना

- राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह से बाध्य है।
- संविधान के अनुच्छेद 352, 356 और 360 राष्ट्रपति को आपातकाल घोषित करने की शक्ति प्रदान करते हैं, और आपातकाल घोषित करने या लागू करने की यह तथाकथित शक्ति व्यापक रूप से दुरुपयोग या उल्लंघन किए जाने वाले प्रावधानों में से एक है।
- अध्यादेश प्रख्यापित करने की शक्ति का दुरुपयोग:

- अध्यादेश का एक बड़ा मुद्दा यह है कि राष्ट्रपति आम तौर पर विधायी विवेक का प्रयोग नहीं करते हैं, राष्ट्रपति केवल उन्हें लागू करते हैं, वास्तव में यह परिषद के मंत्री ही तय करते हैं कि अध्यादेश आवश्यक है या नहीं। मंत्रियों के इस प्रभाव के कारण कई बार मनमानी हो सकती है।
- संविधान के अनुच्छेदों में किसी समयावधि में राष्ट्रपति द्वारा पारित किए जा सकने वाले अध्यादेशों की कोई अधिकतम सीमा निर्दिष्ट नहीं की गई है। इस विशिष्टता की कमी के कारण राष्ट्रपति संसद के सत्र में न होने और तत्काल कार्रवाई की आवश्यकता पूरी होने की स्थिति में अपनी इच्छानुसार कई अध्यादेश पारित कर सकते हैं।
- अध्यादेशों का मुख्य मुद्दा या समस्या अध्यादेशों के पुनः प्रवर्तन से संबंधित है, यह प्रश्न कि उन्हें वैधानिक होना चाहिए या असंवैधानिक, एक बहस है जो काफी समय से चल रही है।
- कृष्ण कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य (2017) - इस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि एक कानून का पुनः प्रचार
- अध्यादेश संविधान के साथ धोखाधड़ी है और यह भी फैसला सुनाया कि अध्यादेश जारी करते समय राष्ट्रपति और राज्यपाल की संतुष्टि न्यायिक समीक्षा के अधीन है।
- आर.सी. कूपर केस, 1970: आर.सी. कूपर बनाम भारत संघ (1970) में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि अध्यादेश जारी करने के राष्ट्रपति के निर्णय को इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि 'तत्काल कार्रवाई' की आवश्यकता नहीं थी, तथा अध्यादेश मुख्य रूप से विधायिका में बहस और चर्चा को दरकिनार करने के लिए जारी किया गया था।
- डीसी वाधवा बनाम बिहार राज्य (1987): न्यायालय ने माना था कि समान पाठ वाले अध्यादेशों को बार-बार पुनः जारी करना तथा विधेयक पारित करने का प्रयास किए बिना, भारत के संविधान का उल्लंघन होगा।

भारत के उपराष्ट्रपति

- उपराष्ट्रपति देश का दूसरा सबसे बड़ा पद है। यह पद अमेरिकी उपराष्ट्रपति की तर्ज पर बनाया गया है।

संवैधानिक प्रावधान

- अनुच्छेद 63 - भारत का उपराष्ट्रपति: भारत का एक उपराष्ट्रपति होगा।
- अनुच्छेद 64- उपराष्ट्रपति का राज्य सभा का पदेन सभापति होना: उपराष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन सभापति होगा।
- वह राज्य सभा का अध्यक्ष होगा तथा अन्य कोई लाभ का पद धारण नहीं करेगा।

उपराष्ट्रपति की शक्तियां एवं कार्य

राज्य सभा के पदेन सभापति: वह राज्य सभा के पदेन सभापति के रूप में कार्य करते हैं। सभापति के रूप में उनकी भूमिकाएँ इस प्रकार हैं:

- सदन के पीठासीन अधिकारी के रूप में: पीठासीन अधिकारी के रूप में, राज्य सभा का सभापति सदन की प्रतिष्ठा और गरिमा का निर्विवाद संरक्षक है।
- वह सुनिश्चित करता है कि सदन की कार्यवाही प्रासंगिक संवैधानिक प्रावधानों, नियमों, प्रथाओं और परंपराओं के अनुसार संचालित हो और सदन में शिष्टाचार बनाए रखा जाए। सदन के प्रधान प्रवक्ता के रूप में: अध्यक्ष सदन का प्रधान प्रवक्ता भी होता है

और बाहरी दुनिया के समक्ष सदन की सामूहिक आवाज़ का प्रतिनिधित्व करता है।

- अध्यक्ष द्वारा मतदान: संविधान के तहत, अध्यक्ष केवल मतों की बराबरी की स्थिति में ही मतदान का प्रयोग करता है।
- भारत के संविधान द्वारा निर्धारित सभापति की शक्तियां और कर्तव्य: उन्हें सदन को स्थगित करने या गणपूर्ति के अभाव की स्थिति में इसकी बैठक को निलंबित करने का अधिकार है।
- सदन के विचार-विमर्श में भूमिका: सभापति, पीठासीन अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्यों के निर्वहन के अलावा सदन के विचार-विमर्श में भाग नहीं लेता है।
- तथापि, उठाए गए किसी विधि-प्रश्न पर या स्वयं वह किसी भी समय विचाराधीन विषय पर सदन को संबोधित कर सकते हैं, ताकि सदस्यों को विचार-विमर्श में सहायता मिल सके।
- राज्य सभा के प्रक्रिया नियमों के अंतर्गत सभापति को प्रदत्त शक्तियां:
- राज्य सभा के प्रक्रिया नियमों के अंतर्गत सभापति को सदन की कार्यवाही, समितियों तथा अन्य मामलों जैसे प्रश्न, ध्यानाकर्षण, प्रस्ताव, संकल्प, विधेयकों में संशोधन, विधेयकों, याचिकाओं, सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्रों का प्रमाणीकरण, व्यक्तिगत स्पष्टीकरण आदि के संबंध में विभिन्न शक्तियां प्रदान की गई हैं।

<u>संविधान और नियमों की व्याख्या करने का अध्यक्ष का अधिकार:</u>

- जहां तक सदन के विषयों या उससे संबंधित मामलों का संबंध है, संविधान और नियमों की व्याख्या करना सभापति का अधिकार है और कोई भी व्यक्ति ऐसी व्याख्या के संबंध में सभापति के साथ किसी प्रकार का वाद-विवाद या विवाद नहीं कर सकता।
- सदन में व्यवस्था बनाए रखना: सदन में व्यवस्था बनाए रखना सभापति का मौलिक कर्तव्य है और इस प्रयोजन के लिए नियमों के अंतर्गत उन्हें सभी आवश्यक अनुशासनात्मक शक्तियां प्रदान की गई हैं।
- सभापति द्वारा उल्लेख: यह प्रथा है कि सभापति संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की वर्षगांठ, शहीद दिवस, भारत छोड़ो दिवस, हिरोशिमा, नागासाकी पर बमबारी की वर्षगांठ आदि जैसे गंभीर अवसरों पर सदन में उचित उल्लेख करते हैं।
- राज्य सभा में पारित विधेयकों से संबंधित शक्तियां: नियमों के तहत सभापति को सदन द्वारा विधेयक पारित किए जाने के बाद उसमें स्पष्ट त्रुटियों को सुधारने तथा सदन द्वारा स्वीकार किए गए संशोधनों के परिणामस्वरूप विधेयक में अन्य परिवर्तन करने का अधिकार है।
- राज्य सभा सचिवालय और राज्य सभा परिसर से संबंधित शक्तियाँ: राज्य सभा सचिवालय सभापति के नियंत्रण और निर्देशन में कार्य करता है। प्रेस गैलरी सहित विभिन्न दीर्घाओं में प्रवेश, सभापति के निर्देशन में विनियमित किया जाता है।
- अध्यक्ष को सौंपे गए कर्तव्य: कुछ क़ानून अध्यक्ष को कर्तव्य भी सौंपते हैं। उदाहरण के लिए, संसद सदस्यों के वेतन, भत्ते और पेंशन अधिनियम, 1954 के तहत बनाए गए नियम तब तक प्रभावी नहीं होते जब तक कि उन्हें अध्यक्ष और स्पीकर द्वारा अनुमोदित और पुष्टि नहीं कर दी जाती।

- कार्यवाहक राष्ट्रपति: वह राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है जब राष्ट्रपति के त्यागपत्र, पद से हटाए जाने, मृत्यु या अन्य किसी कारण से उसका पद रिक्त हो जाता है।
- वह अधिकतम छह महीने तक ही राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर सकते हैं, जिसके भीतर नए राष्ट्रपति का चुनाव किया जाना आवश्यक है।
- इस अवधि के दौरान, उपराष्ट्रपति को राष्ट्रपति की सभी शक्तियां, उन्मुक्तियां और विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं तथा वह राष्ट्रपति को देय परिलब्धियां और भत्ते प्राप्त करता है।

राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनाव की तुलना:

राष्ट्रपति का चुनाव

निर्वाचक मंडल में केवल लोकसभा + राज्यसभा + राज्य विधानसभाओं + केंद्र शासित प्रदेशों की विधानसभाओं (केवल दिल्ली और पुडुचेरी) के निर्वाचित सदस्य शामिल होते हैं।

राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य इसमें शामिल हैं

उपराष्ट्रपति का चुनाव

निर्वाचक मंडल में केवल लोक सभा और राज्य सभा से निर्वाचित और मनोनीत दोनों सदस्य शामिल होते हैं।

राज्य विधान सभा के सदस्यों को इसमें शामिल न करें।

राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का कार्यकाल, योग्यता और हटाया जाना

पैरामीटर	राष्ट्रपति	उपराष्ट्रपति
योग्यता	• भारत का नागरिक • न्यूनतम आयु 35 वर्ष पूरी की हो • लोक सभा के सदस्य के रूप में चुनाव हेतु योग्य होना चाहिए	• भारत का नागरिक • न्यूनतम आयु 35 वर्ष पूरी की हो • राज्य सभा के सदस्य के रूप में चुनाव हेतु योग्य होना चाहिए
पद की शर्तें	• संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं हो सकता • किसी भी सरकारी लाभकारी पद (office of profit) पर तैनात नहीं हो सकता	• संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं हो सकता • किसी भी सरकारी लाभकारी पद (office of profit) पर तैनात नहीं हो सकता
कार्यकाल	5 वर्ष	5 वर्ष
त्यागपत्र	उपराष्ट्रपति को	राष्ट्रपति को
हटाने की प्रक्रिया	संविधान का उल्लंघन करने पर महाभियोग (Impeachment) की प्रक्रिया	राज्य सभा में प्रभावी बहुमत एवं लोक सभा में साधारण बहुमत से पारित प्रस्ताव द्वारा हटाया

	द्वारा	जा सकता है
पुनर्निर्वाचन	पुनर्निर्वाचन हेतु योग्य	पुनर्निर्वाचन हेतु योग्य

राज्य के राज्यपाल

राज्य का मुखिया राज्यपाल होता है और राज्य की कार्यकारी शक्तियाँ उसमें निहित होती हैं।

उनकी नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, जो राष्ट्रपति की इच्छा पर्यन्त पद पर बने रहते हैं।

नियुक्ति (अनुच्छेद 155): राष्ट्रपति द्वारा अपने हस्ताक्षर और मुहर सहित वारंट द्वारा उसकी नियुक्ति की जाती है। एक तरह से वह केंद्र सरकार का नामित व्यक्ति होता है।

राज्यपाल का कार्यकाल (अनुच्छेद 156)

राज्यपाल पांच वर्ष की अवधि के लिए पद पर रहता है; हालाँकि, पांच वर्ष की यह अवधि राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर है।

वह किसी भी समय राष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर इस्तीफा दे सकते हैं।

सुप्रीम कोर्ट के अनुसार, राष्ट्रपति की इच्छा वैध नहीं है। राज्यपाल के लिए कोई कार्यकाल सीमा और कोई कार्यकाल सुरक्षा नहीं है।

संविधान में ऐसा कोई आधार नहीं बताया गया है जिसके आधार पर राष्ट्रपति राज्यपाल को हटा सके।

योग्यता (अनुच्छेद 157)]

- संविधान में प्रावधान है: वह भारत का नागरिक होना चाहिए तथा उसकी आयु 35 वर्ष पूरी हो चुकी होनी चाहिए।
- राज्यपाल की नियुक्ति के संबंध में दो परंपराएं विकसित हुईं:
- वह बाहरी व्यक्ति होना चाहिए, अर्थात वह उस राज्य का नहीं होना चाहिए जहां उसकी नियुक्ति की गई है, ताकि वह स्थानीय राजनीति से तटस्थ रहे।
- राज्य की संवैधानिक मशीनरी के कुशल संचालन को सुनिश्चित करने के लिए, राष्ट्रपति को राज्यपाल चुनने से पहले प्रभावित राज्य के मुख्यमंत्री से परामर्श करना अनिवार्य है।
- अन्य शर्तें (राष्ट्रपति के समान):
- वह संसद के किसी भी सदन या राज्य विधानमंडल के किसी भी सदन का सदस्य नहीं होना चाहिए।
- उसे सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर नहीं होना चाहिए।

मनोनीत बनाम निर्वाचित राज्यपाल

<u>मनोनीत राज्यपाल के पक्ष में तर्क</u>

- राज्यपाल का प्रत्यक्ष चुनाव राज्यों में स्थापित संसदीय प्रणाली के साथ असंगत है।
- प्रत्यक्ष चुनाव पद्धति से राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच टकराव उत्पन्न होने की अधिक संभावना है।
- राज्यपाल केवल एक संवैधानिक (नाममात्र) प्रमुख है, इसलिए उसके चुनाव के लिए व्यापक व्यवस्था करने और भारी मात्रा में धन खर्च करने का कोई मतलब नहीं है।

- एक निर्वाचित राज्यपाल स्वाभाविक रूप से किसी पार्टी से संबंधित होगा तथा वह तटस्थ व्यक्ति और निष्पक्ष प्रमुख नहीं होगा।
- राष्ट्रपति के नामांकन की प्रणाली केंद्र को राज्यों पर अपना नियंत्रण बनाए रखने में सक्षम बनाती है।
- मुख्यमंत्री चाहते हैं कि उनका उम्मीदवार राज्यपाल पद के लिए चुनाव लड़े। इसलिए सत्तारूढ़ पार्टी का एक दोयम दर्जे का व्यक्ति राज्यपाल चुना जाता है।

<u>निर्वाचित गवर्नर के पक्ष में तर्क</u>

- बाहरी व्यक्ति होने के कारण उन्हें राज्य की संस्कृति, भाषा और विकास संबंधी जरूरतों के बारे में जानकारी नहीं होगी।
- मनोनीत राज्यपालों के मामले में भी टकराव की समान संभावना है।
- मनोनीत राज्यपाल संघवाद की सच्ची भावना का उल्लंघन करते हैं।
- बड़े पैमाने पर निष्कासन से बचा जा सकता है।
- नियुक्त राज्यपाल केंद्र के निर्देश पर राज्य सरकारों को अस्थिर करने का प्रयास कर सकते हैं।
- राजभवन एक पुनर्वास केंद्र बन गया है और अक्सर राजनीतिक आवास के लिए उपयोग किया जाता है।

राष्ट्रपति एवं राज्यपाल की शक्तियां

कार्यकारी शक्तियां:

राष्ट्रपति

- भारत सरकार की सभी कार्यकारी कार्रवाइयाँ औपचारिक रूप से उनके नाम पर की जाती हैं।
- वह प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। वे उसकी इच्छा के अनुसार पद पर बने रहते हैं।
- वह भारत के अटॉर्नी जनरल की नियुक्ति करता है और उसका पारिश्रमिक निर्धारित करता है। अटॉर्नी जनरल राष्ट्रपति की इच्छा पर्यन्त पद पर बना रहता है।
- वह CAG, मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्तों, UPSC के अध्यक्ष और सदस्यों, राज्यों के राज्यपालों, वित्त आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों आदि की नियुक्ति करता है।
- वह अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों की स्थिति की जांच के लिए एक आयोग नियुक्त कर सकते हैं।
- वह केंद्र-राज्य और अंतरराज्यीय सहयोग को बढ़ावा देने के लिए एक अंतर-राज्य परिषद की नियुक्ति कर सकता है। वह अपने द्वारा नियुक्त प्रशासकों के माध्यम से सीधे केंद्र शासित प्रदेशों का प्रशासन करता है
- उसके पास किसी भी स्थान को अनुसूचित क्षेत्र के रूप में नामित करने तथा अनुसूचित और जनजातीय दोनों क्षेत्रों के प्रशासन की देखरेख करने का अधिकार है।

<u>राज्यपाल</u>

- किसी राज्य की सरकार की सभी कार्यकारी कार्रवाइयां औपचारिक रूप से उसके नाम पर की जाती हैं

- वह मुख्यमंत्री और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। वे भी उसकी इच्छा के अनुसार पद पर बने रहते हैं। वह छत्तीसगढ़, झारखंड, मध्य प्रदेश और ओडिशा राज्यों में आदिवासी कल्याण मंत्रियों की नियुक्ति भी करता है।
- वह राज्य के महाधिवक्ता की नियुक्ति करता है तथा उसका पारिश्रमिक निर्धारित करता है। महाधिवक्ता राज्यपाल की इच्छा पर्यन्त पद धारण करता है
- वह राज्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति करता है और उसकी सेवा की शर्तें तथा कार्यकाल निर्धारित करता है। वह राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति करता है।
- वह किसी राज्य में संवैधानिक आपातकाल लगाने की सिफारिश राष्ट्रपति से कर सकता है।
- वह राज्य के विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति के रूप में कार्य करते हैं। वह राज्य के विश्वविद्यालयों के कुलपतियों की नियुक्ति भी करते हैं।
- पांचवीं अनुसूची के अंतर्गत अनुसूचित क्षेत्र में जनजातीय आबादी के संबंध में राज्य के राज्यपाल की विशेष जिम्मेदारियां होती हैं।

विधायी शक्तियां:

राष्ट्रपति

- वह संसद की बैठक बुला सकता है या स्थगित कर सकता है और लोकसभा को भंग कर सकता है। वह संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक भी बुला सकता है।
- वह प्रत्येक आम चुनाव के बाद प्रथम सत्र के आरंभ में तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र में संसद को संबोधित कर सकते हैं।
- वह साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवा में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव रखने वाले व्यक्तियों में से राज्य सभा के लिए 12 सदस्यों को मनोनीत करता है।
- वह एंग्लो-इंडियन समुदाय से लोक सभा में दो सदस्यों को मनोनीत कर सकता है (कृपया तालिका के नीचे दी गई टिप्पणी देखें)।
- वह चुनाव आयोग के परामर्श से संसद सदस्यों की अयोग्यता से संबंधित प्रश्नों पर निर्णय लेता है।
- संसद में कुछ प्रकार के विधेयक पेश करने के लिए उनकी पूर्व सिफारिश या अनुमति आवश्यक होती है।
- वह अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, लक्षद्वीप, दादरा और नगर हवेली तथा दमन और दीव की शांति, प्रगति और अच्छी सरकार के लिए नियम बना सकते हैं।
- राज्य और केंद्रीय विधानों के संबंध में वीटो शक्तियां।
- वह नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, संघ लोक सेवा आयोग, वित्त आयोग तथा अन्य की रिपोर्टें संसद के समक्ष रखता है

राज्यपाल

- वह राज्य विधानमंडल को बुला सकता है या स्थगित कर सकता है तथा राज्य विधान सभा को भंग कर सकता है।

- वह प्रत्येक आम चुनाव के बाद प्रथम सत्र के आरंभ में तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र में राज्य विधानमंडल को संबोधित कर सकते हैं।
- वह राज्य विधान परिषद के सदस्यों का छठा भाग साहित्य, विज्ञान, कला, सहकारी आंदोलन और सामाजिक सेवा में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव रखने वाले व्यक्तियों में से मनोनीत करता है।
- वह राज्य विधान सभा के लिए एक एंग्लो-इंडियन उम्मीदवार को नामांकित कर सकता है। (कृपया तालिका के नीचे दी गई टिप्पणी देखें)
- वह चुनाव आयोग के परामर्श से राज्य विधानमंडल के सदस्यों की अयोग्यता के प्रश्न पर निर्णय लेता है।
- वह विधानमंडल में लंबित किसी विधेयक के संबंध में या अन्यथा राज्य विधानमंडल के सदन या सदनों को संदेश भेज सकता है (संसदीय विधेयक के संबंध में राष्ट्रपति की समान शक्ति)।
- जब राज्य विधानमंडल सत्र में न हो, तो वह अध्यादेश जारी कर सकता है। (जब संसद सत्र में न हो, तो राष्ट्रपति भी अध्यादेश जारी करता है)।
- राज्य विधानों के संबंध में वीटो शक्ति।
- वह राज्य वित्त आयोग, राज्य लोक सेवा आयोग और नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की राज्य के खातों से संबंधित रिपोर्टें राज्य विधानमंडल के समक्ष रखता है।

नोट: जनवरी 2020 में, भारत की संसद और राज्य विधानसभाओं में एंग्लो-इंडियन आरक्षित सीटें 126वें संविधान संशोधन विधेयक, 2019 द्वारा समाप्त कर दी गईं, जिसे 104वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2019 के रूप में अधिनियमित किया गया।

वित्तीय शक्तियां

राष्ट्रपति

- संसद में धन विधेयक केवल उसकी पूर्व सिफारिश से ही प्रस्तुत किया जा सकता है।
- उन्हें संसद के समक्ष वार्षिक वित्तीय विवरण (केन्द्रीय बजट) प्रस्तुत करना होता है।
- उनकी सिफारिश के बिना लोकसभा में अनुदान की कोई मांग नहीं की जा सकती।
- वह किसी भी अप्रत्याशित व्यय को पूरा करने के लिए भारत की आकस्मिकता निधि से अग्रिम राशि दे सकता है।
- वह केंद्र और राज्यों के बीच राजस्व के वितरण की सिफारिश करने के लिए हर पांच साल बाद एक वित्त आयोग का गठन करते हैं।

राज्यपाल

- राज्य विधानमंडल में धन विधेयक केवल उसकी पूर्व सिफारिश से ही प्रस्तुत किया जा सकता है।
- वह यह सुनिश्चित करता है कि वार्षिक वित्तीय विवरण (राज्य बजट) राज्य विधानमंडल के समक्ष रखा जाए।
- उसकी सिफारिश के बिना विधानसभा में अनुदान की कोई मांग नहीं की जा सकती।
- वह किसी भी अप्रत्याशित व्यय को पूरा करने के लिए राज्य की आकस्मिकता निधि से अग्रिम राशि दे सकता है।

- वह पंचायतों और नगर पालिकाओं की वित्तीय स्थिति की समीक्षा के लिए हर पांच साल बाद एक वित्त आयोग का गठन करते हैं।

<u>न्यायिक शक्तियां</u>

राष्ट्रपति

वह मुख्य न्यायाधीश तथा सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है

वह किसी भी अपराध के लिए दोषी ठहराए गए किसी भी व्यक्ति को क्षमा, विलंब, राहत और सजा में छूट दे सकता है, या उसकी सजा को निलंबित, माफ या छोटा कर सकता है।

<u>राज्यपाल</u>

- संबंधित राज्य उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति उनसे परामर्श करते हैं।
- वह राज्य कानून के विरुद्ध किसी अपराध के लिए दोषी ठहराए गए किसी भी व्यक्ति की सजा/दंड को माफ कर सकता है, स्थगित कर सकता है, राहत दे सकता है, स्थगित कर सकता है या कम कर सकता है।

राष्ट्रपति की अन्य शक्तियाँ:

<u>कूटनीतिक शक्तियां</u>

- अंतर्राष्ट्रीय संधियों और समझौतों पर राष्ट्रपति की ओर से बातचीत की जाती है और उन्हें अंतिम रूप दिया जाता है। हालाँकि, वे संसद की मंज़ूरी के अधीन हैं।
- वह अंतर्राष्ट्रीय मंचों और मामलों में भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा राजदूतों, उच्चायुक्तों आदि जैसे राजनयिकों को भेजते और उनका स्वागत करते हैं।

<u>सैन्य शक्तियां</u>

- वह भारत की रक्षा सेनाओं के सर्वोच्च कमांडर हैं। इस पद पर रहते हुए वह थल सेना, नौसेना और वायु सेना के प्रमुखों की नियुक्ति करते हैं।
- वह संसद की स्वीकृति के अधीन युद्ध की घोषणा कर सकता है या शांति स्थापित कर सकता है।

<u>आपातकालीन शक्तियां</u>

- संविधान राष्ट्रपति को निम्नलिखित तीन प्रकार की आपात स्थितियाँ लागू करने की असाधारण शक्तियाँ देता है:
    - राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352);
    - राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356 और 365);
    - वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360)।

राष्ट्रपति और राज्यपाल द्वारा प्राप्त विशेषाधिकार और प्रतिरक्षा (अनुच्छेद 361)

- अनुच्छेद 361 (1): राष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल अपने पद की शक्तियों और कर्तव्यों के प्रयोग और पालन के लिए किसी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं होगा, सिवाय इसके कि संसद ने अनुच्छेद 61 के तहत आरोप की जांच के लिए किसी न्यायाधिकरण, न्यायालय या निकाय को अधिकृत किया हो।
- अनुच्छेद 361 (2): राष्ट्रपति या राज्यपाल के खिलाफ पद पर रहते हुए कोई आपराधिक कार्यवाही शुरू या जारी नहीं रखी जा सकती

- अनुच्छेद 361 (3): राष्ट्रपति या राज्यपाल की गिरफ्तारी या कारावास की कोई कार्यवाही उनके पद पर रहते हुए किसी भी न्यायालय द्वारा नहीं की जाएगी।
- अनुच्छेद 361 (4): राज्यपाल या राष्ट्रपति द्वारा व्यक्तिगत हैसियत में किए गए कार्यों के विरुद्ध सिविल कार्यवाही केवल दो महीने पूर्व सूचना देकर ही की जा सकती है।

राष्ट्रपति और राज्यपाल की वीटो शक्ति की तुलना

राष्ट्रपति

- संसद के साधारण विधेयकों के संबंध में वह अपनी अनुमति दे सकता है/अपनी अनुमति रोक सकता है/विधेयक को सदनों के पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है।
- जब राज्यपाल द्वारा कोई राज्य विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखा जाता है, तो वह उस पर अपनी स्वीकृति दे सकता है/अपनी स्वीकृति रोक सकता है/विधेयक को सदनों के पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है।
- पुनर्विचार के लिए लौटाए जाने की स्थिति में, यदि विधेयक राज्य द्वारा पारित कर दिया जाता है और राष्ट्रपति के समक्ष उनकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है, तो राष्ट्रपति विधेयक पर अपनी स्वीकृति देने के लिए बाध्य नहीं है।
- धन विधेयक के संबंध में, वह विधेयक पर अपनी सहमति दे सकता है/अपनी सहमति रोक सकता है, लेकिन संसद के पुनर्विचार के लिए धन विधेयक को वापस नहीं लौटा सकता।
- जब राज्यपाल द्वारा कोई धन विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखा जाता है, तो वह उस पर अपनी स्वीकृति दे सकता है, लेकिन राज्य विधानमंडल के पुनर्विचार के लिए धन विधेयक को वापस नहीं कर सकता।
- संविधान संशोधन विधेयक के संबंध में वह केवल अनुमोदन कर सकते हैं। वह विधेयक को अस्वीकार या वापस नहीं कर सकते।

राज्यपाल

- साधारण विधेयक के संबंध में वह अपनी अनुमति दे सकता है/अपनी अनुमति रोक सकता है/विधेयक को सदनों के पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है/विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए सुरक्षित रख सकता है।
- जब राज्यपाल किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखता है, तो विधेयक के अधिनियमन में उसकी कोई और भूमिका नहीं रहती।
- यदि विधेयक को राष्ट्रपति द्वारा सदन या सदनों के पुनर्विचार के लिए लौटा दिया जाता है और पुनः पारित कर दिया जाता है, तो विधेयक को पुनः राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए ही प्रस्तुत किया जाना चाहिए, अर्थात् राज्यपाल की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है।
- धन विधेयक के संबंध में, वह विधेयक पर अपनी सहमति दे सकता है/अपनी सहमति रोक सकता है/विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रख सकता है, लेकिन वह धन विधेयक को संसद के पुनर्विचार के लिए वापस नहीं कर सकता।

- जब राज्यपाल किसी धन विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखता है, तो विधेयक के अधिनियमन में उसकी कोई भूमिका नहीं रह जाती। यदि राष्ट्रपति विधेयक पर अपनी सहमति दे देता है, तो वह अधिनियम बन जाता है।
- संविधान संशोधन विधेयक राज्य विधानमंडल में प्रस्तुत नहीं किये जा सकते।

राष्ट्रपति एवं राज्यपाल की अध्यादेश बनाने की शक्ति

- अध्यादेश बनाने की शक्ति राष्ट्रपति की सबसे महत्वपूर्ण विधायी शक्ति है।
- संविधान का अनुच्छेद 123 राष्ट्रपति को संसद के अवकाश के दौरान अध्यादेश जारी करने का अधिकार देता है।
- अनुच्छेद 213 के तहत राज्यपाल को दी गई अध्यादेश बनाने की शक्ति, अनुच्छेद 123 के तहत राष्ट्रपति को दी गई शक्ति के समान है।

अध्यादेश शक्ति क्यों प्रदान की गई है?

- अप्रत्याशित या अत्यावश्यक मामलों से निपटने के लिए राष्ट्रपति और राज्यपाल को अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्रदान की गई है।
- यह कार्यपालिका को ऐसी स्थिति से निपटने में सक्षम बनाता है जो संसद के सत्र में न होने पर अचानक और तत्काल उत्पन्न हो सकती है।
- अध्यादेश की विशेषताएँ:
- अध्यादेश किसी भी मौलिक अधिकार को कम या छीन नहीं सकता।
- किसी भी अन्य कानून की तरह अध्यादेश भी पूर्वव्यापी हो सकता है, अर्थात यह पिछली तिथि से लागू हो सकता है।
- इन अध्यादेशों का बल और प्रभाव संसद/राज्य के अधिनियम के समान ही होता है, लेकिन ये अस्थायी कानूनों की प्रकृति के होते हैं।
- संसद/राज्य विधानमंडल द्वारा अनुमोदन न मिलने की स्थिति में अध्यादेश की अधिकतम अवधि छह माह और छह सप्ताह हो सकती है, क्योंकि संसद/राज्य विधानमंडल के दो सत्रों के बीच अधिकतम अंतराल छह माह का होता है।
- अध्यादेश कर कानून में परिवर्तन या संशोधन भी कर सकता है। हालाँकि, इसे संविधान में संशोधन के लिए जारी नहीं किया जा सकता।

राष्ट्रपति

- वह अध्यादेश तभी जारी कर सकता है जब संसद के दोनों सदन सत्र में न हों या संसद के दोनों सदनों में से कोई एक सत्र में न हो।
- वह अध्यादेश तभी बना सकता है जब वह इस बात से संतुष्ट हो जाए कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक है।
- उसकी अध्यादेश बनाने की शक्ति संसद की विधायी शक्ति के साथ-साथ व्यापक है। इसका मतलब यह है कि वह केवल उन्हीं विषयों पर अध्यादेश जारी कर सकता है जिन पर संसद कानून बना सकती है।

- उनके द्वारा जारी अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होता है जो संसद के अधिनियम का होता है।
- वह किसी भी समय अध्यादेश वापस ले सकते हैं।
- अध्यादेश बनाने की शक्ति विवेकाधीन नहीं है, और वह केवल प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली मंत्रिपरिषद की सलाह पर ही अध्यादेश जारी या वापस ले सकते हैं।
- उनके द्वारा जारी अध्यादेश को संसद के पुनः समवेत होने पर दोनों सदनों के समक्ष रखा जाना चाहिए।
- उनके द्वारा जारी अध्यादेश संसद के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह बाद प्रभावी नहीं रह जाता।
- यदि संसद के दोनों सदन इसे अस्वीकृत करने वाला प्रस्ताव पारित कर देते हैं तो यह निर्धारित छह सप्ताह से पहले भी कार्य करना बंद कर सकता है।
- अध्यादेश बनाने के लिए उसे किसी निर्देश की आवश्यकता नहीं है।
- उनके द्वारा जारी किया गया अध्यादेश संसद के अधिनियम के समान ही सीमाओं के अधीन है। इसका मतलब यह है कि उनके द्वारा जारी किया गया अध्यादेश उस सीमा तक अमान्य होगा, जब तक कि उसमें कोई ऐसा प्रावधान न हो जिसे संसद नहीं बना सकती।

<u>राज्यपाल</u>

- वह अध्यादेश तभी जारी कर सकता है जब विधान सभा (एक सदनीय विधायिका के मामले में) सत्र में न हो या (द्वि-सदनीय विधायिका के मामले में) जब दोनों सदन/राज्य विधानमंडल के दोनों सदनों में से कोई एक सत्र में न हो।
- वह अध्यादेश तभी बना सकता है जब वह इस बात से संतुष्ट हो जाए कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक है।
- उसकी अध्यादेश बनाने की शक्ति राज्य विधानमंडल की विधायी शक्ति के साथ-साथ व्यापक है। इसका मतलब यह है कि वह केवल उन्हीं विषयों पर अध्यादेश जारी कर सकता है जिन पर राज्य विधानमंडल कानून बना सकता है।
- उनके द्वारा जारी अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होता है जो संसद के अधिनियम का होता है।
- वह किसी भी समय अध्यादेश वापस ले सकते हैं।
- अध्यादेश बनाने की शक्ति विवेकाधीन नहीं है, और वह केवल मुख्यमंत्री की अध्यक्षता वाली मंत्रिपरिषद की सलाह पर ही अध्यादेश जारी या वापस ले सकते हैं।
- उसके द्वारा जारी अध्यादेश को विधान सभा या राज्य विधानमंडल के दोनों सदनों (द्विसदनीय विधानमंडल के मामले में) के पुनः समवेत होने पर उनके समक्ष रखा जाना चाहिए।
- उनके द्वारा जारी अध्यादेश राज्य विधानमंडल के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह की समाप्ति पर लागू नहीं होता।

- यदि विधान सभा द्वारा इसे अस्वीकृत करने वाला प्रस्ताव पारित कर दिया जाता है और विधान परिषद (द्विसदनीय विधायिका के मामले में) द्वारा इस पर सहमति दे दी जाती है, तो यह निर्धारित छह सप्ताह से पहले भी कार्य करना बंद कर सकता है।
- वह तीन मामलों में राष्ट्रपति के निर्देश के बिना अध्यादेश नहीं बना सकते:

1) यदि समान प्रावधानों वाले विधेयक को राज्य विधानमंडल में प्रस्तुत करने के लिए राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी की आवश्यकता होगी।

2) यदि वह समान प्रावधानों वाले विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखना आवश्यक समझते।

3) यदि राज्य विधानमंडल का कोई अधिनियम, जिसमें समान प्रावधान हों, राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना अवैध हो जाएगा।

- उनके द्वारा जारी किया गया अध्यादेश राज्य विधानमंडल के अधिनियम के समान ही सीमाओं के अधीन है। इसका मतलब यह है कि उनके द्वारा जारी किया गया अध्यादेश उस सीमा तक अमान्य होगा, जब तक कि उसमें ऐसा कोई प्रावधान न हो जिसे राज्य विधानमंडल नहीं बना सकता।
- अध्यादेशों का पुनः प्रवर्तन: क्या यह संविधान की भावना का उल्लंघन है?
- राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र और आसपास के क्षेत्रों में वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग अध्यादेश, 2020 को फिर से जारी करने के केंद्र सरकार के फैसले से अध्यादेश जारी करने की प्रक्रिया के साथ-2 फिर से जारी किए जा रहे अध्यादेशों की संवैधानिकता के बारे में कई सवाल उठाए जारहे हैं।

अध्यादेशों के पुनःप्रख्यापन से संबंधित मामले -

- डीसी वाधवा बनाम बिहार राज्य (1987): न्यायालय ने माना था कि समान पाठ वाले अध्यादेशों को बार-बार पुनः जारी करना और विधेयक पारित करने का प्रयास किए बिना भारत के संविधान का उल्लंघन होगा।
- कृष्ण कुमार सिंह एवं अन्य बनाम बिहार राज्य (2017): यह ऐतिहासिक निर्णय है जिसमें यह माना गया कि अध्यादेशों का पुनः प्रवर्तन संविधान के साथ धोखाधड़ी है। इस मामले में 7वीं बेंच की जूरी ने माना कि कार्यपालिका को दी गई शक्ति उसे समानांतर कानून बनाने वाली संस्था नहीं बनाती।
- सर्वोच्च न्यायालय ने 1986 में निर्णय दिया था कि अध्यादेशों को पुनः जारी करना संविधान के मूल सिद्धांतों के विपरीत है तथा लोकतांत्रिक विधायी प्रक्रियाओं को नुकसान पहुंचाता है, तथा इस तंत्र का उपयोग संभवतः सरकार द्वारा विधायिका की अनदेखी करने के लिए शक्ति के प्रयोग के रूप में किया जा सकता है।

समस्याएँ:

- विधायी शक्ति का हड़पना।
- शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत कमजोर हो गया है।
- यह संविधान के मूल ढांचे का उल्लंघन करता है

अध्यादेश मार्ग को अलोकतांत्रिक क्यों माना जाता है?

- सर्वोच्च न्यायालय ने 2017 में फैसला दिया था कि अध्यादेशों को पुनः जारी करना संविधान के साथ धोखाधड़ी है और लोकतांत्रिक विधायी प्रक्रिया का उल्लंघन है।
- कानून बनाने की प्राथमिक शक्ति विधायिका के पास है, कार्यपालिका के पास नहीं। अध्यादेश कानून बनाने का एक अलोकतांत्रिक तरीका है, जो विधायिका का काम है।
- कार्यपालिका को केवल आपातकालीन स्थिति से निपटने के लिए अध्यादेश जारी करने की विधायी शक्ति दी गई है, इसलिए इसका बार-बार प्रयोग नहीं किया जाएगा।
- पुनः प्रख्यापन विधायी प्रक्रिया में अतिक्रमण करने का प्रयास है, जो संसदीय लोकतंत्र में कानून बनाने का प्राथमिक स्रोत है।
- अध्यादेश संसदीय जांच, बहस, चर्चा आदि से बचने का एक पिछला रास्ता है।

आगे बढ़ने का रास्ता:

- चूंकि केंद्र और राज्य दोनों ही सरकारें इस सिद्धांत का उल्लंघन कर रही हैं, इसलिए विधायिका और न्यायालयों को इस प्रथा पर लगाम लगानी चाहिए। शक्तियों के पृथक्करण और नियंत्रण और संतुलन की अवधारणा का यही अर्थ है। इस प्रथा पर रोक न लगाकर, अन्य दो अंग भी संविधान के प्रति अपनी जिम्मेदारी से विमुख हो रहे हैं।

राष्ट्रपति एवं राज्यपाल की क्षमादान शक्ति

- संविधान के अनुच्छेद 72 और 161 भारत के राष्ट्रपति और राज्यों के राज्यपालों को कुछ मामलों में क्षमादान देने, सजा को निलंबित करने, माफ करने या कम करने का अधिकार देते हैं।
- राष्ट्रपति/राज्यपाल की क्षमादान शक्ति न्यायपालिका से स्वतंत्र है; यह एक कार्यकारी शक्ति है जो कानून के संचालन में किसी भी न्यायिक त्रुटि को सुधारने के लिए दरवाजा खुला रखने और उस सजा से राहत देने के लिए दी गई है, जिसे राष्ट्रपति/राज्यपाल अत्यधिक कठोर मानते हैं।
- 1980 में मारू राम बनाम भारत संघ तथा 1994 में धनंजय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला दिया था कि दया याचिकाओं पर निर्णय करते समय राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करना होगा।
- ईपुरु सुधाकर एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश (2006)
- अनुच्छेद 72 और 161 के तहत राष्ट्रपति या राज्यपाल की शक्तियां न्यायिक समीक्षा के अधीन हैं।

उनके निर्णय को इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि:

- इसे बिना दिमाग लगाए पारित कर दिया गया
- यह दुर्भावनापूर्ण है

- इसे असंगत या पूर्णतः अप्रासंगिक विचारों के आधार पर पारित किया गया
- प्रासंगिक सामग्रियों को विचार से बाहर रखा गया
- यह मनमानी से ग्रस्त है।

राष्ट्रपति की क्षमादान शक्ति

- क्षमा- जब भी किसी दोषी को भारत के राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 72 के तहत क्षमा प्रदान की जाती है, तो वह उस पर लगाए गए दंड से पूरी तरह से मुक्त हो जाता है और सभी दंडात्मक परिणामों से भी मुक्त हो जाता है।
- लघुकरण- राष्ट्रपति किसी दण्ड को न्यायालय द्वारा मूलतः दिए गए दण्ड से भिन्न प्रकार के दण्ड में परिवर्तित कर सकता है।
- क्षमा- इसका अर्थ है न्यायालय द्वारा दी गई सजा की प्रकृति या स्वरूप में परिवर्तन किए बिना सजा में कमी करना।
- राहत- इस आदेश के तहत विशेष परिस्थितियों में सजा को अस्थायी तौर पर निलंबित कर दिया जाता है, जैसे कि मौत की सजा पाने वाली महिला का गर्भवती होना या दोषी का पागल हो जाना। दूसरे शब्दों में, यह सजा के निष्पादन को भविष्य के लिए स्थगित करना है।
- स्थगन- यह केवल अस्थायी अवधि के लिए फांसी की सजा को स्थगित कर देता है, या मृत्युदंड की सजा को स्थगित कर देता है या कुछ समय के लिए सजा को वापस ले लेता है।

राष्ट्रपति और राज्यपाल की क्षमादान शक्तियों में अंतर:

राष्ट्रपति

- वह किसी केन्द्रीय कानून के विरुद्ध अपराध के लिए दोषी ठहराए गए किसी भी व्यक्ति की सजा/दंड को माफ कर सकता है, विलंबित कर सकता है, राहत दे सकता है, निलंबित कर सकता है या कम कर सकता है।
- वह मृत्युदंड को माफ कर सकता है, स्थगित कर सकता है, स्थगित कर सकता है, माफ कर सकता है, निलंबित कर सकता है या परिवर्तित कर सकता है।
- उसके पास सैन्य न्यायालय द्वारा दी गई सजा या दण्ड के संबंध में क्षमा करने की शक्ति है।

राज्यपाल

- वह राज्य कानून के विरुद्ध किसी अपराध के लिए दोषी ठहराए गए किसी भी व्यक्ति की सजा/दंड को माफ कर सकता है, स्थगित कर सकता है, राहत दे सकता है, स्थगित कर सकता है या कम कर सकता है।
- राज्यपाल मृत्युदंड को निलंबित, माफ या परिवर्तित कर सकते हैं, लेकिन वे मृत्युदंड को माफ नहीं कर सकते।
- उसके पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है।

राष्ट्रपति और राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियां

राज्यपाल के पास परिस्थितिजन्य और संवैधानिक दोनों प्रकार के विवेकाधिकार होते हैं, लेकिन राष्ट्रपति के पास केवल परिस्थितिजन्य विवेकाधिकार होता है।

42वें संविधान संशोधन (1976) के बाद मंत्रिस्तरीय सलाह राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी बना दी गई है, लेकिन राज्यपाल के संबंध में ऐसा कोई प्रावधान नहीं किया गया है।

राष्ट्रपति

- प्रधानमंत्री की नियुक्ति तब की जाती है जब लोकसभा में किसी भी पार्टी को स्पष्ट बहुमत न हो या जब पद पर आसीन प्रधानमंत्री की अचानक मृत्यु हो जाए और उसका कोई स्पष्ट उत्तराधिकारी न हो।
- मंत्रिपरिषद को बर्खास्त करना जब वह लोक सभा में विश्वास साबित न कर सके।
- यदि मंत्रिपरिषद अपना बहुमत खो दे तो लोकसभा को भंग कर दिया जाता है।

<u>राज्यपाल</u>

- ऐसी स्थिति में मुख्यमंत्री की नियुक्ति, जब राज्य विधानसभा में किसी भी पार्टी को स्पष्ट बहुमत न हो या जब किसी वर्तमान मुख्यमंत्री की अप्रत्याशित रूप से मृत्यु हो जाए और कोई स्पष्ट उम्मीदवार उसका स्थान न ले सके।
- मंत्रिपरिषद को बर्खास्त करना जब वह राज्य विधान सभा में विश्वास साबित न कर सके।
- यदि मंत्रिपरिषद अपना बहुमत खो दे तो राज्य विधान सभा को भंग किया जा सकता है।

<u>राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियाँ:</u>

- राज्यपाल को निम्नलिखित मामलों में संवैधानिक विवेकाधिकार प्राप्त है:
- किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखना।
- राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश।
- किसी समीपवर्ती संघ राज्य क्षेत्र के प्रशासक के रूप में अपने कार्यों का निर्वहन करते समय (अतिरिक्त प्रभार के मामले में)।
- असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम सरकार द्वारा स्वायत्त जनजातीय जिला परिषद को देय राशि का निर्धारण करता है।
- राज्य के प्रशासनिक एवं विधायी मामलों के संबंध में मुख्यमंत्री से जानकारी मांगी गई।

राज्यपाल से संबंधित मुद्दे

- मनमाने ढंग से हटाना: राज्यपाल को उनके कार्यकाल की समाप्ति से पहले मनमाने ढंग से हटाना भी हाल के दिनों में एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है।
- पुनर्वास नियुक्तियाँ: वर्तमान सरकार के प्रति राजनीतिक रूप से वफादार रहने के कारण राजनेताओं के लिए यह पद सेवानिवृत्ति पैकेज बनकर रह गया है।
- पद का दुरुपयोग: राज्यपाल के पद का दुरुपयोग करने के कई उदाहरण हैं, आमतौर पर केंद्र में सत्तारूढ़ पार्टी द्वारा।
- विवेकाधीन शक्तियों का दुरुपयोग: सबसे बड़ी पार्टी/गठबंधन के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करने की राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों का अक्सर दुरुपयोग किया गया है।
- पक्षपातपूर्ण भूमिका: हाल ही में राजस्थान के राज्यपाल पर आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन का आरोप लगाया गया है। उनका सत्तारूढ़ दल का समर्थन करना उस गैर-पक्षपातपूर्ण भावना के विरुद्ध है जिसकी संवैधानिक पदों पर बैठे व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है।
- अनुच्छेद 356 के तहत शक्ति का दुरुपयोग: किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र के टूटने की स्थिति में राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356) लागू करने का केंद्र सरकार द्वारा अक्सर दुरुपयोग किया गया है।
- मात्र रबर स्टाम्प या कठपुतली: राज्यपाल अपने मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह से बंधा हुआ है।

हाल के उदाहरण:

- राज्यपाल ने तमिलनाडु सरकार द्वारा तैयार किये गये अपने अभिभाषण के कुछ हिस्सों को पढ़ने से इनकार कर दिया।

- महाराष्ट्र में राज्यपाल ने राज्यपाल शासन हटा दिया और ऐसे मुख्यमंत्री को शपथ दिला दी, जिसके पास सदन में बहुमत का समर्थन नहीं था।
- पश्चिम बंगाल विधानसभा ने राज्यपाल को पद से हटाने तथा मुख्यमंत्री को राज्य विश्वविद्यालयों का कुलाधिपति बनाने संबंधी विधेयक पारित कर दिया।
- केरल में विभिन्न विधेयकों के अनुमोदन को लेकर राज्य सरकार के साथ विवाद, तेलंगाना में भी ऐसी ही समस्या।

सरकारिया आयोग की सिफारिशें

अनुच्छेद 356 से संबंधित:

- अनुच्छेद 356 का इस्तेमाल बहुत ही दुर्लभ मामलों में किया जाना चाहिए जब राज्य में संवैधानिक तंत्र की टूट-फूट को बहाल करना अपरिहार्य हो जाए। इसका इस्तेमाल अंतिम उपाय के रूप में किया जाना चाहिए।
- अनुच्छेद 356 के तहत कार्रवाई करने से पहले राज्य सरकार को चेतावनी जारी की जानी चाहिए कि वह संविधान के अनुसार काम नहीं कर रही है।

राज्यपाल से संबंधित:

- राज्यपालों की नियुक्ति राज्य के मुख्यमंत्री, भारत के उपराष्ट्रपति और लोकसभा अध्यक्ष के परामर्श से की जानी चाहिए।
- उनके कार्यकाल की गारंटी होनी चाहिए तथा अत्यंत आवश्यक कारणों को छोड़कर उसमें कोई व्यवधान नहीं डाला जाना चाहिए।

राज्यपाल के चयन के मानदंड:

(i) उसे जीवन के किसी न किसी क्षेत्र में प्रतिष्ठित होना चाहिए।

(ii) वह राज्य से बाहर का व्यक्ति होना चाहिए।

(iii) वह एक पृथक व्यक्ति होना चाहिए तथा राज्य की स्थानीय राजनीति से बहुत अधिक जुड़ा हुआ नहीं होना चाहिए।

(iv) वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसने सामान्यतः और विशेषकर हाल के दिनों में राजनीति में बहुत अधिक भाग नहीं लिया हो।

मुख्यमंत्री की नियुक्ति से संबंधित:

- यदि विधानसभा में किसी एक पार्टी को पूर्ण बहुमत प्राप्त है, तो उस पार्टी के नेता को स्वतः ही मुख्यमंत्री बनने के लिए कहा जाना चाहिए।
- ऐसे किसी पक्ष की अनुपस्थिति में, राज्यपाल नीचे सूचीबद्ध वरीयता क्रम में निम्नलिखित पक्षों या पक्षों के समूहों में से प्रत्येक के साथ सुनवाई करके एक मुख्यमंत्री का चयन करेंगे:
- चुनावों से पहले गठित पार्टियों का गठबंधन।
- सबसे बड़ी पार्टी ने निर्दलीयों सहित अन्य के समर्थन से सरकार बनाने का दावा पेश किया।
- चुनाव के बाद का गठबंधन जिसमें सभी सहयोगी सरकार में शामिल होंगे।
- चुनाव के बाद गठबंधन जिसमें कुछ दल सरकार में शामिल होंगे और शेष बाहर से समर्थन देंगे

अन्य:

- जब राष्ट्रपति राज्य विधेयकों पर अपनी स्वीकृति रोक लेते हैं, तो राज्य सरकार को इसका कारण बताया जाना चाहिए।
- राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति में मुख्यमंत्री से परामर्श की प्रक्रिया संविधान में ही निर्धारित की जानी चाहिए।
- राज्यपाल मंत्रिपरिषद को तब तक बर्खास्त नहीं कर सकते जब तक कि विधानसभा में उसका बहुमत बना रहे

टिप्पणियाँ : मंत्रिपरिषद, पूर्ण बहुमत, संवैधानिक अधिकार, विवेकाधीन शक्तियाँ, पुनर्वास नियुक्तियाँ, पद का दुरुपयोग, क्षमा, राहत, अध्यादेश की घोषणा।

प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री

भाग I: भारत के प्रधान मंत्री

1. संवैधानिक आधार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 74 और 75 प्रधानमंत्री (पीएम) की स्थिति से संबंधित हैं।

- राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए **प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में** एक मंत्रिपरिषद होगी ।
- अनुच्छेद 75: प्रधानमंत्री की नियुक्ति **राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी** , लेकिन उसे **लोकसभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त होना चाहिए** ।

2. संसदीय लोकतंत्र में भूमिका

- प्रधानमंत्री **वास्तविक कार्यकारी अधिकारी और भारत की संसदीय प्रणाली** का केंद्रीय व्यक्ति है ।
- **उन्हें "जहाज का कप्तान"** , **"कैबिनेट आर्क का आधारशिला"** (मॉरिसन) और **"मुख्य नीति-निर्माता"** कहा जाता है ।

3. शक्तियां और जिम्मेदारियां

कार्यकारी शक्तियां:

- **सरकार का मुखिया** : मंत्रालयों और विभागों के माध्यम से केंद्रीय प्रशासन पर नियंत्रण रखता है।
- **मंत्रिमंडल गठन** : मंत्रियों की नियुक्ति, फेरबदल और बर्खास्तगी के लिए राष्ट्रपति को सिफारिश करता है।
- **निर्णय लेना** : कैबिनेट बैठकों की अध्यक्षता करना और विभिन्न मंत्रालयों के कार्यों का समन्वय करना।
- **संकट प्रबंधक** : राष्ट्रीय आपात स्थितियों (स्वास्थ्य, रक्षा, आपदा) में नेतृत्व करता है।

विधायी शक्तियां:

- **लोकसभा का नेता** (यदि सदस्य हो): सरकार के विधायी एजेंडे को नियंत्रित करता है।
- राष्ट्रपति से **लोकसभा को भंग करने की** सिफारिश की जाती है ।
- **विधेयकों** , विशेषकर धन विधेयकों को प्रस्तुत करने में प्रमुख भूमिका निभाता है ।

सलाहकार भूमिका:

- **अनुच्छेद 78** के अंतर्गत प्रधानमंत्री संवैधानिक रूप से बाध्य हैं:
  - मंत्रिपरिषद के निर्णयों की सूचना राष्ट्रपति को देना।
  - पूछे जाने पर सरकारी मामलों से संबंधित जानकारी प्रदान करें।
  - राष्ट्रपति द्वारा अपेक्षित होने पर परिषद के विचारार्थ मामले प्रस्तुत करना।

नियुक्ति भूमिका:

- निम्नलिखित की नियुक्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है:
  - **राज्यपाल, सीएजी, मुख्य चुनाव आयुक्त, यूपीएससी सदस्य, राजदूत** आदि।
  - एनएसए, रॉ, आईबी जैसे राष्ट्रीय सुरक्षा संस्थानों के प्रमुख।

अंतर्राष्ट्रीय भूमिका:

- शिखर सम्मेलनों (जैसे, जी-20, यूएन, एससीओ) में विश्व स्तर पर भारत का प्रतिनिधित्व करता है।
- विदेश नीति निर्णयों, रणनीतिक गठबंधनों, रक्षा कूटनीति में अंतिम प्राधिकार।

पार्टी नेतृत्व:

- प्रधानमंत्री आमतौर पर **सत्तारूढ़ पार्टी या गठबंधन का सर्वोच्च नेता होता है** ।
- पार्टी की चुनावी रणनीति, सीट बंटवारे और संदेश का निर्णय लेता है।

4. प्रधानमंत्री कार्यालय (पीएमओ)

- 1947 में स्थापित पीएमओ **सरकार का तंत्रिका केंद्र है** ।
- एक **कर्मचारी, सलाहकार और निगरानी एजेंसी के रूप में कार्य करता है** ।
- इसका नेतृत्व **प्रधान सचिव करते हैं** ; इसमें सलाहकार, सचिव और ओएसडी शामिल होते हैं।

5. सीमाएं और आलोचनाएं

- कोई **निश्चित कार्यकाल नहीं** ; लोकसभा के बहुमत पर निर्भर करता है।
- **बहुत शक्तिशाली** हो सकती है (जैसे, इंदिरा गांधी का कार्यकाल)।
- **गठबंधन युग के प्रधानमंत्रियों** (जैसे, वाजपेयी, मनमोहन सिंह) को पार्टी और गठबंधन हितों में संतुलन बनाना पड़ा।
- प्रधानमंत्री कार्यालय के माध्यम से नौकरशाही पर अत्यधिक निर्भरता के कारण **केंद्रीकरण** और **तकनीकी निर्णय लेने के आरोप लगे हैं** ।

भाग II: किसी राज्य का मुख्यमंत्री

1. संवैधानिक आधार

- **अनुच्छेद 163 और 164 में** मुख्यमंत्री (सीएम) के पद का उल्लेख है।
- **राज्य स्तर पर** मुख्यमंत्री वास्तविक कार्यकारी प्राधिकारी हैं ।
- **राज्यपाल** द्वारा नियुक्त , लेकिन विधान सभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त होना आवश्यक है।

2. राज्य सरकार में केंद्र की भूमिका

- मुख्यमंत्री **राज्य मंत्रिपरिषद का प्रमुख होता है** ।
- राज्यपाल और परिषद के बीच **संचार के चैनल** के रूप में कार्य करता है (अनुच्छेद 167)।
- **राज्य सूची और समवर्ती सूची के** विषयों पर नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन का नेतृत्व करता है ।

3. शक्तियां और जिम्मेदारियां

कार्यकारी शक्तियां:

- मंत्रियों के बीच विभागों का आवंटन और उनमें फेरबदल करता है।
- विभागों के बीच समन्वय स्थापित करना तथा अंतर-मंत्रालयी विवादों का समाधान करना।
- मुख्य सचिव के परामर्श से राज्य के शीर्ष नौकरशाहों की नियुक्ति करता है।
- **स्थानीय स्वशासन** , पुलिस और कल्याण विभागों के प्रशासन का मार्गदर्शन करता है ।

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

विधायी शक्तियां:

- राज्य विधान सभा को बुलाने, सत्रावसान करने और भंग करने की सिफारिश की जाती है।
- विधेयकों, प्रस्तावों और विश्वास मतों का पारित होना सुनिश्चित करता है।
- नीतिगत वक्तव्य देता है और विधानसभा में बहस में भाग लेता है।

वित्तीय शक्तियां:

- **राज्य बजट को** अंतिम रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली, पेंशन और ग्रामीण कार्यों जैसी योजनाओं की व्यय प्राथमिकताओं और कार्यान्वयन की देखरेख करना।

केंद्र-राज्य संबंधों में भूमिका:

- **अंतर-राज्य परिषद** , **नीति आयोग की बैठकों** और **क्षेत्रीय परिषद की चर्चाओं में** भाग लेते हैं ।
- राष्ट्रीय नीति निर्णयों (जैसे, जीएसटी परिषद, पर्यावरण नियोजन) में भाग लेता है।

राजनीतिक और पार्टी भूमिका:

- राज्य की सत्तारूढ़ पार्टी/गठबंधन का नेता।
- उम्मीदवार चयन, अभियान रणनीति और पार्टी अनुशासन का निर्णय लेता है।

4. प्रशासनिक संरचना

- सहायता प्राप्त:
  - **मुख्य सचिव** (राज्य में शीर्ष नौकरशाह)
  - राज्य कैबिनेट मंत्री
  - जिला कलेक्टर और पुलिस अधिकारी

5. सीमाएं और चुनौतियां

- आपातकाल के दौरान **राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों** के अधीन ।
- केन्द्र प्रायोजित योजनाओं में **संघ के दिशा-निर्देशों का पालन करना होगा** ।
- अक्सर राजनीतिक दायित्वों और प्रशासनिक कर्तव्यों के बीच फंसे रहते हैं।
- राष्ट्रपति शासन वाले राज्यों में मुख्यमंत्री की भूमिका निलंबित रहती है।

भाग III: प्रधानमंत्री बनाम मुख्यमंत्री

- दोनों ही अपने-अपने स्तर पर **वास्तविक कार्यकारी प्रमुख हैं** , लेकिन प्रधानमंत्री के पास **राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय जिम्मेदारियां हैं** , जबकि मुख्यमंत्री का दायरा **राज्य प्रशासन तक ही सीमित है** ।
- प्रधानमंत्री **राष्ट्रपति के साथ संवाद करते हैं** , जबकि मुख्यमंत्री **राज्यपाल के साथ पत्र व्यवहार करते हैं** ।
- प्रधानमंत्री विदेश नीति और राष्ट्रीय सुरक्षा का नेतृत्व करते हैं; मुख्यमंत्री राज्य विकास और कानून एवं व्यवस्था का नेतृत्व करते हैं।
- **संघीय ढांचे** का हिस्सा हैं , लेकिन व्यवहार में, प्रधानमंत्री के पास **अधिक शक्ति और प्रभाव है**

मंत्री परिषद्

1. संवैधानिक आधार

- **अनुच्छेद 74(1) :** राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए **प्रधानमंत्री** की अध्यक्षता में एक **मंत्रिपरिषद (सीओएम)** होगी ।
- **अनुच्छेद 75** :
  - प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।
  - अन्य मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह पर की जाती है।
  - मंत्रिमण्डल सामूहिक रूप से **लोक सभा** के प्रति **उत्तरदायी है** ।
- **अनुच्छेद 78** : प्रधानमंत्री, मंत्रिमण्डल के सभी निर्णयों की सूचना राष्ट्रपति को देगा।
- **अनुच्छेद 77 और 85** : कार्य संचालन और मंत्रिपरिषद की सलाह पर राष्ट्रपति की कार्रवाइयों से संबंधित हैं।

मंत्रिपरिषद की संरचना

मंत्रिपरिषद एक **त्रिस्तरीय निकाय है** :

(क) कैबिनेट मंत्री

- वरिष्ठतम मंत्री महत्वपूर्ण मंत्रालयों (वित्त, रक्षा, गृह, विदेश, आदि) का नेतृत्व करते हैं।
- **मंत्रिमंडल** का एक हिस्सा , जो **मुख्य निर्णय लेने वाला निकाय है** ।

(बी) राज्य मंत्री (एमओएस)

- कैबिनेट मंत्रियों से कनिष्ठ।
- मई:
  - **स्वतंत्र प्रभार** दिया जाए (MoS-स्वतंत्र प्रभार), या
  - किसी विभाग के प्रभारी **कैबिनेट मंत्री की सहायता करना ।**

(ग) उप मंत्री

- राज्य मंत्री या कैबिनेट मंत्री की सहायता करें।
- **कोई स्वतंत्र प्राधिकारी नहीं** है ।

नोट: "मंत्रिपरिषद" शब्द में **सभी स्तर** के मंत्री शामिल हैं, जबकि **कैबिनेट** केवल वरिष्ठ मंत्रियों को संदर्भित करता है।

3. मंत्रिमंडल बनाम मंत्रिपरिषद (संकल्पनात्मक अंतर)

विशेषता	अलमारी	मंत्री परिषद्
आकार	छोटे, ~25 मंत्री	बड़े, ~60–70 मंत्री
भूमिका	मुख्य नीति निर्धारण निकाय	कैबिनेट के निर्णयों को लागू करना
बैठक	नियमित रूप से बैठकें होती हैं (प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में)	शायद ही कभी एक पूरे शरीर के रूप में मिलते हैं
संविधान में उल्लेख	स्पष्ट रूप से नहीं (परम्परा के माध्यम से उभरा)	अनुच्छेद 74 में उल्लेखित

4. शक्तियां और कार्य

कार्यकारी शक्तियां

- सरकार चलाने का वास्तविक अधिकार (राष्ट्रपति इसकी सहायता और सलाह पर कार्य करता है)।
- मंत्रालयों और विभागों के माध्यम से प्रशासन संभालता है।
- प्रमुख नियुक्तियों (न्यायाधीश, राज्यपाल, चुनाव आयुक्त, आदि) पर राष्ट्रपति को सलाह देता है।

विधायी शक्तियां

- संसद में विधेयक तैयार करना और प्रस्तुत करना।
- धन विधेयक के पारित होने को सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार।
- लोक सभा के सत्रावसान, सत्रावसान या विघटन की सिफारिश करना।

वित्तीय शक्तियां

- केंद्रीय बजट तैयार करना और प्रस्तुत करना।
- व्यय की प्राथमिकताएं निर्धारित करता है।
- योजनाओं और मंत्रालयों में धन के आवंटन को नियंत्रित करता है।

नीति-निर्माण भूमिका

- राष्ट्रीय लक्ष्य और विकासात्मक प्राथमिकताएं निर्धारित करता है।
- अंतर-मंत्रालयी परामर्श के माध्यम से राज्यों के साथ समन्वय करना।

5. समिति को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत

(क) सामूहिक उत्तरदायित्व (अनुच्छेद 75)

- संपूर्ण मंत्रिमण्डल **एक इकाई के रूप में लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है** ।
- यदि लोक सभा **अविश्वास प्रस्ताव पारित कर देती है** तो **सम्पूर्ण मंत्रिमण्डल को इस्तीफा देना होगा** .
- सरकार में एकता, समन्वय और अनुशासन को बढ़ावा देता है।

(बी) व्यक्तिगत जिम्मेदारी

- मंत्रीगण अपने कार्यों और अपने मंत्रालय के निष्पादन के लिए व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार होते हैं।
- **प्रधानमंत्री द्वारा इस्तीफा देने के लिए कहा** जा सकता है , या प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा बर्खास्त किया जा सकता है।

(ग) कार्यवाही की गोपनीयता

- तीसरी अनुसूची के तहत **गोपनीयता की शपथ** से बंधे ।
- कैबिनेट विचार-विमर्श में गोपनीयता सुनिश्चित करता है।

6. मंत्रिमंडल में प्रधानमंत्री की भूमिका

- कैबिनेट बैठकों की अध्यक्षता करते हैं।
- विभागों का आवंटन एवं फेरबदल।
- कैबिनेट और मंत्री समूह की बैठकों का एजेंडा तय करना।
- **मुख्य समन्वयक और संकट प्रबंधक के** रूप में कार्य करता है ।
- मंत्रिस्तरीय नियुक्ति/बर्खास्तगी पर राष्ट्रपति को सलाह देना।

7. विभिन्न राजनीतिक परिदृश्यों में कॉम की गतिशीलता

(क) एकल पार्टी बहुमत

- प्रधानमंत्री का समिति पर **कड़ा नियंत्रण है।**
- उच्च स्तर का केंद्रीकरण (जैसे, इंदिरा गांधी, नरेंद्र मोदी सरकारें)।

(ख) गठबंधन सरकारें

- प्रधानमंत्री को गठबंधन सहयोगियों के हितों को ध्यान में रखना होगा।
- **सत्ता-साझाकरण व्यवस्था** को बढ़ावा मिलता है , प्रधानमंत्री का अधिकार कमजोर होता है (उदाहरणार्थ, 1996-2014 का युग)।
- आम सहमति बनाना महत्वपूर्ण हो जाता है।

8. वर्तमान चुनौतियाँ

- **शासन का नौकरशाहीकरण** - मंत्रियों को अक्सर अधिकार संपन्न सचिवों और पीएमओ द्वारा दरकिनार कर दिया जाता है।
- **अंतर-परिषद बहस** और कैबिनेट पारदर्शिता का अभाव ।
- **संविधानेतर निकायों** की बढ़ती भूमिका (जैसे, नीति आयोग, पीएमओ)।
- नीतिगत विफलताओं के मामले में **मंत्रिस्तरीय जवाबदेही** के मुद्दे ।

9. संसदीय लोकतंत्र में महत्व

- यह सुनिश्चित किया जाता है कि **सरकार जनता के प्रतिनिधि चलाएं** , राष्ट्रपति नहीं।
- **जिम्मेदार सरकार** की भावना को प्रतिबिंबित करता है ।
- **दक्षता (कैबिनेट के माध्यम से)** और **प्रतिनिधित्व (सीओएम के माध्यम से)** को संतुलित करता है ।
- नीतिगत निरंतरता और राजनीतिक जवाबदेही में सहायक।

मंत्रिपरिषद भारत की संसदीय प्रणाली में **कार्यकारी शासन की धुरी है** । जबकि इसकी प्रभावशीलता प्रधान मंत्री के नेतृत्व पर निर्भर करती है, इसकी **संस्थागत ताकत** सामूहिक निर्णय लेने, संवैधानिक जवाबदेही और विधायिका के प्रति जवाबदेही में निहित है।

भारत में **लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली, सुशासन और नीति प्रभावशीलता सुनिश्चित करने के लिए** एक गतिशील, अनुशासित और जवाबदेह CoM महत्वपूर्ण है ।

भारत में कैबिनेट प्रणाली

कैबिनेट नामक एक छोटा निकाय मंत्रिपरिषद का केंद्र होता है। इसमें केवल कैबिनेट मंत्री होते हैं। यह केंद्र/राज्य सरकार में अधिकार का वास्तविक केंद्र होता है।

मंत्रिमंडल की भूमिका

- यह हमारी राजनीतिक-प्रशासनिक प्रणाली में सर्वोच्च निर्णय लेने वाली संस्था है।
- यह केन्द्र/राज्य सरकार का मुख्य नीति निर्धारण निकाय है।
- यह केन्द्र/राज्य सरकार का सर्वोच्च कार्यकारी प्राधिकारी है।
- यह केन्द्रीय/राज्य प्रशासन का मुख्य समन्वयक है।
- यह राष्ट्रपति/राज्यपाल के लिए एक सलाहकार निकाय है और इसकी सलाह उन पर बाध्यकारी है।
- यह मुख्य संकट प्रबंधक है और इस प्रकार सभी आपातकालीन स्थितियों से निपटता है।
- यह सभी प्रमुख विधायी और वित्तीय मामलों से निपटता है।
- यह संवैधानिक प्राधिकारियों और वरिष्ठ सचिवालय प्रशासकों जैसी उच्च नियुक्तियों पर नियंत्रण रखता है।
- यह सभी विदेश नीतियों और विदेशी मामलों (केन्द्रीय मंत्रिमंडल) से संबंधित है।
- किचन कैबिनेट: यह एक अनौपचारिक निकाय है जिसमें प्रधानमंत्री और दो से चार प्रभावशाली सहयोगी शामिल होते हैं जिन पर उनका विश्वास होता है और जिनके साथ वे हर समस्या पर चर्चा कर सकते हैं। यह प्रधानमंत्री को महत्वपूर्ण राजनीतिक और प्रशासनिक मुद्दों पर सलाह देता है और महत्वपूर्ण निर्णय लेने में उनकी सहायता करता है।
- इसमें न केवल कैबिनेट मंत्री शामिल होते हैं, बल्कि प्रधानमंत्री के मित्र और परिवार के सदस्य जैसे बाहरी लोग भी शामिल होते हैं।

रसोई कैबिनेट के फायदे

- छोटी इकाई के कारण, यह एक बड़ी कैबिनेट की तुलना में अधिक कुशल निर्णय लेने वाली संस्था है।
- सदस्य अधिक बार मिल सकेंगे और अधिक तेजी से कारोबार निपटा सकेंगे।
- महत्वपूर्ण राजनीतिक मुद्दों पर निर्णय लेने में गोपनीयता बनाए रखने में सहायता करता है।

रसोई कैबिनेट के नुकसान

- सर्वोच्च निर्णय लेने वाली संस्था के रूप में मंत्रिमंडल के अधिकार और स्थिति को कम करता है।
- बाहरी व्यक्तियों को प्रभावशाली भूमिका निभाने की अनुमति देकर कानूनी प्रक्रिया को दरकिनार किया जाता है।
- इससे मंत्रिमंडल के अन्य सदस्यों में अविश्वास की भावना पैदा हो सकती है।

कैबिनेट समितियां

- कैबिनेट विभिन्न समितियों के माध्यम से काम करती है जिन्हें कैबिनेट समितियां कहा जाता है। इनका गठन प्रधानमंत्री/मुख्यमंत्री द्वारा समय की आवश्यकताओं और परिस्थिति के अनुसार किया जाता है। इसलिए, उनकी संख्या, नामकरण और संरचना समय-समय पर बदलती रहती है।
- वे न केवल मुद्दों को सुलझाते हैं और कैबिनेट के विचार के लिए प्रस्ताव तैयार करते हैं, बल्कि निर्णय भी लेते हैं। हालाँकि, कैबिनेट उनके निर्णयों की समीक्षा कर सकती है।

कैबिनेट समितियों की विशेषताएं:

- वे संविधान से बाहर हैं, यानी संविधान में उनका उल्लेख नहीं है। कार्य नियम उनकी स्थापना का प्रावधान करते हैं।
- वे दो प्रकार के होते हैं-स्थायी और तदर्थ। पहला स्थायी प्रकृति का होता है जबकि दूसरा अस्थायी प्रकृति का होता है।

फायदे

- वे मंत्रिमंडल के भारी कार्यभार को कम करने के लिए एक संगठनात्मक उपकरण हैं।
- वे नीतिगत मुद्दों की गहन जांच और प्रभावी समन्वय में भी सहायता करते हैं।
- समितियां समय और मानव संसाधनों के कुशल उपयोग को सुगम बनाती हैं।
- कैबिनेट का बहुमूल्य समय बचता है। छोटे आकार के कारण अधिक प्रभावी विचार-विमर्श होता है।
- यह मंत्रियों की मनमानी कार्रवाइयों पर अंकुश लगाता है। वे सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धांत की रक्षा करने में मदद करते हैं।
- इससे मंत्रिस्तरीय विशेषज्ञता के उपयोग को सुगम बनाने में मदद मिलती है।

नुकसान

वे सरकारी कामकाज के सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों को कवर नहीं करते हैं।

- वे किसी मामले पर तभी विचार कर सकते हैं जब उसे संबंधित मंत्री या मंत्रिमंडल द्वारा संदर्भित किया जाए।
- यदि जटिल समस्याओं पर सतत ध्यान देना है तथा महत्वपूर्ण नीतियों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में प्रगति की निरंतर समीक्षा करनी है, तो वे नियमित रूप से बैठक नहीं करते हैं, जो कि नितांत आवश्यक है।

पिछले वर्ष के प्रश्न
प्रश्न: राज्यसभा के सभापति के रूप में भारत के उपराष्ट्रपति की भूमिका पर चर्चा करें।- 2022
प्रश्न: राज्यपाल द्वारा विधायी शक्तियों के प्रयोग के लिए आवश्यक शर्तों पर चर्चा करें। राज्यपाल द्वारा अध्यादेशों को विधानमंडल के समक्ष रखे बिना उन्हें पुनः जारी करने की वैधानिकता पर चर्चा करें- 2022
प्रश्न: राष्ट्रपति द्वारा मृत्युदंड की सजा कम करने में देरी के उदाहरण न्याय से इनकार के रूप में सार्वजनिक बहस में आ गए हैं। क्या राष्ट्रपति द्वारा ऐसी याचिकाओं को स्वीकार/अस्वीकार करने के लिए कोई समय सीमा निर्धारित की जानी चाहिए? विश्लेषण- 2014
प्रश्न: मंत्रिमंडल का आकार उतना ही बड़ा होना चाहिए जितना सरकारी काम के लिए उचित हो और प्रधानमंत्री एक टीम के रूप में जितना बड़ा प्रबंधन कर सकें। तो सरकार की प्रभावशीलता किस हद तक मंत्रिमंडल के आकार से विपरीत रूप से संबंधित है? चर्चा- 2014

सरकारी मंत्रालय

परिचय

भारतीय संसदीय प्रणाली में, **मंत्रिपरिषद विभिन्न मंत्रालयों** के माध्यम से कार्य करती है , जिनमें से प्रत्येक को स्वास्थ्य, रक्षा, शिक्षा या वित्त जैसे विशिष्ट क्षेत्र सौंपे जाते हैं। मंत्रालय **सरकार के कार्यकारी अंग हैं** , जिनके माध्यम से सार्वजनिक नीतियों को **डिज़ाइन, कार्यान्वित और निगरानी किया जाता है** ।

वे **शासन के कार्यात्मक विभाजन का प्रतिनिधित्व करते हैं** , **विशेषज्ञता, जवाबदेही और विकेन्द्रीकृत निर्णय लेने को सक्षम बनाते हैं** ।

संवैधानिक और कानूनी आधार

- यद्यपि संविधान में "मंत्रालय" शब्द का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, फिर भी इसकी संरचना इस प्रकार है:
  - **अनुच्छेद 77** – भारत सरकार का कार्य संचालन।
  - **कार्य संचालन नियम, 1961** - मंत्रालय कैसे कार्य करते हैं, इसे परिभाषित करने के लिए अनुच्छेद 77(3) के तहत तैयार किया गया।
  - **कार्य आवंटन नियम, 1961** – प्रत्येक मंत्रालय को सौंपी गई जिम्मेदारियों की सूची।
- प्रत्येक मंत्रालय **का नेतृत्व एक मंत्री करता है** , जिसके सहायक निम्नलिखित होते हैं:
  - **सचिव** (शीर्ष नौकरशाह),
  - **संयुक्त/अतिरिक्त सचिव** ,
  - **निदेशालय** , **विभाग** और **स्वायत्त निकाय** (जैसे, पीएमओ के तहत नीति आयोग)।

मंत्रालयों का वर्गीकरण

क. कार्यात्मक डोमेन के आधार पर:

1. **मुख्य मंत्रालय** - राष्ट्रीय शासन और संवैधानिक कार्यों को संभालना (जैसे, गृह मंत्रालय, वित्त मंत्रालय, विदेश मंत्रालय)
2. **विकास मंत्रालय** – क्षेत्रीय प्रगति से संबंधित कार्य (जैसे, स्वास्थ्य, शिक्षा, ग्रामीण विकास, कृषि मंत्रालय)
3. **नियामक मंत्रालय** - विनियमन और अनुपालन से संबंधित कार्य (जैसे, विधि एवं न्याय मंत्रालय, पर्यावरण, कॉर्पोरेट मामले मंत्रालय)
4. **सामाजिक कल्याण मंत्रालय** – कमजोर वर्गों पर ध्यान केंद्रित करें (जैसे, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, सामाजिक न्याय, अल्पसंख्यक मामले मंत्रालय)

मंत्रालय की संरचना और कार्यप्रणाली

प्रमुख/मुखिया:

- **कैबिनेट मंत्री** (राजनीतिक कार्यकारी) - दृष्टिकोण निर्धारित करता है, विधायी समन्वय सुनिश्चित करता है।
- **राज्य मंत्रियों** और **उप मंत्रियों** द्वारा सहायता प्रदान की जाती है ।

नौकरशाही शाखा:

- **भारत सरकार के सचिव** – प्रशासनिक प्रमुख।
- संयुक्त/उप सचिवों और डोमेन-विशिष्ट अधिकारियों द्वारा समर्थित।
- नीति का क्रियान्वयन, कैबिनेट नोट तैयार करना, कार्मिक एवं वित्त का प्रबंधन करना।

क्षेत्रीय एजेंसियां:

- **संबद्ध/अधीनस्थ कार्यालय** – जैसे, शहरी मामलों के अंतर्गत सीपीडब्ल्यूडी
- **सांविधिक निकाय** - जैसे, शिक्षा मंत्रालय के अंतर्गत यूजीसी
- **स्वायत्त निकाय** - जैसे, नीति आयोग, आईसीएमआर, सीएसआईआर

मंत्रालयों के प्रमुख कार्य

- **नीति निर्माण** : नए विधेयक, सुधार और रणनीति तैयार करना (जैसे, राष्ट्रीय शिक्षा नीति)।
- **बजट योजना** : अनुदान के लिए वार्षिक मांग तैयार करना और व्यय का आवंटन करना।
- **कार्यान्वयन निरीक्षण** : पीएमएवाई, मनरेगा, आयुष्मान भारत जैसी केंद्रीय योजनाओं का प्रबंधन।
- **विधायी समन्वय** : कानूनों का मसौदा तैयार करना और संसद में जवाब देना।
- **निगरानी और मूल्यांकन** : आंतरिक लेखा परीक्षा, एमआईएस रिपोर्टिंग और प्रभाव अध्ययन आयोजित करना।
- **अंतर्राष्ट्रीय सहयोग** : क्षेत्र-विशिष्ट वैश्विक मंचों पर भारत का प्रतिनिधित्व करना (जैसे, पर्यावरण मंत्रालय के तहत सीओपी)।

सार्वजनिक नीति और शासन में भूमिका

- मंत्रालय **सार्वजनिक नीति के संरक्षक हैं** - विचार से लेकर कार्यान्वयन तक।
- उदाहरण:
  - स्वास्थ्य मंत्रालय ने भारत की **कोविड-19 टीकाकरण नीति का संचालन किया** ।
  - जल शक्ति मंत्रालय ने **जल जीवन मिशन शुरू किया** ।
  - वित्त मंत्रालय **केन्द्रीय बजट और आर्थिक सुधारों को आगे बढ़ाता है** ।

वे निम्नलिखित में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं:

- **नौकरशाही निरंतरता** सुनिश्चित करना ,
- **साक्ष्य-आधारित नीति निर्माण को** बढ़ावा देना ,
- **अंतर-मंत्रालयी समन्वय का** समर्थन करना , तथा
- गतिशील शासन परिदृश्य में **नीति अनुकूलनशीलता** सुनिश्चित करना ।

समकालीन सुधार और पहल

- **मिशन कर्मयोगी** - विभिन्न मंत्रालयों के अधिकारियों की क्षमता निर्माण।
- **केंद्रीकृत लोक शिकायत निवारण एवं निगरानी प्रणाली (सीपीजीआरएएमएस)** – मंत्रालयों का निष्पादन लेखापरीक्षा।
- **डिजिटल इंडिया पहल** - कागज रहित शासन के लिए ई-ऑफिस, ई-समीक्षा।
- **मंत्रालयों का विलय** : उदाहरण के लिए, शिक्षा मंत्रालय (एमएचआरडी का नाम बदला गया), जल संसाधन और पेयजल को मिलाकर जल शक्ति मंत्रालय बनाया गया।

मंत्रिस्तरीय प्रशासन में चुनौतियाँ

- **सिलो-आधारित कार्यप्रणाली** - मंत्रालयों के बीच समन्वय का अभाव (उदाहरणार्थ, पर्यावरण बनाम विद्युत)।
- **नौकरशाही विलंब** और निर्णयों का अति-केन्द्रीकरण।
- **रिक्तियां एवं स्टाफ की कमी** , विशेषकर मध्य-स्तर के पदों पर।
- **राजनीतिक हस्तक्षेप से** निष्पक्षता और व्यावसायिकता प्रभावित हो रही है।
- मंत्रालयों एवं योजनाओं के **परिणाम-आधारित मूल्यांकन का अभाव ।**

आगे बढ़ने का रास्ता

1. **अंतर-मंत्रालयी समन्वय को मजबूत करना** - कैबिनेट समितियां, एकीकृत डैशबोर्ड।
2. **परिणाम-आधारित प्रबंधन अपनाएं** – बजट को प्रदर्शन से जोड़ें।
3. **एनालिटिक्स और डेटा के साथ मंत्रालयों को सशक्त बनाएं** – एआई, एमआईएस और वास्तविक समय की निगरानी का उपयोग करें।
4. **निर्णय लेने का विकेन्द्रीकरण करें** – लाइन विभागों और क्षेत्रीय इकाइयों को सशक्त बनाएं।
5. **नीति क्षमता का निर्माण करें** – मंत्रालयों में नीति प्रयोगशालाएं और आंतरिक थिंक टैंक स्थापित करें।

मंत्रालय **सार्वजनिक शासन के इंजन हैं** । उनकी प्रभावशीलता **सरकारी कार्यक्रमों की सफलता, सुधारों की गति** और नागरिकों को दी जाने वाली **सेवाओं की गुणवत्ता निर्धारित करती है।**

सुशासन के युग में , उच्च पारदर्शिता, अंतर-एजेंसी सहयोग और नागरिक-केंद्रित दृष्टिकोण वाले **प्रदर्शन-संचालित मंत्रालय कल्याणकारी राज्य के संवैधानिक वादे को पूरा करने के लिए आवश्यक हैं** ।

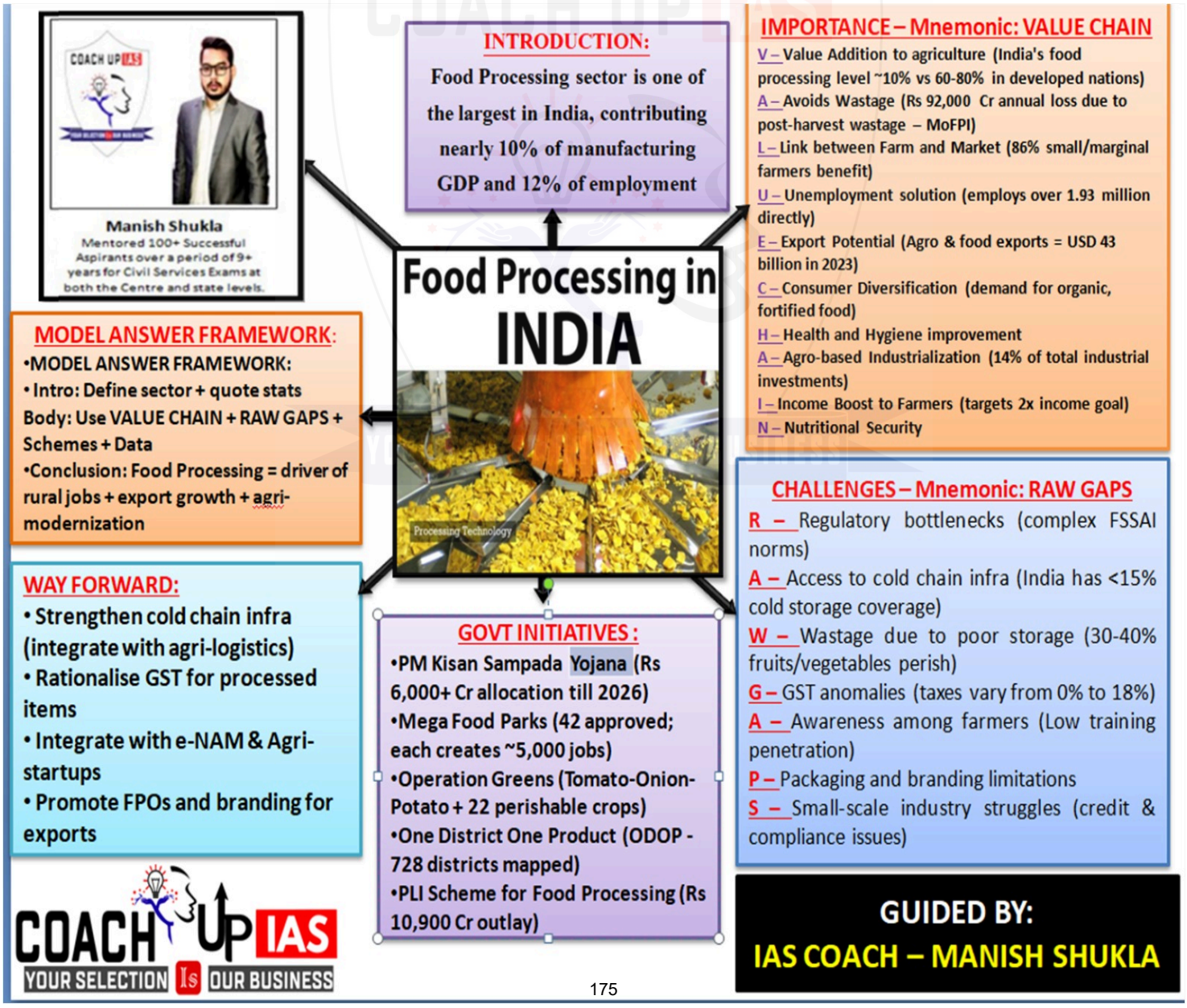

संसदीय समितियां

परिचय

संसदीय समितियाँ उन निकायों को संदर्भित करती हैं जो या तो संसद द्वारा निर्वाचित होती हैं या अध्यक्ष/सभापति द्वारा नामित होती हैं, और वे उनके अधिकार के तहत काम करती हैं। ये समितियाँ अपनी रिपोर्ट पीठासीन अधिकारियों को वापस सौंपती हैं और प्रशासनिक रूप से लोकसभा या राज्यसभा सचिवालय द्वारा समर्थित होती हैं।

संसदीय निगरानी तंत्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं , जिससे संसद को अपने कार्यों को अधिक प्रभावी ढंग से करने में मदद मिलती है, खासकर तब जब सदन में समय और संसाधन सीमित हों।

संसदीय समितियों की भूमिका और महत्व

कार्य-विशिष्ट विशेषज्ञता

- स्थायी समितियां वित्त, रक्षा आदि जैसे विशिष्ट क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करती हैं तथा दीर्घकालिक निगरानी प्रदान करती हैं।
- तदर्थ समितियां **अल्पकालिक उद्देश्यों के लिए स्थापित की जाती हैं** तथा सौंपे गए कार्य के पूरा होने पर उन्हें भंग कर दिया जाता है।

वित्तीय निगरानी बढ़ाना

- सरकारी बजट, खातों और लेखापरीक्षा रिपोर्टों की जांच करके ये समितियां सार्वजनिक व्यय में **दक्षता, मितव्ययिता और जवाबदेही को बढ़ावा देने में मदद करती हैं।**

हितधारक भागीदारी

- विषय समीक्षा के दौरान समितियां अक्सर विशेषज्ञों, नागरिक समाज, गैर सरकारी संगठनों और प्रभावित नागरिकों से परामर्श करती हैं।
- उदाहरण: वित्त समिति ने विमुद्रीकरण पर चर्चा के लिए आरबीआई गवर्नर को बुलाया, जिससे संसदीय समीक्षा में बाहरी दृष्टिकोण को भी शामिल किया जा सके।

विस्तृत विधायी समीक्षा

- पूर्ण सदन के विपरीत, समितियों के पास **विधेयकों की गहराई से** , प्रत्येक खंड की जांच करने के लिए समय और स्थान होता है।
- इससे अधिक सूचित निर्णय लेने और बेहतर कानून निर्माण की सुविधा मिलती है।

पूर्व-विधायी संघर्ष समाधान

- समितियां मसौदा कानूनों में समस्याग्रस्त प्रावधानों की पहचान करती हैं तथा सदन में पहुंचने से पहले **विवादास्पद मुद्दों को सुलझाने में मदद करती हैं।**
- उदाहरण: **भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम में संशोधन** समिति की सिफारिशों के माध्यम से किया गया।

गैर-पक्षपातपूर्ण विचार-विमर्श को बढ़ावा देना

- चूंकि समिति के विचार-विमर्श में दल **-बदल विरोधी कानून लागू नहीं होता** , इसलिए सदस्य दलीय दबाव के बिना स्वतंत्र रूप से अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं, जिससे **आम सहमति बनाने में मदद मिलती है** ।

समिति के कामकाज को प्रभावित करने वाली चुनौतियाँ

बिल रेफरल में गिरावट

- कई महत्वपूर्ण विधेयक, जैसे कि **आरटीआई (संशोधन) अधिनियम, 2019** और **यूएपीए संशोधन अधिनियम, 2019** , समिति की जांच के बिना पारित कर दिए गए, जिससे विधायी पुनरीक्षण के अवसर कम हो गए।

कम उपस्थिति

- समितियों में केवल ~50% **औसत उपस्थिति देखी गई है** , जो सदस्यों में गंभीरता की कमी को दर्शाती है।

तकनीकी अंतराल

- साइबर गवर्नेंस, डिजिटल वित्त या पर्यावरण विनियमन जैसे जटिल मामलों के मूल्यांकन के लिए आवश्यक **डोमेन ज्ञान या नीति विशेषज्ञता का** अभाव हो सकता है ।

पक्षपातपूर्ण व्यवहार

- संवेदनशील या हाई-प्रोफाइल मामलों में, समिति की चर्चाएं अक्सर **पार्टी की स्थिति को प्रतिबिंबित करती हैं** , जिससे समिति की विचार-विमर्श की भावना कमजोर होती है।

अपर्याप्त समय सीमा

- अधिकांश समितियों का एक वर्ष का कार्यकाल **निरंतरता या विशेषज्ञता का निर्माण करना कठिन बना देता है** , विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहां दीर्घकालिक विश्लेषण की आवश्यकता होती है।
- उदाहरण: आईटी समिति समय की कमी के कारण **डिजिटल सुरक्षा और महिलाओं की ऑनलाइन सुरक्षा पर अपनी रिपोर्ट पूरी नहीं कर सकी।**

सीमित संसदीय सहभागिता

- समिति की रिपोर्टों को अक्सर **सदन की बहसों में नजरअंदाज कर दिया जाता है** और वे बाध्यकारी नहीं होतीं, जिससे वास्तविक नीति-निर्माण पर उनका प्रभाव सीमित हो जाता है।

आगे बढ़ने का रास्ता

संविधान के कार्यकरण की समीक्षा के लिए राष्ट्रीय आयोग (एनसीआरडब्ल्यूसी) और अन्य निकायों की सिफारिशें समिति के प्रदर्शन को पुनर्जीवित करने में मदद कर सकती हैं:

कार्यकाल बढ़ाएँ

- **कार्यकाल कम से कम 2 वर्ष** होना चाहिए , जिससे अधिक सतत ध्यान और विषय विशेषज्ञता प्राप्त हो सके। राज्य सभा ने डीआरएससी के लिए इस पर विचार किया है।

वैश्विक सर्वोत्तम प्रथाओं का परिचय दें

- **समितियों के समक्ष मंत्रिस्तरीय ब्रीफिंग को** प्रोत्साहित करें , तथा व्यवस्थित जांच सुनिश्चित करने के लिए समितियों को विधेयक भेजने के लिए **पारदर्शी मानदंड अपनाएं।**

संस्थागत समर्थन

- **समर्पित अनुसंधान प्रकोष्ठों** की स्थापना करना , जिससे उन्हें जटिल आर्थिक, कानूनी या वैज्ञानिक मुद्दों से निपटने में सहायता मिल सके।

समय-समय पर प्रदर्शन का मूल्यांकन करें

- यदि आवश्यक हो तो **मध्यावधि सुधार को** सक्षम करने के लिए समिति के परिणामों और सदस्य भागीदारी के लिए मापन योग्य निष्पादन संकेतक अपनाएं ।

निष्कर्ष

संसद की बैठकों की संख्या में लगातार गिरावट के साथ - 1950 के दशक में 120-140 दिनों से लेकर **आज प्रति वर्ष 70 दिनों से भी कम - संसदीय समितियाँ विस्तृत जांच, द्विदलीय संवाद और संस्थागत निरंतरता** के लिए महत्वपूर्ण संस्थाओं के रूप में काम करती हैं । **कुशल कानून , मजबूत कार्यकारी जवाबदेही** और **लोकतांत्रिक शासन** सुनिश्चित करने के लिए उन्हें मजबूत करना महत्वपूर्ण है ।

जन प्रतिनिधित्व अधिनियम

परिचय

जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950

- भारत के प्रथम आम चुनावों से पूर्व अनंतिम **संसद द्वारा अधिनियमित ।**
- संविधान के **अनुच्छेद** 327 के प्राधिकार के तहत पारित किया गया ।
- **चुनावों के लिए आधारभूत कार्य पर ध्यान केंद्रित करता है** , जिसमें शामिल हैं:
  - **लोक सभा और राज्य विधान सभाओं** में **सीटों** का आवंटन .
  - निर्वाचन क्षेत्रों का **परिसीमन ।**
  - **मतदाता पात्रता** का निर्धारण और **मतदाता सूची** तैयार करना ।
  - **संघ राज्य क्षेत्रों** से **राज्य सभा** में सीटें भरने की विधि .

जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951

- **चुनावों के वास्तविक संचालन** से संबंधित :
  - संसद (**लोकसभा** और राज्यसभा),
  - राज्य **विधानमंडल** (जहां लागू हो, निचले और ऊपरी दोनों सदन)।
- प्रमुख प्रावधानों में निम्नलिखित शामिल हैं:
  - **चुनाव प्रक्रियाएं** , जिनमें **नामांकन, प्रचार, मतदान** और **मतगणना शामिल हैं** ।
  - भ्रष्ट आचरण या चुनावी अपराध जैसे आधार पर **उम्मीदवारों को अयोग्य ठहराने** का प्रावधान ।
  - चुनाव न्यायाधिकरणों (जो बाद में उच्च न्यायालयों में निहित कर दिए गए) के माध्यम से **चुनाव विवादों के समाधान** के लिए तंत्र ।

अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं

- यह चुनाव और उप-चुनावों के आयोजन को विनियमित करता है।
- यह चुनाव कराने के लिए प्रशासनिक बुनियादी ढांचा उपलब्ध कराता है।
- यह राजनीतिक दल पंजीकरण से संबंधित है।
- यह सदन की सदस्यता के लिए आवश्यकताओं और अयोग्यताओं को परिभाषित करता है।
- इसमें भ्रष्टाचार और अन्य अपराधों से निपटने के लिए कानून शामिल हैं।
- इसमें चुनावों से उत्पन्न समस्याओं और विवादों को हल करने की प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है।

महत्व

- **लोकतंत्र को मजबूत बनाना** : ये अधिनियम संविधान के चुनावी प्रावधानों को क्रियान्वित करते हैं और राज्यसभा सदस्यों के कार्यकाल को परिभाषित करने और चुनावी तंत्र की संरचना जैसे अंतरालों को दूर करके लोकतांत्रिक प्रक्रिया को सक्षम बनाते हैं।
- **समानता कायम रखना** : **लोकसभा और राज्य विधानसभा** दोनों चुनावों के लिए **एक ही मतदाता सूची सुनिश्चित करके** और **एक से अधिक पंजीकरणों को रोककर** , कानून सभी नागरिकों के लिए समान राजनीतिक भागीदारी के सिद्धांत की रक्षा करता है।
- **राजनीतिक व्यवस्था को स्वच्छ बनाना :** आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों की **अयोग्यता** से संबंधित प्रावधान राजनीति में अपराधीकरण को कम करने और स्वच्छ शासन को बढ़ावा देने में मदद करते हैं।
- **चुनावी पारदर्शिता को बढ़ावा देना : मतदाताओं के लिए सूचना के अधिकार** के साथ-साथ उम्मीदवारों की **संपत्ति, देनदारियों और आपराधिक**

रिकॉर्ड का खुलासा अनिवार्य करने वाले नियम चुनावी प्रक्रिया में जवाबदेही बढ़ाते हैं।

- **स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करना** : **भ्रष्ट आचरण को परिभाषित करके, निर्वाचन अधिकारियों** की भूमिका को विनियमित करके तथा सख्त मानदंड स्थापित करके, ये अधिनियम समान अवसर उपलब्ध कराने तथा **चुनाव की अखंडता को बनाए रखने का समर्थन करते हैं** ।

चुनौतियां

- सत्ताधारी पार्टी को लाभ: आरपीए में सरकारी मशीनरी के दुरुपयोग और चुनावी फंडिंग के मामले में सत्ताधारी पार्टी को होने वाले लाभ को कम करने के लिए स्पष्ट प्रावधान और दिशा-निर्देश नहीं हैं। उदाहरण के लिए, भाजपा को चुनावी बॉन्ड के माध्यम से लगभग 95% फंडिंग मिली है।
- आपराधिक तत्वों को रोकना: जनप्रतिनिधित्व अधिनियम में प्रावधान होने के बाद भी वर्तमान लोकसभा में लगभग 43% सांसदों के विरुद्ध आपराधिक मामले लंबित हैं।
- सोशल मीडिया: सोशल मीडिया ने चुनाव प्रचार की खामोशी को धुंधला कर दिया है और मतदाताओं को सूक्ष्म स्तर पर लक्षित करने में भी सक्षम बना दिया है।
- दलों का पंजीकरण रद्द करने की शक्ति: भारत निर्वाचन आयोग के पास उन राजनीतिक दलों का पंजीकरण रद्द करने की शक्ति नहीं है जो चुनाव नहीं लड़ते हैं तथा केवल धन प्राप्त करने के लिए काम करते हैं।
- राजनीति का नौकरशाहीकरण: भारत निर्वाचन आयोग के पास अपनी स्वयं की आधिकारिक मशीनरी नहीं है और उसे सरकार पर निर्भर रहना पड़ता है, जो स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों के लिए अनुकूल नहीं है।

आरपीए, 1951 में अयोग्यता के संबंध में प्रावधान

धारा 8: कुछ अपराधों के लिए दोषसिद्धि पर अयोग्यता

आरपीए, 1951 की धारा 8 में विशिष्ट अपराधों के लिए दोषी ठहराए गए उम्मीदवारों के लिए अयोग्यता मानदंड की रूपरेखा दी गई है। इसे तीन प्रमुख उपधाराओं में विभाजित किया गया है:

धारा 8(1): विशिष्ट अपराधों के लिए अयोग्यता

यदि किसी व्यक्ति को निम्नलिखित कानूनों के तहत दोषी ठहराया जाता है तो वह अयोग्य हो जाता है:

- भारतीय दंड संहिता
- नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955
- गैरकानूनी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1967
- भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988
- आतंकवाद निवारण अधिनियम, 2002, आदि।

अयोग्यता अवधि:

- यदि **केवल जुर्माने से दंडित किया गया हो → दोषसिद्धि की तिथि से 6 वर्ष के लिए अयोग्य घोषित किया जाएगा** ।
- यदि **कारावास से दण्डित किया गया हो → दोषसिद्धि की तिथि से 6 वर्ष के लिए अयोग्य घोषित किया जाएगा** , तथा कारावास की अवधि तक वह पद पर बना रहेगा।

धारा 8(2): सामाजिक और आर्थिक अपराधों के लिए अयोग्यता

निम्नलिखित के अंतर्गत दोषसिद्धि से अयोग्यता हो जाती है:

- **जमाखोरी और मुनाफाखोरी** के खिलाफ कानून
- **खाद्य पदार्थों या दवाओं में मिलावट** रोकने के लिए अधिनियम

- **दहेज निषेध अधिनियम, 1961**

धारा 8(3): सामान्य अयोग्यता

कोई भी व्यक्ति जिसे दोषी ठहराया गया है और **न्यूनतम 2 वर्ष के कारावास की सजा सुनाई गई है** (8(1) या 8(2) के तहत अपराधों को छोड़कर):

- **दोषसिद्धि की तिथि से अयोग्य**
- **रिहाई के बाद 6 साल** तक अयोग्य घोषित

अयोग्य उम्मीदवारों के लिए उपलब्ध उपाय

धारा 11 – चुनाव आयोग (ईसीआई) को अपील

- धारा 8 के अंतर्गत अयोग्य घोषित किया गया व्यक्ति, **भ्रष्ट आचरण से संबंधित मामलों को छोड़कर , अयोग्यता को हटाने या कम करने के** लिए **भारत के चुनाव आयोग में आवेदन कर सकता है** ।

धारा 116A – सर्वोच्च न्यायालय में अपील

- यदि **उच्च न्यायालय में चुनाव याचिका के परिणामस्वरूप अयोग्यता उत्पन्न होती है** तो व्यक्ति **धारा 116 ए** के अंतर्गत **सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर कर सकता है** ।

अन्य अपराध:

- यदि किसी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है और दो या अधिक वर्ष की जेल की सजा सुनाई जाती है, तो वह अयोग्य हो जाता है।
- यदि कोई व्यक्ति भ्रष्ट आचरण में लिप्त है।
- यदि किसी व्यक्ति को भ्रष्टाचार या बेईमानी के कारण सरकारी पद से बर्खास्त कर दिया जाता है।
- यदि कोई व्यक्ति वाणिज्य या व्यवसाय के दौरान सरकार के साथ अनुबंध करता है या सरकार को माल की आपूर्ति करता है।
- यदि कोई व्यक्ति किसी कंपनी या निगम (सहकारी समिति के अलावा) का प्रबंध एजेंट, प्रबंधक या सचिव है, जिसमें सरकार की कम से कम 25% हिस्सेदारी है।
- यदि कोई व्यक्ति समय पर अपने चुनाव व्यय का लेखा-जोखा दाखिल करने में असफल रहता है।

मतदान के लिए अयोग्यताएँ:

- किसी व्यक्ति को छह वर्ष की अवधि के लिए किसी भी चुनाव में मतदान करने से अयोग्य घोषित किया जाता है यदि वह निम्नलिखित अपराधों में दोषी पाया जाता है:
- आईपीसी, 1860: चुनाव में रिश्वतखोरी और अनुचित प्रभाव या प्रतिरूपण का अपराध
- आरपीए, 1951: चुनाव के संबंध में वर्गों के बीच दुश्मनी को बढ़ावा देने का अपराध; मतदान केंद्रों से मतपत्रों को हटाना; किसी नामांकन पत्र को धोखे से विकृत करना या नष्ट करना।

निर्णय

- सर्वोच्च न्यायालय ने 2013 में (लिली थॉमस मामले में) चौथी उपधारा 8 (4) को पलट दिया: इस धारा ने दोषी विधायकों को अपनी सीट बरकरार रखने की अनुमति दी, बशर्ते कि वे अपनी सजा के तीन महीने के भीतर अपील दायर करें। लिली थॉमस बनाम भारत संघ मामले, 2013 में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रावधान रखा कि किसी विधायक की अयोग्यता
- संसद और राज्य विधानमंडल के सदस्य के रूप में चुनाव लड़ना दोषसिद्धि की तारीख से तीन महीने तक नहीं चलेगा, क्योंकि इसे असंवैधानिक माना गया है और दोषसिद्धि पर तत्काल अयोग्यता का प्रावधान किया गया है।
- 2013 में पटना उच्च न्यायालय ने न्यायिक या पुलिस हिरासत में किसी भी व्यक्ति के चुनाव लड़ने पर रोक लगा दी थी। विधि आयोग की

244वीं रिपोर्ट की सिफारिशों को लागू किया जाना चाहिए, यानी राजनीति के अपराधीकरण को रोकने के लिए आरोप तय करने के चरण में अयोग्यता के साथ-साथ अन्य कानूनी सुरक्षा उपाय भी किए जाने चाहिए।

<u>राजनीतिक दलों का पंजीकरण</u>

भारत के निर्वाचन आयोग के साथ राजनीतिक दलों का पंजीकरण:

चुनाव आयोग राजनीतिक दलों को इस प्रकार सूचीबद्ध करता है-

- राष्ट्रीय पार्टी,
- राज्य पार्टी या
- पंजीकृत गैर मान्यता प्राप्त पार्टी.

चुनाव चिह्न (आरक्षण एवं आवंटन) आदेश, 1968 राष्ट्रीय या राज्य स्तरीय पार्टी के रूप में वर्गीकृत होने के लिए आवश्यक शर्तें निर्दिष्ट करता है।

राष्ट्रीय या राज्य स्तरीय पार्टी के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए किसी राजनीतिक दल को निम्नलिखित में से कोई एक शर्त पूरी करनी होगी:

राष्ट्रीय पार्टी	राज्य पार्टी
4 या अधिक राज्यों में लोकसभा या विधान सभा चुनाव में 6% वैध वोट + 4 लोकसभा सीटें	▪ राज्य में विधान सभा चुनावों में 6% वैध वोट + 2 विधानसभा ▪ राज्य में लोकसभा चुनाव में 6% वैध वोट + 1 लोकसभा सीट
3 राज्यों से 2% लोकसभा सीटें	▪ 3% या 3 विधान सभा सीटें, जो भी अधिक हो ▪ 1/25 लोकसभा सीटें
4 राज्यों में राज्य स्तरीय पार्टी	▪ किसी राज्य में लोकसभा या विधान सभा चुनाव में 8% वैध वोट

चुनाव आयोग के साथ पंजीकृत निम्नलिखित राजनीतिक दलों को पंजीकृत माना जाता है

<u>गैर मान्यता प्राप्त पार्टियाँ:</u>

- गैर-मान्यता प्राप्त दल नव पंजीकृत दल हैं,
- वे पार्टियाँ जिन्हें विधानसभा या आम चुनावों में राज्य स्तरीय पार्टी बनने के लिए पर्याप्त प्रतिशत वोट नहीं मिले हैं, और
- ऐसी पार्टियाँ जिन्होंने पंजीकृत होने के बाद से कभी चुनाव नहीं लड़ा।

<u>मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों को लाभ:</u>

- प्रस्तावकों से छूट: मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के उम्मीदवारों को नामांकन दाखिल करते समय दस प्रस्तावकों की सदस्यता की आवश्यकता नहीं होती है।
- समय के न्यायसंगत हिस्से का आवंटन: पिछले प्रदर्शन के आधार पर, पंजीकृत मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों को आम चुनावों के दौरान आकाशवाणी/दूरदर्शन पर प्रसारण/टेलीकास्ट सुविधाएं मिलती हैं।
- स्टार प्रचारकों का यात्रा व्यय: स्टार प्रचारकों के यात्रा व्यय का हिसाब उनकी पार्टी के उम्मीदवारों के चुनाव व्यय रिकार्ड में नहीं लगाया जाता है।
- मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के अभ्यर्थियों को मतदाता सूची की प्रतियों की निःशुल्क आपूर्ति।
- आरक्षित प्रतीक: पंजीकृत मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के उम्मीदवारों को आरक्षित प्रतीक मिलते हैं।
- मतदान का स्थगन: पंजीकृत मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के किसी उम्मीदवार की मृत्यु होने पर, निर्वाचन अधिकारी मतदान को बाद की तिथि तक स्थगित कर देता है।

<u>टिप्पणियाँ</u> : समय का न्यायसंगत बंटवारा, जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 62, विधि आयोग, समानता सुनिश्चित करना, गैर-अपराधीकरण, स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव।

जानने का अधिकार

- सूचना का अधिकार: किसी उम्मीदवार को अपने नामांकन पत्र में निम्नलिखित के बारे में जानकारी देनी होगी, चाहे:

- उस पर दो वर्ष या उससे अधिक के कारावास से दंडनीय किसी अपराध का आरोप है, जहां आरोप सक्षम न्यायालय द्वारा तय किए गए हों;
- यदि उसे किसी अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है और एक वर्ष या उससे अधिक के कारावास की सजा सुनाई जाती है।

मतदाताओं के सूचना के अधिकार पर सर्वोच्च न्यायालय का फैसला	
मामला	सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय
एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स बनाम भारत संघ, 2002	अभ्यर्थी को अपने आपराधिक इतिहास, शैक्षिक योग्यता और सम्पत्ति के संबंध में जानकारी देनी होगी।
पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम भारत संघ, 2003	मतदाताओं को पद के लिए उम्मीदवारों की प्रासंगिक योग्यताएं जानने का मौलिक अधिकार है, जिसमें उनकी आय और संपत्ति के बारे में जानकारी भी शामिल है। तदनुसार, जन प्रतिनिधि कानून, 1951 की धारा 33बी को असंवैधानिक माना गया, जिसमें कहा गया था कि उम्मीदवारों को उनके आपराधिक रिकॉर्ड के अलावा अपने बारे में कोई अन्य जानकारी बताने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।
रिसर्जेंस इंडिया केस, 2012	रिटर्निंग अधिकारियों के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया कि वे उन नामांकन पत्रों को अस्वीकार कर दें जिनके साथ अपूर्ण/रिक्त शपथ पत्र संलग्न हों।
कृष्णमूर्ति बनाम शिवकुमार एवं अन्य, 2015	सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला दिया कि कानून के अनुसार, नामांकन पत्र दाखिल करते समय उम्मीदवार के आपराधिक इतिहास (विशेष रूप से गंभीर अपराध) का खुलासा किया जाना चाहिए।
लोक प्रहरी बनाम चुनाव आयोग, 2018	सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्र को निर्देश दिया कि वह दिशा-निर्देशों के साथ-साथ उम्मीदवारों द्वारा अपने नामांकन पत्र के साथ प्रस्तुत किए जाने वाले प्रकटीकरण फॉर्म में भी बदलाव करे, ताकि वे स्वयं तथा अपने जीवनसाथी और आश्रितों के लिए आय के स्रोत के बारे में भी बता सकें।

परिसंपत्तियों और देनदारियों की घोषणा (धारा 75ए – आरपीए, 1951)

- **अनिवार्य प्रकटीकरण** : **शपथ ग्रहण के 90 दिनों के भीतर** , प्रत्येक निर्वाचित सांसद को घोषणा करनी होगी:
  - स्वयं उनके, उनके पति/पत्नी तथा आश्रित बच्चों के व्यक्तिगत या संयुक्त रूप से स्वामित्व वाली **चल और अचल संपत्तियों** का विवरण ।
  - केन्द्र या राज्य सरकार और किसी सार्वजनिक वित्तीय संस्थान के प्रति **वित्तीय देनदारियाँ ।**
- **नियम बनाने का प्राधिकार** : **लोक सभा के अध्यक्ष** या **राज्य सभा के सभापति को** इन प्रकटीकरणों को नियंत्रित करने वाले नियम बनाने का अधिकार है।
- **विशेषाधिकार का उल्लंघन** : इस नियम का **जानबूझकर किया गया उल्लंघन संसदीय विशेषाधिकार का उल्लंघन** माना जाएगा ।

चुनाव व्यय (धारा 77 – आरपीए, 1951)

- **खाता रखरखाव** : प्रत्येक चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार को **नामांकन की तारीख** से लेकर **परिणामों की घोषणा** तक अपने **चुनाव-संबंधी खर्चों का स्पष्ट और सटीक रिकॉर्ड रखना होगा** ।
- **प्रस्तुत करने की समय-सीमा** : यह विवरण परिणाम की घोषणा के **30 दिनों** के भीतर **जिला निर्वाचन अधिकारी को प्रस्तुत किया जाना चाहिए।**
- **छूट : राजनीतिक दलों के "स्टार प्रचारकों" की यात्रा** से संबंधित व्यय , चाहे हवाई या अन्य माध्यम से हो, व्यक्तिगत उम्मीदवार के खाते से **बाहर रखा जाता है।**

भ्रष्ट आचरण (धारा 123 – आरपीए, 1951)

धारा 123 **कुछ कार्यों को "भ्रष्ट आचरण" के रूप में चिन्हित करती है** , यदि वे उम्मीदवारों या उनके एजेंटों द्वारा किए गए हों:

प्रमुख अपराधों में शामिल हैं:

1. **सांप्रदायिक घृणा फैलाना** : **धर्म, नस्ल, जाति, समुदाय या भाषा** के आधार पर **समुदायों के बीच दुश्मनी को बढ़ावा देना** ।
2. **सती प्रथा का महिमामंडन करना : सती प्रथा** के कृत्य या महिमामंडन को बढ़ावा देना या प्रचारित करना ।
3. **रिश्वतखोरी :** मतदाता के व्यवहार को प्रभावित करने या उम्मीदवारी में हेरफेर करने के लिए कोई **उपहार, धन या प्रलोभन देना।**
4. **अनुचित प्रभाव : मतदाताओं की स्वतंत्रता** में हस्तक्षेप या डराना , जिसमें उम्मीदवारों या मतदाताओं को धमकी देना शामिल है।
5. **धार्मिक अपील** : चुनावी लाभ के लिए **धर्म, जाति, नस्ल या सामुदायिक पहचान** या **राष्ट्रीय/धार्मिक प्रतीकों** (जैसे, राष्ट्रीय ध्वज, प्रतीक) का उपयोग करना।
6. **सरकारी प्रभाव** : **राजपत्रित अधिकारियों** , **न्यायाधीशों** , **सशस्त्र बलों के कर्मियों** आदि जैसे सरकारी पदाधिकारियों से **समर्थन (मतदान को छोड़कर) प्राप्त करना।**
7. **बूथ कैप्चरिंग** : वोटों में हेराफेरी करने के लिए मतदान केंद्र पर कब्ज़ा करना या नियंत्रण करना।
8. **झूठे बयान** : किसी उम्मीदवार के व्यक्तिगत आचरण या चरित्र के बारे में **अपमानजनक या झूठी सामग्री प्रकाशित करना।**
9. **व्यय उल्लंघन** : **स्वीकार्य व्यय सीमा से अधिक व्यय करना** या लेखांकन नियमों का उल्लंघन करना।
10. **मतदाताओं का निःशुल्क परिवहन** : मतदाताओं (प्रत्याशी के परिवार या एजेंट के अलावा) को मतदान केन्द्रों तक या वहां से लाने के लिए **निःशुल्क परिवहन की सुविधा प्रदान करना।**

न्यायिक व्याख्या:

- **अभिराम सिंह बनाम सीडी कॉमचेन (2017)** में , **सर्वोच्च न्यायालय** ने फैसला सुनाया कि:
  - भारत में चुनाव **धर्मनिरपेक्ष प्रकृति के होते हैं** ।
  - **धर्म, जाति, भाषा या समुदाय के आधार पर वोट की अपील करना धारा 123(3)** के तहत **भ्रष्ट आचरण** है ।

चुनावी अपराध – आरपीए, 1951 (अध्याय III)

प्रमुख अपराध:

1. **सार्वजनिक बैठकों में व्यवधान उत्पन्न करना** : चुनाव संबंधी सभाओं या अभियान कार्यक्रमों में बाधा डालने के लिए जानबूझकर व्यवधान उत्पन्न करना।
2. **एग्जिट पोल का समय से पहले प्रकाशन** : आधिकारिक समय से पहले एग्जिट पोल के परिणामों का प्रसार करना - मतदान शुरू होने से लेकर मतदान के 30 मिनट बाद तक प्रतिबंधित।
3. **गुमनाम चुनाव सामग्री** : मुद्रक और प्रकाशक के नाम और पते का स्पष्ट उल्लेख किए बिना पर्चे/पोस्टर का वितरण।
4. **सांप्रदायिक घृणा भड़काना** : चुनाव के संबंध में धर्म, जाति, भाषा, नस्ल या समुदाय के आधार पर समूहों के बीच दुश्मनी को बढ़ावा देना।
5. **नामांकन में झूठी घोषणाएं** : शपथपत्रों या नामांकन पत्रों में तथ्यों को छिपाना या गलत बयान देना।
6. **देर रात सार्वजनिक बैठकें** : मतदान समाप्त होने से 48 घंटे पहले तक राजनीतिक सभाएं आयोजित करना प्रतिबंधित है।
7. **बूथ कैप्चरिंग** : मतदान केंद्रों पर बलपूर्वक कब्जा करना या उनमें हेराफेरी करना एक गंभीर अपराध है।
8. **सरकारी दस्तावेजों के साथ छेड़छाड़** : रिटर्निंग अधिकारी द्वारा रखे गए नोटिस, मतदाता सूची या अन्य सामग्री को ख़राब करना/हटाना।
9. **मतदान गोपनीयता का उल्लंघन** : गोपनीय मतदान प्रक्रियाओं का खुलासा करना या उसमें हस्तक्षेप करना।
10. **अधिकारियों द्वारा पद का दुरुपयोग** : चुनाव अधिकारियों द्वारा मतदाताओं के पक्ष में प्रचार करना या उन्हें प्रभावित करना तटस्थता के मानदंडों का उल्लंघन है।
11. **मतपत्रों का अवैध संचालन** : बिना अनुमति के मतदान केन्द्रों के बाहर मतपत्रों को ले जाना।

अन्य उल्लेखनीय अपराध:

- **मतदान केन्द्रों के पास प्रचार-प्रसार**
- **मतदान परिसर में या उसके आसपास दुर्व्यवहार**
- **मतदान केन्द्र के अन्दर अनुचित आचरण**
- **निर्धारित मतदान प्रक्रिया से विचलन**
- **सरकारी चुनाव कर्तव्यों में लापरवाही**
- **मतदान केन्द्रों पर हथियार लाना**
- **चुनाव के दिन कर्मचारियों को सवेतन अवकाश न दिया जाना**
- **मतदान के दिन शराब का वितरण या बिक्री**

पेड न्यूज़: चुनावी लोकतंत्र के लिए ख़तरा

परिभाषा:

"प्रिंट या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में प्रकाशित होने वाली कोई भी खबर या विश्लेषण भुगतान (नकद या वस्तु) के बदले में" – *भारतीय प्रेस परिषद*

पेड न्यूज़ के नकारात्मक प्रभाव:

1. **राजनीति में धन-शक्ति** : काले धन का भुगतान पारदर्शिता को कमजोर करता है तथा चुनाव अभियान के वित्त-संबंधी कानूनों का उल्लंघन करता है।
2. **मतदाताओं को गुमराह करना** : मतदाता धोखा खा जाते हैं, वे सोचते हैं कि विज्ञापन ही वैध समाचार हैं, जिससे सूचित निर्णय लेने में बाधा उत्पन्न होती है।
3. **जनमत को विकृत करना** : उम्मीदवारों की झूठी छवि बनाना और जनता की भावनाओं से छेड़छाड़ करना।

4. **अनुचित चुनावी लाभ** : समान अवसर उपलब्ध कराना, मीडिया से सम्पर्क रखने वाले या वित्तीय रूप से मजबूत उम्मीदवारों को लाभ पहुंचाना।
5. **मीडिया समझौता** : लोकतंत्र के चौथे स्तंभ - मीडिया की स्वतंत्रता को कमजोर करता है।

कानूनी एवं नीतिगत अंतराल:

- **चुनावी अपराध नहीं** : वर्तमान आरपीए प्रावधानों के अंतर्गत पेड न्यूज को दंडनीय अपराध के रूप में वर्गीकृत नहीं किया गया है।
- **कमजोर प्रवर्तन** : अपराधियों पर केवल **व्यय का खुलासा न करने के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है** , भ्रामक सामग्री फैलाने के लिए नहीं।
- **पश्चातवर्ती उपाय** : क्षति को रोकने के लिए कोई वास्तविक समय हस्तक्षेप तंत्र नहीं।

सुझाए गए सुधार और आगे का रास्ता:

- *पेड न्यूज़ को* स्पष्ट चुनावी अपराध के रूप में शामिल करने के लिए **आरपीए, 1951 में संशोधन किया जाए ।**
- **मीडिया घरानों का ऑडिट करें** : विशेषकर अप्रत्यक्ष राजनीतिक वित्तपोषण का पता लगाने के लिए उनके राजस्व स्रोतों का।
- **एकल नियामक प्राधिकरण** : प्रिंट और डिजिटल/इलेक्ट्रॉनिक मीडिया दोनों के लिए।
- **प्रेस परिषद के दिशानिर्देश** : रिपोर्टिंग के लिए मतदान अवधि के सख्त मानदंड।
- **'नाम और शर्म' नीति** : मीडिया आउटलेट और उम्मीदवारों के बीच उल्लंघनकर्ताओं का सार्वजनिक रूप से खुलासा करना।
- **जन जागरूकता** : मतदाताओं को पक्षपातपूर्ण या मनगढ़ंत समाचारों की पहचान करने के लिए शिक्षित करना।

विधि आयोग (255वीं रिपोर्ट, 2015):

मीडिया हेरफेर के युग में चुनावी निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए **पेड न्यूज को चुनावी अपराध घोषित करने की** सिफारिश की गई ।

डाक मतपत्र के माध्यम से अनिवासी भारतीयों (एनआरआई) के लिए मतदान का अधिकार

ईटीपीबीएस – इलेक्ट्रॉनिक रूप से प्रेषित डाक मतपत्र प्रणाली

- **ईटीपीबीएस भारत के चुनाव आयोग (ईसीआई)** की एक डिजिटल पहल है , जो पात्र मतदाताओं को **डाक मतपत्रों की इलेक्ट्रॉनिक डिलीवरी को सक्षम बनाती है।**
- **सेवा मतदाताओं** (जैसे, सशस्त्र बल कर्मियों) द्वारा उपयोग किया जाता है ।
- मतदाता इलेक्ट्रॉनिक रूप से मतपत्र प्राप्त करते हैं तथा मतदान के बाद उसे **डाक द्वारा वापस भेजते हैं।**
- प्रणाली में **बहु-स्तरीय सुरक्षा शामिल है** :
    - **ओटीपी और पिन** के माध्यम से **दो-स्तरीय प्रमाणीकरण**
    - नकल और धोखाधड़ी को रोकने के लिए **क्यूआर कोड** का उपयोग
- पहली बार: सेवा मतदाताओं के लिए **ऑनलाइन पंजीकरण** एक समर्पित ईसीआई पोर्टल के माध्यम से उपलब्ध कराया गया।

एनआरआई मतदान अधिकार – पृष्ठभूमि

- **2011 में मतदान का अधिकार शुरू किया गया : जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950** में संशोधन के माध्यम से , अनिवासी भारतीयों को आधिकारिक तौर पर मतदान का अधिकार दिया गया।
- **अनिवासी भारतीयों के लिए मतदान की शर्तें** :
    - **केवल व्यक्तिगत रूप से** मतदान कर सकते हैं ।
    - मतदान **भारत में उनके निवास के निर्वाचन क्षेत्र में किया जाना चाहिए** , जैसा कि उनके **पासपोर्ट में उल्लिखित है** ।
    - एनआरआई को पहचान सत्यापित करने के लिए मतदान केंद्र पर **अपना मूल पासपोर्ट प्रस्तुत करना होगा।**

सुधारों का विकास:

- 2014 के लोकसभा चुनावों के बाद निम्नलिखित विकल्पों पर विचार करने के लिए एक **12 सदस्यीय समिति का गठन किया गया:**
    - विदेश स्थित भारतीय मिशनों में मतदान
    - डाक मतदान
    - इंटरनेट आधारित मतदान
- **2015** में समिति ने प्रस्ताव रखा:
    - **ई-पोस्टल बैलट** और
    - चुनावों में एनआरआई भागीदारी के लिए **अतिरिक्त मोड के रूप में प्रॉक्सी वोटिंग** विकल्प ।

आगे की चुनौतियां

1. **मतदाता प्रमाणीकरण संबंधी मुद्दे** :
    - विदेशी मतदान केंद्रों पर पार्टी प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति में उचित पहचान सत्यापन सुनिश्चित करने में कठिनाई।
2. **सुरक्षा चिंताएं** :
    - चुनाव आयोग को विदेशों में मतदान स्थलों पर निगरानी और सुरक्षा बनाए रखने के लिए तंत्र विकसित करना होगा।
3. **आदर्श आचार संहिता (एमसीसी)** :
    - विदेशी सरकारें भारत के एमसीसी प्रोटोकॉल को बनाए रखने के लिए **कानूनी रूप से बाध्य नहीं हैं** , जिससे मौन अवधि के उल्लंघन का खतरा हो सकता है।
4. **बुनियादी ढांचे की बाधाएं** :
    - भारतीय दूतावासों और वाणिज्य दूतावासों में चुनावों के दौरान बड़ी संख्या में अनिवासी भारतीय मतदाताओं की सेवा करने की **क्षमता का अभाव हो सकता है।**

आगे की राह

- **संपूर्ण व्यवहार्यता अध्ययन** :
    - विदेश मंत्रालय (एमईए) ने कार्यान्वयन से पहले **संभार-तंत्रीय व्यवहार्यता की व्यापक समीक्षा की आवश्यकता पर ध्यान दिया है।**
- **बुनियादी ढांचे की तैयारी** :
    - बड़े पैमाने पर मतदान को संभालने के लिए भारतीय दूतावासों में पर्याप्त **मतदान केंद्र, सुरक्षा और जनशक्ति सुनिश्चित की जानी चाहिए।**
- **मजबूत डिजिटल तंत्र** :

- **ईटीपीबीएस** को और मजबूत करना या सुरक्षित **प्रॉक्सी/ई-वोटिंग प्लेटफॉर्म विकसित करना** आवश्यक होगा।

पिछले वर्ष के प्रश्न

प्रश्न: संसद या राज्य विधानमंडल के सदस्य के चुनाव से उत्पन्न विवादों को जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के तहत निपटाने की प्रक्रियाओं पर चर्चा करें। वे कौन से आधार हैं जिन पर किसी निर्वाचित उम्मीदवार का चुनाव शून्य घोषित किया जा सकता है? निर्णय के विरुद्ध पीड़ित पक्ष के पास क्या उपाय उपलब्ध हैं? केस लॉ देखें।- 2022

प्रश्न: "जनप्रतिनिधित्व अधिनियम के तहत भ्रष्ट आचरण के दोषी पाए गए व्यक्तियों की अयोग्यता के लिए प्रक्रिया को सरल बनाने की आवश्यकता है।" टिप्पणी करें। (उत्तर 150 शब्दों में दें) - 2020

प्रश्न: जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के तहत किन आधारों पर किसी जनप्रतिनिधि को अयोग्य ठहराया जा सकता है? साथ ही, ऐसे व्यक्ति को उसकी अयोग्यता के विरुद्ध उपलब्ध उपायों का भी उल्लेख करें। (250 शब्द, 15 अंक)- 2019

भारतीय संवैधानिक योजना की अन्य देशों के साथ तुलना

तुलना: भारतीय संविधान बनाम अमेरिकी संविधान

पहलू	भारत (संसदीय लोकतंत्र)	संयुक्त राज्य अमेरिका (राष्ट्रपति लोकतंत्र)
संविधान का प्रकार	**आंशिक रूप से कठोर और आंशिक रूप से लचीला** - संहिताबद्ध और पारंपरिक संशोधनों का संयोजन	**कठोर और लिखित** - अनुच्छेद V के तहत औपचारिक संशोधन प्रक्रिया
सरकार के रूप में	**संसदीय** - कार्यपालिका विधायिका का हिस्सा है	**राष्ट्रपति** - कार्यपालिका और विधायिका के बीच शक्तियों का स्पष्ट पृथक्करण
अधिशाषी प्रमुख	**राष्ट्रपति (नाममात्र प्रमुख)** ; **प्रधानमंत्री (वास्तविक प्रमुख)**	**राष्ट्रपति** - राज्य का प्रमुख और सरकार का प्रमुख दोनों
कार्यकारिणी का चुनाव	राष्ट्रपति का अप्रत्यक्ष चुनाव; प्रधानमंत्री लोकसभा में बहुमत का नेता चुना जाता है	राष्ट्रपति का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचक मंडल द्वारा किया जाता है
शक्तियों का पृथक्करण	**सख्त नहीं** - शक्तियों के ओवरलैप के माध्यम से **जांच और संतुलन** का सिद्धांत	**सख्त पृथक्करण** - कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका स्वतंत्र हैं
विधानमंडल संरचना	**द्विसदनीय** - लोकसभा और राज्यसभा	**द्विसदनीय** – प्रतिनिधि सदन और सीनेट
विधायी सर्वोच्चता	संसद सर्वोच्च है लेकिन **संवैधानिक सीमाओं और न्यायिक समीक्षा के अधीन है**	कांग्रेस के पास विधायी सर्वोच्चता है, लेकिन **राष्ट्रपति के पास मजबूत वीटो शक्ति** मौजूद है
न्यायिक समीक्षा	**स्पष्ट रूप से प्रावधान है** (अनुच्छेद 13); सर्वोच्च न्यायालय संविधान का संरक्षक है	**व्यवहार के माध्यम से विकसित** (मारबरी बनाम मैडिसन); संविधान न्यायिक समीक्षा पर मौन है
अधिकार विधेयक / एफआरएस	**भाग III – मौलिक अधिकार** लागू करने योग्य और न्यायोचित	**पहले 10 संशोधन** - अधिकार विधेयक नागरिक स्वतंत्रता और अधिकार प्रदान करता है
निर्देशक सिद्धांत / एसडीजी	**राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत** - शासन के लिए गैर-न्यायसंगत मार्गदर्शक सिद्धांत	कोई समतुल्य प्रावधान नहीं; नीति और राज्य विधान पर अधिक निर्भर करता है
संशोधन प्रक्रिया	अनुच्छेद 368 – **अनेक प्रकार की प्रक्रियाएँ** , कुछ लचीली (साधारण बहुमत), कुछ कठोर	अनुच्छेद V - **कठोर** , अनुमोदन के लिए 2/3 कांग्रेस + 3/4 राज्यों की आवश्यकता है
आपातकालीन शक्तियां	विस्तृत आपातकालीन प्रावधान – **राष्ट्रीय, राज्य, वित्तीय** (अनुच्छेद 352, 356, 360)	संविधान में **कोई औपचारिक आपातकालीन शक्तियां नहीं हैं ; व्याख्या द्वारा शक्तियों का प्रयोग किया जाता है**
संघवाद	**अर्ध-संघीय** - मजबूत केंद्र (आपातकाल के दौरान एकात्मक पूर्वाग्रह)	**शुद्ध संघीय** - राज्य संप्रभुता का मजबूत घटक
सिटिज़नशिप	सभी भारतीयों के लिए **एकल नागरिकता**	**दोहरी नागरिकता** – अमेरिका और अलग-अलग राज्य
न्यायपालिका संरचना	**एकीकृत न्यायपालिका** - संघ और राज्यों के लिए एकल प्रणाली	**दोहरी न्यायपालिका** - संघीय और राज्य न्यायिक प्रणालियाँ स्वतंत्र रूप से संचालित होती हैं
संविधान में भाषा	भारतीय संविधान **कानूनी और आकांक्षात्मक दोनों भाषाओं का प्रयोग करता है**	अमेरिकी संविधान **संक्षिप्त एवं सिद्धांत-आधारित है**
संविधान की लंबाई	**सबसे लंबे लिखित संविधानों** में से एक (~450 अनुच्छेद + अनुसूचियाँ + संशोधन)	**सबसे छोटे लिखित संविधानों** में से एक (7 अनुच्छेद + 27 संशोधन)

भारतीय संवैधानिक योजना की ब्रिटेन से तुलना

- भारत और यूनाइटेड किंगडम की अलग-अलग संवैधानिक प्रणालियाँ हैं जो समय के साथ विकसित हुई हैं।
- भारत और यूनाइटेड किंगडम की संवैधानिक प्रणालियाँ, यद्यपि दोनों **संसदीय लोकतंत्र में निहित हैं** , अपने ऐतिहासिक विकास, संरचना और कार्य में उल्लेखनीय अंतर प्रदर्शित करती हैं। इस तुलना का उद्देश्य इन दो संवैधानिक प्रणालियों की प्रमुख विशेषताओं और सिद्धांतों की जांच करना और उनमें अंतर करना है, तथा उनकी समानताओं और असमानताओं पर प्रकाश डालना है ।

विशेषताएँ	भारतीय संविधान	ब्रिटेन का संविधान
संविधान की प्रकृति	**सबसे लम्बा लिखित संविधान:** • संविधान को एक ही दस्तावेज में समाहित किया गया है तथा इसे सावधानीपूर्वक और व्यवस्थित ढंग से लिखा गया है।	**अलिखित संविधान:** • इसे किसी एकल दस्तावेज़ में संहिताबद्ध नहीं किया गया है, बल्कि यह स्थापित रीति-रिवाजों, राजनीतिक प्रथाओं और परंपराओं पर आधारित है।
सिटिज़नशिप	• भारत का संविधान भारतीय नागरिकता और किसी विदेशी देश की नागरिकता एक साथ रखने की अनुमति नहीं देता है।	• ब्रिटेन में दोहरी नागरिकता (जिसे दोहरी राष्ट्रीयता भी कहा जाता है) की अनुमति है। • कोई व्यक्ति ब्रिटिश नागरिक भी हो सकता है और अन्य देशों का भी नागरिक हो सकता है।
संघवाद की प्रकृति	**संघीय चरित्र:** • भारत में संघीय शासन प्रणाली है, तथा एकात्मक शासन प्रणाली की ओर झुकाव है।	**एकात्मक चरित्र:** • ब्रिटिश संसद के पास सभी शासन शक्तियां हैं और वह सर्वोच्च प्राधिकारी है।
राज्य के प्रधान	• राष्ट्रपति **राज्य का प्रमुख** होता है **।** • राष्ट्रपति का चुनाव एक विशेष निर्वाचक मंडल द्वारा **अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है।** • राष्ट्रपति के पास मंत्रिपरिषद और अन्य प्रमुख सरकारी अधिकारियों को नियुक्त करने के साथ-साथ विधेयक पर वीटो लगाने या उसे पुनर्विचार के लिए वापस भेजने का अधिकार है।	• ब्रिटिश **सम्राट** यू.के. और राष्ट्रमंडल का **राष्ट्राध्यक्ष** होता है । • इसका निर्णय वंश, धर्म और ज्येष्ठाधिकार के आधार पर किया जाता है। • सम्राट के पास सरकारी अधिकारियों को नियुक्त या बर्खास्त करने का अधिकार नहीं है, तथा उसके पास कानून को वीटो करने या वापस भेजने का अधिकार नहीं है।
प्रधान मंत्री	• **संसद के किसी भी सदन** का सदस्य हो सकता है ।	• परम्परा के अनुसार, प्रधानमंत्री हमेशा **निचले सदन का सदस्य होगा।**
अलमारी	• भारतीय कैबिनेट प्रणाली छाया कैबिनेट रहित ब्रिटेन की राजनीतिक प्रणाली पर आधारित है।	• ब्रिटेन में **छाया मंत्रिमंडल** प्रणाली है, जिसमें प्रमुख विपक्षी दल शामिल हैं। • इसका उद्देश्य सरकार की नीतियों और कार्यों की जांच करना तथा वैकल्पिक नीतियां प्रस्तुत करना है।
संसद	• भारत के मामले में संविधान सर्वोच्च है। • भारत में, संविधान स्पष्ट रूप से संसद की शक्ति को परिभाषित और सीमित करता है, लेकिन अपने दायरे में, वह सर्वोच्च प्राधिकार रखती है।	• **संसदीय संप्रभुता** ब्रिटेन के संविधान का सिद्धांत है। यह संसद को ब्रिटेन में सर्वोच्च कानूनी प्राधिकारी बनाता है। • ब्रिटेन में संसद ही एकमात्र संस्था है जो संप्रभु शक्ति रखती है और किसी लिखित संविधान

		द्वारा सीमित नहीं है, क्योंकि वहां ऐसा कोई दस्तावेज मौजूद नहीं है।
विधायी शाखा	• लोक **सभा** और **राज्य परिषद** क्रमशः निचले और ऊपरी सदन हैं।	• हाउस **ऑफ कॉमन्स** और **हाउस ऑफ लॉर्ड्स** क्रमशः निचले और ऊपरी सदन हैं।
अध्यक्ष का कार्यालय	• स्पीकर का पद ब्रिटिश मॉडल के समान है। हालाँकि, ब्रिटेन में लागू होने वाली कुछ परंपराएँ भारत में मौजूद नहीं हैं। • विशेष रूप से, भारत में अध्यक्ष को अपने राजनीतिक दल से इस्तीफा देने की आवश्यकता नहीं होती है।	• ब्रिटेन में एक परंपरा है कि एक बार स्पीकर नियुक्त होने के बाद वह हमेशा स्पीकर ही रहता है, अर्थात एक बार जब कोई व्यक्ति स्पीकर के रूप में नियुक्त हो जाता है तो वह अपने राजनीतिक दल से औपचारिक इस्तीफा दे देता है। • इसका उद्देश्य कार्यालय की राजनीतिक तटस्थता बनाए रखना है।
मंत्री पद की जिम्मेदारी	• भारतीय संविधान में मंत्री की **कानूनी जिम्मेदारी का कोई उल्लेख नहीं है।**	• ब्रिटेन में, किसी भी सार्वजनिक कार्य के लिए राजा के प्रत्येक आदेश पर मंत्री द्वारा हस्ताक्षर किये जाते हैं। • राजा के नाम पर किए गए ब्रिटिश सरकार के प्रत्येक कार्य के लिए मंत्री ही संसद के प्रति उत्तरदायी होता है।
मौलिक अधिकार	• भारत में, संविधान नागरिकों को व्यापक मौलिक अधिकारों की गारंटी देता है, जिनमें समानता का अधिकार, भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता, जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार, शिक्षा का अधिकार और संपत्ति का अधिकार शामिल हैं। • इसके अतिरिक्त, भारतीय संविधान में राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत भी शामिल हैं, जिनका उद्देश्य सरकारी नीति का मार्गदर्शन करना और लोगों का कल्याण सुनिश्चित करना है।	• ब्रिटेन के पास ऐसा कोई भी दस्तावेज नहीं है जो मौलिक अधिकारों को उसी तरह से परिभाषित करता हो। • हालाँकि, ब्रिटेन में **1998 का मानवाधिकार अधिनियम है** , जो मानवाधिकारों पर यूरोपीय कन्वेंशन को घरेलू कानून में शामिल करता है। • यह नागरिकों को कुछ अधिकारों की गारंटी देता है, जैसे जीवन का अधिकार, यातना से मुक्ति, निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और एकत्र होने की स्वतंत्रता।
राज्य की नीतियों के निर्देशक सिद्धांत और मौलिक कर्तव्य	• राज्य की नीतियों के निर्देशक सिद्धांत और मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख क्रमशः संविधान के **भाग IV और IV-A के अंतर्गत किया गया है।**	• ब्रिटेन के संविधान में इसका उल्लेख नहीं है।
कानून का शासन	• **कानून का शासन** ब्रिटेन के कानून के शासन पर आधारित है, केवल एक अंतर के साथ। • भारतीय व्यवस्था में संविधान व्यक्तिगत अधिकारों का स्रोत है।	• संविधान व्यक्ति के अधिकारों का परिणाम है।
संशोधन प्रक्रिया	• न तो लचीला, न ही कठोर, बल्कि दोनों का संश्लेषण। • **अनुच्छेद 368:** संविधान में संशोधन केवल संसद में विधेयक प्रस्तुत करके किया जा सकता है, राज्य	• ब्रिटिश संविधान बहुत **लचीला संविधान है** । इसे ब्रिटिश संसद द्वारा पारित एक साधारण कानून द्वारा आंशिक या पूर्ण रूप से संशोधित किया जा सकता है।

	विधानसभाओं में नहीं। • प्रत्येक सदन को विधेयक को अलग-अलग पारित करना होगा। संविधान के संघीय प्रावधानों में संशोधन करने के लिए, किसी विधेयक को कम से कम आधे राज्यों की विधानसभा में साधारण बहुमत से भी अनुमोदित किया जाना चाहिए।	• ब्रिटेन में संविधान एक एकल दस्तावेज नहीं बल्कि कानूनों, परंपराओं और प्रथाओं का एक संग्रह है। • परिणामस्वरूप, संविधान में संशोधन के लिए कोई औपचारिक प्रक्रिया नहीं है। • ब्रिटेन में अधिकांश संवैधानिक परिवर्तन साधारण संसदीय कानून द्वारा किए जा सकते हैं।
न्यायतंत्र	• भारतीय संविधान का मूलभूत ढांचा न्यायिक समीक्षा पर निर्भर है। • भारत में न्यायिक कानूनों को **भारतीय दंड संहिता (आईपीसी)** और **दंड प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) में संहिताबद्ध किया गया है** । • भारत में **एकल एकीकृत न्यायिक प्रणाली है।** • सर्वोच्च न्यायालय इस कानून को रद्द कर सकता है। • भारतीय न्यायिक प्रणाली में मूल संरचना सिद्धांत विद्यमान है। • न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा अपने हस्ताक्षर और मुहर सहित वारंट द्वारा की जाती है।	• संसद की संप्रभुता के कारण, न्यायपालिका के पास संसद के किसी अधिनियम को अवैध घोषित करने का अंतर्निहित अधिकार नहीं है। • यूनाइटेड किंगडम में एक भी एकीकृत कानूनी प्रणाली नहीं है। • इसके बजाय, इंग्लैंड और वेल्स के लिए एक प्रणाली है, स्कॉटलैंड के लिए दूसरी प्रणाली है, तथा उत्तरी आयरलैंड के लिए तीसरी प्रणाली है। • भारत के सर्वोच्च न्यायालय के विपरीत, इसका सर्वोच्च न्यायालय किसी कानून को रद्द नहीं कर सकता है, लेकिन वह प्राकृतिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए महान सार्वजनिक और संवैधानिक महत्व के तत्वों के कार्यों की वैधानिकता की समीक्षा कर सकता है। • ब्रिटिश न्यायिक प्रणाली में मूल संरचना सिद्धांत नहीं है। • संवैधानिक **सुधार अधिनियम 2005 में** न्यायिक नियुक्ति आयोग का प्रावधान किया गया है।

भारतीय संवैधानिक योजना की फ्रांस से तुलना

पहलू	भारत	फ्रांस
सरकार के रूप में	संसदीय लोकतंत्र	अर्द्ध-अध्यक्षीय प्रणाली
राज्य के प्रधान	राष्ट्रपति (औपचारिक, विधिवत प्रमुख)	राष्ट्रपति (प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित, शक्तिशाली कार्यकारी प्रमुख)
सरकार का मुखिया	प्रधान मंत्री (वास्तविक कार्यकारी प्राधिकारी)	प्रधानमंत्री (राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त; राष्ट्रपति के प्रभाव में कार्य करता है)
राष्ट्रपति का चुनाव	निर्वाचक मंडल द्वारा अप्रत्यक्ष चुनाव	नागरिकों द्वारा प्रत्यक्ष चुनाव (दो-चरणीय प्रणाली)
विधान मंडल	द्विसदनीय - लोकसभा और राज्यसभा	द्विसदनीय – राष्ट्रीय असेंबली और सीनेट

संसद की भूमिका	शक्तिशाली; अविश्वास प्रस्तावों के माध्यम से कार्यपालिका को सीधे नियंत्रित करता है	भारत की तुलना में कमजोर; राष्ट्रपति नेशनल असेंबली को भंग कर सकते हैं
न्यायिक समीक्षा	मजबूत एवं सुस्थापित (सर्वोच्च न्यायालय + उच्च न्यायालय)	सीमित; संवैधानिक परिषद केवल प्रख्यापन से पहले समीक्षा करती है
धर्मनिरपेक्षता	सकारात्मक धर्मनिरपेक्षता - सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान	लैसिटे (धर्म और राज्य का सख्त पृथक्करण)
आपातकालीन प्रावधान	तीन प्रकार की आपात स्थितियों के लिए संवैधानिक प्रावधान	राष्ट्रपति फ्रांसीसी संविधान के अनुच्छेद 16 के तहत आपातकालीन शक्तियां ग्रहण कर सकते हैं
संवैधानिक संशोधन	लचीला और कठोर दोनों (विशेष बहुमत और अनुसमर्थन के माध्यम से)	दोनों सदनों या सार्वजनिक जनमत संग्रह से अनुमोदन की आवश्यकता होती है
अधिकार विधेयक **(मौलिक अधिकार)**	भाग III में निहित; न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय	मानव अधिकारों की घोषणा (1789); संविधान में शामिल
न्यायतंत्र	एकीकृत और स्वतंत्र	दोहरी प्रणाली - न्यायिक (कैसेशन कोर्ट) और प्रशासनिक (राज्य परिषद)
संघीय संरचना	एकात्मक पूर्वाग्रह के साथ अर्ध-संघीय	विकेन्द्रीकृत प्रशासन के साथ एकात्मक
सिटिज़नशिप	सभी भारतीयों के लिए एकल नागरिकता	एकल फ्रांसीसी नागरिकता

भारत बनाम दक्षिण अफ्रीका: संवैधानिक तुलना

विशेषता	भारत	दक्षिण अफ्रीका
संविधान का प्रकार	**1950 में लिखित, विस्तृत, और अपनाया गया**	**1996 में लिखित, विस्तृत और अपनाया गया (रंगभेद के बाद)**
सरकार के रूप में	राष्ट्रपति को नाममात्र का प्रमुख बनाकर **संसदीय लोकतंत्र**	**संसदीय लोकतंत्र** , लेकिन राष्ट्रपति **राज्य और सरकार दोनों का प्रमुख होता है**
राज्य के प्रधान	**राष्ट्रपति (अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित)** – नाममात्र कार्यकारी	**राष्ट्रपति (संसद द्वारा निर्वाचित)** – वास्तविक कार्यकारी
शक्तियों का पृथक्करण	विधायिका और कार्यपालिका के बीच **कार्यात्मक ओवरलैप (वेस्टमिंस्टर मॉडल)**	**सख्त अलगाव** - राष्ट्रपति विधायिका का हिस्सा नहीं
संघीय संरचना	**अर्ध-संघीय** - राज्यों के साथ मजबूत केंद्र	**संघीय विशेषताओं वाला एकात्मक** , सीमित स्वायत्तता वाले प्रांत
अधिकार विधेयक / मौलिक अधिकार	**संविधान का भाग III** - प्रवर्तनीय और न्यायोचित	**व्यापक अधिकार विधेयक** (अध्याय 2) – बहुत मजबूत अधिकार ढांचा
न्यायिक समीक्षा	**वर्तमान** - न्यायपालिका असंवैधानिक कानूनों को रद्द कर सकती है	**वर्तमान** - संवैधानिक न्यायालय सर्वोच्च प्राधिकारी है

संशोधन प्रक्रिया	**कठोर एवं लचीला मिश्रण** – अनुच्छेद 368 में 3 प्रकार के संशोधनों का प्रावधान है	**कठोर** - विशेष बहुमत और प्रांतीय सहमति की आवश्यकता होती है
स्वतंत्र न्यायपालिका	**भारत का सर्वोच्च न्यायालय** सर्वोच्च निकाय है	**संवैधानिक न्यायालय** सर्वोच्च है
भाषा एवं विविधता प्रावधान	22 भाषाओं को मान्यता; अल्पसंख्यकों के लिए प्रावधान (अनुच्छेद 29-30)	11 आधिकारिक भाषाएँ; मजबूत बहुसांस्कृतिक और बहुभाषी सुरक्षा
आरक्षण / सकारात्मक कार्रवाई	शिक्षा और नौकरियों में जाति-आधारित आरक्षण (अनुच्छेद 15, 16)	रंगभेद की विरासत को संबोधित करने के लिए जाति-आधारित सकारात्मक कार्रवाई
संवैधानिक सर्वोच्चता	हां – संविधान से असंगत कोई भी कानून अमान्य है	हाँ - संविधान सर्वोच्च है, संवैधानिक न्यायालय द्वारा लागू किया जाता है
निर्देशक सिद्धांत / राज्य नीति	नीति निर्देशक सिद्धांत राज्य का मार्गदर्शन करते हैं (गैर-न्यायसंगत)	आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे सामाजिक-आर्थिक अधिकार **न्यायोचित हैं**
आपातकालीन प्रावधान	अनुच्छेद 352-360 के तहत आपातकालीन शक्तियां	कोई राष्ट्रीय आपातकालीन प्रावधान नहीं; संवैधानिक अधिकारों की दृढ़तापूर्वक रक्षा की गई
निर्वाचन आयोग	स्वतंत्र संवैधानिक निकाय (अनुच्छेद 324)	संविधान द्वारा स्थापित स्वतंत्र चुनाव आयोग

पिछले वर्ष के प्रश्न

प्रश्न: संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत के संविधानों में समानता के अधिकार की धारणा की विशिष्ट विशेषताओं का विश्लेषण करें।- 2021

प्रश्न: धर्मनिरपेक्षता के प्रति भारतीय संविधान के दृष्टिकोण से फ्रांस क्या सीख सकता है? (2019)

प्रश्न: संसदीय संप्रभुता के प्रति ब्रिटिश और भारतीय दृष्टिकोण की तुलना और अंतर बताएं। (2023)

Saarthi

THE COACH

1 : 1 MENTORSHIP BEYOND THE CLASSES

- **Diagnosis** of candidates based on background, level of preparation and task completed.
- **Customized solution** based on Diagnosis.
- One to One **Mentorship.**
- Personalized schedule **planning.**
- Regular **Progress tracking.**
- **One to One classes** for Needed subjects along with online access of all the subjects.
- Topic wise **Notes Making sessions**.
- One Pager **(1 Topic 1 page)** Notes session.
- **PYQ** (Previous year questions) Drafting session.
- **Thematic charts** Making session.
- **Answer-writing** Guidance Program.
- **MOCK Test** with comprehensive & swift assessment & feedback.

Ashutosh Srivastava
(B.E., MBA, Gold Medalist)
Mentored 250+ Successful Aspirants over a period of 12+ years for Civil Services & Judicial Services Exams at both the Centre and state levels.

Manish Shukla
Mentored 100+ Successful Aspirants over a period of 9+ years for Civil Services Exams at both the Centre and state levels.

WALL OF FAME

UTKARSHA NISHAD
UPSC RANK - 18

SURABHI DWIVEDI
UPSC RANK - 55

SATEESH PATEL
UPSC RANK - 163

SATWIK SRIVASTAVA
SDM RANK-3

DEEPAK SINGH
SDM RANK-20

ALOK MISHRA
DEPUTY JAILOR RANK-11

SHIPRA SAXENA
GIC PRINCIPAL (PCS-2021)

SALTANAT PARWEEN
SDM (PCS-2022)

KM. NEHA
SUB REGISTRAR (PCS-2021)

SUNIL KUMAR
MAGISTRATE (PCS-2021)

ROSHANI SINGH
DIET (PCS-2020)

AVISHANK S. CHAUHAN
ASST. COMMISSIONER
SUGARCANE (PCS-2018)

SANDEEP K. SATYARTHI
CTD (PCS-2018)

MANISH KUMAR
DIET (PCS-2018)

AFTAB ALAM
PCS OFFICER

ASHUTOSH TIWARI
SDM (PCS-2022)

CHANDAN SHARMA
Magistrate
Roll no. 301349

YOU CAN BE THE NEXT....

8009803231 / 8354021661

D 22&23, PURNIYA CHAURAHA, NEAR MAHALAXMI SWEET HOUSE, SECTOR H, SECTOR E, ALIGANJ, LUCKNOW, UTTAR PRADESH 226024

MRP-295 Rs.